अर्हं गुरुकुल के अंतर्गत

प्रवचनसार का सार

प्रथम परीक्षा (गाथा 001-026)

मुनि श्री प्रणम्यसागर जी

प्रकाशक
ओम् अर्हम् सोशल वैल्फेयर फॉऊंडेशन
मंदसौर (म.प्र.)

आचार्य कुंदकुद विरचित प्रवचनसार

अर्हं गुरुकुल के अंतर्गत

प्रवचनसार का सार

प्रथम परीक्षा (गाथा 001-026)

प्रवचन : मुनि श्री प्रणम्यसागर जी

संयोजन : टीम अर्हं

मूल्य : 40 रुपये

संस्करण : प्रथम 2019 (1000 प्रतियाँ)

प्राप्ति स्थल : ओम् अर्हम् सोशल वैल्फेयर फॉऊंडेशन
48-सी, गौतमनगर, कालाखेत, रोड नं. 2, मंदसौर (म.प्र.) 458001
ई–मेल : team@arham.yoga
फोन – 9315536099

मुद्रक : अरिहंत ग्रॉफिक्स, दिल्ली
मोबाईल – 9958819046, 9212019046

अगर आपको कोई त्रुटि मिलती है तो कृप्या क्षमा करें और उस त्रुटि को हमें ई–मेल के माध्यम से सूचित कर दे जिससे उसको सुधारा जा सकें।

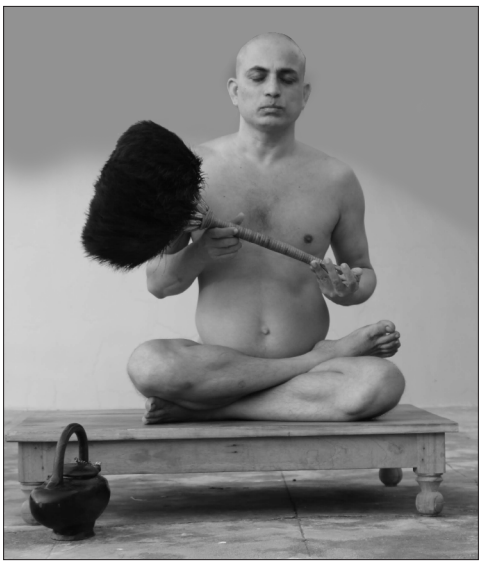

मुनि श्री प्रणम्यसागरजी महाराज

पूर्व नाम	:	ब्र. सर्वेशजी
पिता-माता	:	श्री वीरेन्द्रकुमार जी जैन, श्रीमती सरितादेवी जैन
जन्म	:	13.09.1975, भाद्रपद शुक्ल अष्टमी, भोगाँव, जिला-मैनपुरी (उ. प्र.)
वर्तमान में	:	सिरसागंज (फिरोजाबाद) (उ. प्र.)
शिक्षा	:	बी. एस. सी. (अंग्रेजी माध्यम)
भाई	:	सचिन जैन
बहिन	:	सपना जैन
गृहत्याग	:	09.08.1994
क्षुल्लक दीक्षा	:	09.08.1997, नेमावर
ऐलक दीक्षा	:	05.01.1998, नेमावर
मुनि दीक्षा	:	11.02.1998, माघसुदी 15, बुधवार, मुक्तागिरिजी
दीक्षा गुरु	:	आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

सूची

सूची 3

खंड१–प्रवचन 6

प्रवचन०१ - मंगलाचरण (गाथा००१ -००२) 8

प्रवचन०२ - मंगलाचरण (गाथा००२ - ००५) 22

प्रवचन०३ - निर्वाणकीप्राप्तिकासाधन (गाथा००६) 37

प्रवचन०४ - धर्मकास्वरूप (गाथा००७) 52

प्रवचन०५ - धर्मात्माकाअर्थ (गाथा००८-००९) 65

प्रवचन०६ - पदार्थकास्वरुप (गाथा०१०-०११) 81

प्रवचन०७ - अशुभोपयोगकाफल, निर्वाणकास्वरूप (गाथा०१२-०१३) 96

प्रवचन०८ - शुद्धोपयोगसपरिणतआत्माकास्वरूप (गाथा०१४-०१५) 110

प्रवचन०९ - शुद्धोपयोगकाफल (गाथा०१६-०१७) 122

प्रवचन१० -पदार्थकीपर्यायकाउत्पादऔरव्यय (गाथा०१८) 138

प्रवचन११ - अरिहंतभगवानकास्वरूप (गाथा०१९-०२१) 153

प्रवचन१२ - केवलज्ञानकास्वरूप (गाथा०२२-०२३) 169

प्रवचन१३ - आत्मा, ज्ञान, ज्ञेयकासम्बंध (गाथा०२४-०२६) 181

खंड2 –महत्वपूर्णबिंदु 194

मंगलाचरण (गाथा००१-००२) 196

मंगलाचरण (गाथा००२-००५) 200

निर्वाणकीप्राप्तिकासाधन (गाथा००६) 203

धर्मकास्वरूप (गाथा००७) 206

धर्मात्माकाअर्थ (गाथा००८-००९) 209

पदार्थकास्वरुप (गाथा०१०-०११) 213

अशुभोपयोगकाफल, निर्वाणकास्वरूप (गाथा०१२-०१३) 218

शुद्धोपयोगकाफल (गाथा०१६-०१७) 226

क्षायिकज्ञानकास्वरूप (गाथा०२२-०२३) 240

खंड3 –अभ्यासप्रश्न.....250

खंड १ – प्रवचन

मुनि श्री १०८ प्रणम्य सागर जी

गाथा ००१-०२६

प्रवचन ०१ – मंगलाचरण (गाथा ००१ –००२)

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदंधोदघादिकम्ममलं।।
पणमामिवड्ढमाणंतित्थंधम्मस्सकत्तारं ॥ १॥

कर्त्तासुतीर्थ वृष के सुख पूर्ण शाला, है घाति कर्म–मल धोकर पूर्ण डाला।
वे वर्धमान उनको प्रणमूँकरों से, जो हैं नमस्कृत सुरों असुरों नरों से।।।

अन्वयार्थ –(**एस**) यह मैं (**सुरासुरमणुसिंदवंदिदं**) जो सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों और नरेन्द्रों से वंदित है तथा जिन्होंने (**धोदघादिकम्ममलं**) घातिकर्म मल को धो डाला है, ऐसे (**तित्थं**) तीर्थरूप और (**धम्मस्सकत्तारं**) धर्म के कर्ता (**वड्ढमाणं**) श्री वर्धमानस्वामी को (**पणमामि**) नमस्कार करता हूँ

वर्धमान महावीर भगवान को अरिहंत भगवान के रूप में नमस्कार

जो विशेषताएँ वर्धमान महावीर भगवान की थी, वो यहाँ पर आचार्य कुन्दकुन्द देव ने बताई हैं। उन विशेषतायों में सबसे बड़ी बात यह है कि आचार्य कुन्दकुन्द देव के समक्ष तो महावीर भगवान मोक्ष जा चुके थे। फिर भी उन्होंने महावीर भगवान को सिद्ध भगवान के रूप में स्मरण नहीं किया। उनको उन्होंने अरिहंत भगवान के रूप में स्मरण किया है। **धोदघादिकम्ममलं –**जिन्होंने घातिया कर्म मल को धो दिया है। इस मंगलाचरण की यह एक बड़ी विशेषता है कि वह भगवान को जब नमस्कार कर रहे हैं तो उन्हें सिद्ध अवस्था में नमस्कार नहीं कर रहे हैं। उन्हे अरिहंत अवस्था में नमस्कार कर रहे हैं। इसलिए भी कर रहे हैं क्योंकि जहाँ तीर्थ की बात आ जाती है तो तीर्थ जो होता है, वह अरिहंत अवस्था से ही प्रारंभ होता है। उपदेश के माध्यम से ही प्रारंभ होता है। जो तीर्थ विशेषण दिया है यह इसलिए है कि जिन्होंने घातिया कर्म मल को तो दूर कर लिया लेकिन जो तीर्थ स्वरूप है, ऐसे भगवान अरिहंत देव। जो वर्धमान महावीर स्वामी हैं, वह हमारे लिए **धम्मस्सकत्तारं** यानि वह धर्म के कर्ता भी हैं।

धर्म तीर्थ के कर्ता

धर्म का मतलब? आपको बताया था कि जो उत्तम क्षमा आदि रूप धर्म है वह भी और जो चारित्र रूप धर्म है वह भी, यह दोनों धर्म ही मुख्य रूप से धर्म कहलातें है। इस धर्म के कर्ता का मतलब यह हुआ कि धर्म को लोगों

को बताना, उपदिष्ट करना। लोगों को धर्म के लिए प्रेरणा देना, यही उनका कर्तापन है। इसके अलावा कोई नई चीज उन्होंने तैयार की हो या कोई नया कर्तापन उनकी बुद्धि में आया हो, ऐसा कुछ नहीं हैं।

अरिहंत भगवान धर्म के कर्ता कैसे हो सकते हैं?

जब अरिहंत भगवान बनते हैं तब कर्तापन का भाव तो छूट ही जाता है। जब उन्होंने इस तरह से सब कर्तापन छोड़ा तभी वो धर्म तीर्थ के कर्ता कहलाये। अब यहां पर धर्म का कर्ता कहना, ये अपने आप में बड़ी विशेषता है।कर्ता कौन हो सकता है? **जंकुणदिभावमादाकत्ता सो होदितस्सभावस्स!** आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि यह आत्मा कर्ता उसी भाव का होता है जिस भाव को आत्मा करता है। हमने जो भाव किया उस भाव के हम कर्ता होंगे। अगर हम अशुभ भाव करते हैं तो हम अशुभ भाव के कर्ता हुए। हमने शुभ भाव किया तो हम शुभ भाव के कर्ता हुए। हमने अगर शुद्ध भाव किया तो हम शुद्ध भाव के कर्ता हुए। जिस भाव को यह आत्मा करता है, आत्मा उसी का कर्ता बन जाता है। लेकिन यहां देखें तो अरिहंत भगवान धर्म के कर्ता कैसे हो सकते हैं? वह धर्म का भाव कर रहे हैं? चारित्र का भाव कर रहे हैं? वो तो सब कर चुके हैं। जिस समय पर वह दिव्य उपदेश दे रहे होते हैं, उस समय पर भी उनके अंतरंग में कोई ऐसा भाव भी नहीं रहता कि मैं उत्तम क्षमा आदि भाव को ग्रहण कर रहा हूँ या मैं इस चारित्र को धारण कर रहा हूँ या इस चारित्र को ग्रहण कर रहा हूँ। ऐसा भी कोई भाव उनके अंदर नहीं होता। तो वह धर्म तीर्थ के जो कर्ता कहलाते हैं, वह इस परिप्रेक्ष्य में घटित नहीं होता जो हमें परिभाषा मिलती है। उनके अंदर कोई भाव नहीं है कि हम तीर्थ को बनाएं या धर्म का उपदेश दें या हम धर्म तीर्थ की उत्पत्ति करें। ऐसा कोई भाव नहीं है। फिर भी वह उस धर्म के कर्ता कहे गए हैं। ये यहाँ पर उनकी अपेक्षा से नहीं है। ये हमारे खुद की अपेक्षा से है। हमें ये दिखाई देता है कि भगवान ने हमें धर्म का उपदेश दिया है इसलिए हमें धर्म उनसे मिला है। इसलिए वो हमारे लिए धर्म के कर्ता है। लेकिन वह खुद के लिए धर्म के कर्ता भी नहीं है। कुछ समझ आ रहा है? वह दिव्य ध्वनि हो रही है, दिव्य उपदेश भी हो रहा है लेकिन उस दिव्य उपदेश को वह यह सोच कर के कि मैं दिव्य उपदेश कर रहा हूँ, यह भी भाव उनमें नहीं आता हैं। वह दिव्य-ध्वनि भी सहज हो जाती है। ये कैसी निमित्त नैमित्तिक व्यवस्था है जिसके माध्यम से वह दिव्य ध्वनि हो जाती है। सहज उपदेश हो जाता है।

अरिहंत भगवान धर्म के कर्ता पर की अपेक्षा से हैं।

कर्तापन का भाव उनके अंदर तो कहीं से कहीं तक भी नहीं है। क्योंकि जहाँ कर्तापन होगा, वहाँभोक्तापन भी होगा। और जहाँभोक्तापन होगा, वहाँ स्वामी भी होगा। न तो वह कर्ता हैं, न वह भोक्ता हैं और न उस अपनी दिव्य ध्वनि के स्वामी हैं। फिर भी सब कुछ हो रहा है। तो ये पर की अपेक्षा से है। जो हम देख रहें हैं कि हमें उनसे धर्म का उपदेश मिला इसलिए हम अपने भक्ति भाव से कह रहें हैं कि - हे भगवान ! आप हमारे लिए

धर्म के कर्ता हो।इस चीज को बहुत अच्छे ढंग से समझने का प्रयास करो। हम भगवान को धर्म का कर्ता कह रहें हैं और वास्तव में वह किसी चीज के कर्ता हैं नहीं। कर्ता तो तब होंगे जब भाव हो।भाव करना ही उन्होंने छोड़ दिया है। न वो शुभ कर रहें हैं, न अशुभ कर रहें हैं और न शुद्ध कर रहें हैं। वह तो जैसा है, बस उसमें परिणमन कर रहें हैं। ज्ञाता दृष्टा बने हैं। कर्तापन वहाँ आता है, जहाँ हम करें। अशुभ भाव नहीं करो, शुभ करो तो शुभ के कर्ता। फिर कहा कि शुभ भाव भी मत करो, शुद्ध भाव करो तो शुद्ध भाव के कर्ता। अब यहाँ क्या धर्म के कर्ता? वो तो धर्ममय हो चुके हैं। चाहे वो अहिंसा धर्म हो, चाहे दशलक्षण आदि धर्म हो, चाहे वो वस्तु स्वभावरूप धर्म हो, चाहे चारित्ररूप धर्म हो। वह किसी भी धर्म के उस समय पर कोई भाव नहीं कर रहे हैं।

नय की अपेक्षा से कर्तापन

कर्तापने की जो परिभाषाएँ आचार्य कुन्दकुन्द देव ने स्वयं समयसार में लिखी हैं, वो परिभाषाएं भी इसमें घटित नहीं होंगी। अगर आप कर्तापन किसी भी नय से देखोगे तो वह कर्तापन भी घटित नहीं होता। अशुद्ध नय से आत्मा अशुद्ध भावों का कर्ता होता है। शुद्ध नय से अपने शुद्ध भावों का कर्ता होता है। व्यवहार नय के पुदगल कर्म आदि का कर्ता होता है। ऐसा द्रव्य संग्रह में पढ़ते हो। **पुग्गलकम्मादीणं, कत्ताव्यवहारदोदुणिच्चयदो। चेदणकम्माणादा, सुद्धण्यासुद्धभावाणं।** यह जो कर्तापन यहाँ पर बताया गया है तो वह कर्तापन भी इन में घटित नहीं होता। कौन सा कर्तापन? यह आत्मा व्यवहार नय से पुदगल कर्म आदि का कर्ता है तो व्यवहार से भी उनमें कर्तापन घटित नहीं होता। चैतन्य कर्मों यानि जो अपने भाव कर्म होते हैं, जिन्हें हम राग द्वेष आदि रूप कर्म कहते हैं, आत्मा उनका अशुद्ध निश्चयनय से कर्ता होता है। उसका भी कर्तापन भगवान में घटित नहीं होता। शुद्ध नय से अपने शुद्ध भावों के कर्ता हैं तो वह शुद्ध भाव भी उनमें घटित नहीं होते। वह शुद्ध भावों का कर्तापन भी उनमें उसी रूप में घटित होता है कि बस वह शुद्ध रूप में परिणमन कर रहें हैं। वही उनका शुद्ध भाव है। वही उनका शुद्ध नय से शुद्ध भाव कहा जा सकता है। लेकिन जब हम किसी दूसरे के लिए उपदेश दे रहे हैं तो धर्म का उपदेश देते हुए भी हमें कहीं न कहीं व्यवहार का आलंबन लेना पड़ता है। तो इस परिभाषा में वोपुदगलकर्म आदि के कर्ता तो नहीं हो रहे हैं लेकिन धर्म के कर्ता बनने के लिए उनके भीतर भी वह कर्तापन अगर घटित होगा तो वह निश्चय नय से नहीं होगा। वो व्यवहार नय से ही होगा।

व्यवहार नय की अपेक्षा से धर्म के कर्ता

निश्चय नय से तो वो अपने केवल शुद्ध भावों के कर्ता कहलायेंगे। जो शुद्ध भाव में परिणमन हो रहा है वही उनका कर्ता होगा। लेकिन बोलते तो हैं। बोलने में भले ही उनके होठों का स्पंदन नहीं होता लेकिन क्रिया तो शरीर की होती है। क्योंकि शरीर के बिना तो बोलना संभव नहीं है। तो शरीर का जो आलंबन लिया, कंठ का,

श्वास का, ध्वनि का प्रयत्न जो भीतर चल रहा है, ये सब शरीर आश्रित है। तो ये जो शरीर आश्रित क्रिया चल रही है, इसके कारण से वह व्यवहार से धर्म के कर्ता कहे जा सकते हैं। नयों के माध्यम से धीरे धीरे समझ में आता है। अभी हमने क्या बोला? वह भगवान धर्म के कर्ता कैसे हो सकते हैं? वह किस अपेक्षा से बोला था? आचार्य कुन्दकुन्द देव की परिभाषा के अनुसार वो अपने भाव नहीं कर रहे हैं इसलिए धर्म के कर्ता भी नहीं है। लेकिन जो द्रव्य संग्रह की गाथा है, उसके अनुसार व्यवहार नय से वह जो बोलने की प्रवृत्ति कर रहे हैं, व्यवहार नय से वह उस बोलने रूपप्रवृत्तिके कर्ता कहलायेंगे। आ रहा है समझ में? शुद्ध भाव कर नहीं रहे हैं वो उनके अंदर हो रहे हैं। फिर भी व्यवहार नय से उसमें कर्तापन का आरोप लगा दिया जाएगा कि हाँ भाई ये भी कर रहे हैं। तो इस तरीके से यह बहुत अच्छी चीज़ है कि भगवान को भी हमने थोड़ा सा कर्तापन के रूप में स्वीकार किया है।

जो आचार्य कुन्दकुन्द देव के ग्रंथ पढ़ते हैं और कहते हैं कि कर्तापन तो आत्मा में होता ही नहीं है, उन्हें थोड़ा समझना होगा कि कर्तापन तो होता है। लेकिन वह अलग अलगनयों के माध्यम से घटित होता है।भगवान अरिहंत देव का वह कर्तापन तो अगर आचार्य कुन्दकुन्द देव स्वीकार कर रहे हैं तो हमें भी अपना कर्तापन स्वीकार कर लेना चाहिए।

भ्रान्ति-नय-व्याख्या

चौथे गुणस्थान के अविरत सम्यग्दृष्टि जीव को ही लोग कहना शुरू कर देते हैं कि उसके अंदर तो कर्ता बुद्धि रहती ही नहीं है। गृहस्थ से ही लोग कहना शुरू कर देते हैं। कर्तापन तो सम्यग्दृष्टि जीव में होता ही नहीं है। वो तो किसी कर्म का भोक्ता होता ही नहीं है। स्वामित्व तो उसका छूट ही गया हैं। वो तो अपने ज्ञान स्वभाव में रहता है। बाकी जो कर्म के उदय से होता रहता है, वो होता रहता है। वो कुछ नहीं करता है। समझ में आ रहा है? मतलब इनका कर्तापन का भाव चौथे गुणस्थान से छूट रहा है। इतना कर्तापन का भाव अभी अरिहंत भगवान का भी नहीं छूट रहा है जो चौथे गुणस्थान में लोगों का छूट रहा है। जबकि चौथेगुणस्थान में वह हर कर्म का कर्ता है। कर्म का भी कर्ता है और कर्म फल का भोक्ता भी है। सब कुछ है। कर्म नहीं करेगा तो क्या करेगा? और उस कर्म का फल नहीं भोगेगा तो क्या बिलकुल साम्यभाव में बना रहेगा? क्या बिलकुल ज्ञाता द्दष्टा बना रहेगा? ऐसा कौन सा सम्यग्दृष्टि है जो न कर्म करता हो, न कर्म फल का भोक्ता हो, न उसका किसी पर स्वामित्व हो? होता है कहीं ऐसा? नहीं होता है। लेकिन फिर भी लोग सम्यग्दर्शन के साथ ही इस कर्ता, भोक्ता, स्वामित्व पने की जड़ें उखाड़ देते हैं। ये किसी अपेक्षा से तो ठीक होता है। लेकिन सर्वथा इस तरीके से मान लेना कि हम कर्म के कर्ता नहीं, अपने भावों के भी कर्ता नहीं, कर्म फल के भोक्ता नहीं, ऐसा मानना अपने आपमें एक अज्ञान जन्य बात हो जाती है।

आत्मा कर्ता भी और भोक्ता भी

व्यक्ति की भूमिका के अनुसार उसमें कर्तापन का आरोप आता ही रहता है। जब तक हम कुछ न कुछ कर रहे हैं तब तक हम कर्ता होते ही हैं। आप बिलकुल शांत बैठ जाओगे तब भी आपके अंदर जो भाव चल रहे हैं, उन भावों के आप कर्ता हो। अब आप शांत भी बैठ गए तो आपके अंदर की कषायें चल रही हैं। मान लो, अनंतानुबंधीकषाय चल रही है। उस कषाय के अनुसार कर्म बंध रहे हैं तो उस कर्म के कर्ता हो गए। अगर अनंतानुबंधीकषाय नहीं है और अप्रत्याख्यानकषाय चल रही है तो उसके कर्ता कहलाओगे। कर्तापन कहाँ से छूट जाएगा? करते तो रहोगे ना। भले ही वोकषाय नहीं दिखे लेकिन भीतर तो आत्मा कर्ता ही रहेगा न। अगर वह नहीं करेगा तो फिर उस संबंधी कर्म का बंध ही छूट जाएगा। ऐसा तो कभी नहीं होता। अनंतानुबंधीकषाय हटने के बाद भी अप्रत्याख्यानकषाय, प्रत्याख्यानकषाय और संज्वलनकषाय और इनसे होने वाले भाव जो आत्मा में होते रहते हैं, उनका तो आत्मा कर्ता बना ही रहता है। उस कर्म का फल भी भोग रहा है तो भोक्ता भी बना हुआ है।

कषाय छूटेंगी तो कर्तापन भी छूटेगा

आप संयम धारण नहीं कर पा रहे हो तो किसके कारण से? कर्म का फल भोग रहे हैं, इसी कारण से। जो आपको चारित्रमोहनीय है, जो प्रत्याख्यानावरण कर्म है, अप्रत्याख्यानावरण कर्म है, जिसके माध्यम से आप थोड़ा भी संयम नहीं ले पा रहे हो, इन्हीं कर्मों के कारण से तो आप उस चारित्रमोहनीय कर्म का फल भोग रहे हो। तो कर्म फल के भोक्ता भी कहलाये। तो हम कर्तापन भोक्तापन से छूट कहाँ पाये? ये चीजें बताती हैं कि हमारे अंदर कर्तापन उतना ही छूटेगा जितना हम कषाय को छोड़ेंगे। जितना आप कषाय भाव छोड़ेंगे उतना ही आपका उससे कर्तापन छूटेगा और उतना ही उससे कर्म का फल, जो आपको मिलने वाला है, उस कर्म के फल का भोक्तापन भी छूटेगा। इसलिए बताना पड़ रहा है कि हम गृहस्थ अवस्था में रह कर के भी अपने आपको कर्ता, भोक्ता, स्वामित्व से बहुत ऊपर बना लेते हैं। ऐसा लगता है कि कर्तापन तो सम्यग्दृष्टि जीव का स्वभाव है ही नहीं। जबकि सम्यग्दृष्टि जीव सब प्रकार का कर्ता बना हुआ है। यहाँ तो देखो अरिहंत भगवान को भी हम धर्म के कर्ता कह रहे हैं। तो कर्तापन से इतनी चिढ़ क्यों है? धर्म के कर्ता हैं कि नहीं? तो जिस चीज़ को हम कर रहें हैं हम उसी के कर्ता कहलायेंगे।

सम्यग्दृष्टि में भी कर्तापन

लोग तो यहाँ तक कह देते हैं कि हमारे घर में अगर एक पत्नी भी है, दो बच्चे भी हैं तो हम उसके कर्ता नहीं है। क्या सुन रहे हो? आपसे पूछा जाए कि आपकी पत्नी, आपके बच्चे, आपकी दुकान, आपका परिवार हैं तो

आप उसके कर्ता हो कि नहीं? आप उसके भोक्ता हो कि नहीं? उनको सुख दुःख होगा तो आपको उसके सुख दुःख का कुछ फल आया होगा कि नहीं? उसको कुछ नुकसान होगा तो आपको दुःख होगा कि नहीं? उसकी कुछ समृद्धि होगी तो आपको सुख होगा कि नहीं? तो आप उसके फल के भी भोक्ता हो रहे हो कि नहीं? जब आपने किया है तो वो आपका ही कर्तापन उसमें आ रहा है कि नहीं? अब आप कहो ऐसा कौन सा सम्यग्दृष्टि है जिसमें उसका कर्तापन नहीं आता हो? कोई भी सम्यग्दृष्टि का ऐसा उदाहरण बताओ। चाहे भरत चक्रवर्ती क्यों न हों, रामचंद्रजी क्यों न हों, सभी सम्यग्दृष्टि होते हुए भी कर्ता भी थे औरभोक्ता भी थे और स्वामित्व भी धारण करते थे। क्या रामचंद्रजी का सीता के प्रति स्वामित्व नहीं था? सीता किसकी पत्नी है? रामचंद्रजी से पूछते तो क्या बोलते वो? हमारी नहीं है, मेरा कोई स्वामित्व नहीं है उसके ऊपर, ऐसे बोलते क्या? विवाह किसने किया? हमने नहीं किया, कर्म के उदय में हो गया है। विवाह के कर्ता कौन? सीता के स्वामी कौन? सीता के भोगने वाले कौन? तो कर्ता, भोक्ता, स्वामित्व गृहस्थ अवस्था में चाहे सम्यग्दृष्टि हो, चाहे मिथ्यादृष्टि हो, किसी का नहीं छूटता।

यह बात अलग है कि सब की दृष्टि अलग अलग रहती है। लेकिन सम्यग्दृष्टि उससे बिलकुल ही छूट जाता हो, ऐसा कदापि नहीं होता। लोग बड़ी गलत धारणाओं में जीते हैं। सम्यग्दर्शन होने का मतलब - कर्ता भोक्ता पन छूट गया, स्वामित्व छूट गया और इसी भाव में घर में बैठे बैठे सोचते हैं कि जब सम्यग्दृष्टि को कुछ कर्ता भोक्ता पन है ही नहीं तो कर्म बंध है ही नहीं। सम्यग्दृष्टि तो हमेशा कर्म की निर्जरा कर रहा है।तो ऐसे भ्रम में बड़े बड़े कर्म के बंध करते रहते हैं और सोचते रहते हैं कि कर्म की निर्जरा कर रहा है। कर्म की निर्जरा तो तभी होगी जब भीतर के जो कर्म बंध के कारण हैं, वो छूटेंगे। अगर अनंतानुबंधीकषाय का उदय चल रहा है तो अनंतानुबंधीजन्य बंध होगा। अप्रत्याख्यानकषाय का उदय चल रहा है तो उससे उत्पन्न होने वाला बंध होगा। प्रत्याख्यानकषाय का उदय चलेगा तो उस जन्य बंध होगा। वो बंध कैसे छूट सकता है? वो तो आत्मा में होने वाला जो परिणाम, कर्म प्रत्ययों के कारण से हो रहा है, वह तो निरंतर बंध को करता ही रहता है। इसलिए कभी भी ऐसी धारणा नहीं रखनी चाहिए कि सम्यग्दृष्टि कर्ता,भोक्ता और स्वामित्व को धारण नहीं करता है। जैसे ही आप अपनी प्रवृत्ति किसी भी रूप में करेंगे, चाहे वो आप शांत बैठ कर के करें, चाहे किसी रूप में करें, आप उसमें कर्म के बंध करेंगे और उस समय पर आप कर्म के कर्ता कहलायेंगे।

मुनि महाराज भी कर्मके कर्ता और भोक्ता

यहाँ तक कि मुनि महाराज भी कर्म के कर्ता होते हैं। कर्म के भोक्ता भी होते हैं। नहीं भोगते? उनको भी सुख दुःख भोगने में आता है कि नहीं आता? और वह अगर सुख दुःख को नहीं भोगेंगे तो किस स्थिति में? जब वो ध्यान की स्थिति में होंगे। शुद्धोपयोग में होंगे तो उन्हें कोई भी सुख दुःख भोगने में नहीं आएगा। वो अपने ध्यान में अपनी आत्मा के भोग में होंगे। तो कभी भी कर्म फल का भोक्तापन छूटता है तो वह तब छूटता है जब

हमारे अंदर उस कर्म से उत्पन्न होने वाला राग द्वेष जन्य परिणाम उत्पन्न न हो और हम इतने साम्यभाव में लीन हो कि कोई भी राग द्वेष का परिणाम हमारे लिए कुछ न कर पाए। तब जा कर के वो कर्तापन और भोक्तापन छूटता है। तो ये ध्यान रखना अरिहंत भगवान भी जब तक रहते हैं, वह भी साता कर्म का बंध करते हैं। उस समय पर वह साता कर्म के कर्ता भी होते हैं और साता कर्म का फल भोग रहे हैं तो उसके भोक्ता भी होते हैं। जब उपदेश देंगे तो धर्म के भी कर्ता कहलायेंगे। जब गमन करेंगे तो वह चलने रूप क्रिया के कर्ता कहलायेंगे। जो जो क्रिया करेंगे उस उस क्रिया के कर्ता कहलायेंगे। इससे सिद्ध हो जाता है कि अरिहंत भगवान भी कर्तापन से सर्वथा रहित नहीं है। स्वामित्व तो नहीं है उनका किसी चीज पर लेकिन कर्ता भी हैं और कर्म फल के भोक्ता भी।

<u>तीर्थंकर भगवान भी कर्ता और भोक्ता</u>

तीर्थंकर भगवान तीर्थंकर नाम कर्म का फल भोग रहे हैं कि नहीं? अगर तीर्थंकर नाम कर्म का फल नहीं भोगेंगे तो समवशरण नहीं लगेगा, दिव्य ध्वनि नहीं होगी, अष्ट प्रातिहार्य नहीं होंगे। ये सब किसका फल भोग रहे हैं? तीर्थंकर नाम कर्म का फल भोग रहे हैं। निरंतर उनके अंदर सुखरूप, साता रूप वर्गणाएँ बंध को प्राप्त होती रहती हैं। हमेशा साता सुख का अनुभव करते हैं। देह जन्य भी और आत्म जन्य भी। इन चीजों से ज्ञात होता है कि अरिहंत भगवान भी अभी सर्वथा कर्ता और भोक्ता पन से मुक्त नहीं हैं। तो इसलिए कर्ता भोक्तापन की व्याख्याएं थोड़ा सा बढ़ाना चाहिए और वो सब चीजों का केवल चौथे गुण स्थान में ही अंत नहीं कर देना चाहिए। थोड़ा आचार्यों की**विवक्षायों**को भी समझना चाहिए।

सेसेपुणतित्थयरेससव्वसिद्धेविसुद्धसब्भावे।
समणे य णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे॥ २॥

सिद्धों समेत अवशेष जिनेश्वरों को, तीर्थंकरोंशुचितरों गुण-धारियों को।
सद्ज्ञान-वीर्य-तप-दर्शन-वृत्त वालों, वंदूँ लिए श्रमणताश्रमणोंनिहालों॥

अन्वयार्थ- (पुण)और (**विसुद्धसब्भावे**) विशुद्ध सत्ता वाले (**सेसेतित्थयरे**) शेष तीर्थंकरों को (**ससव्वसिद्धे**) सर्व सिद्ध भगवन्तों के साथ ही (**य**) और (**णाणदंसणचरित्ततववरियायारे**) ज्ञानाचार, दुर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार तथा वीर्याचार युक्त (**समणे**) श्रमणों को नमस्कार करता हूँ।

वर्धमान महावीर भगवान को नमस्कार के बाद किनको नमस्कार

देखो! आचार्य कुन्दकुन्द देव केवल वर्धमान महावीर भगवान को ही नमस्कार करके शांत नहीं हो गए।देखो! उनके अंदर तीर्थंकरों के प्रति कितनी भक्ति है। फिर वो आगे कहते हैं कि **सेसेपुणतित्थयरे,** पुण माने पुनः।**सेसे**माने शेष। जो अभी बचे रह गए हैं। वर्धमान भगवान के अलावा और भी तो तीर्थंकर हैं।तेईस तीर्थंकर। उनको भी मैं नमस्कार करता हूँ। **तित्थयरे**माने तीर्थंकरों को। **ससव्वसिध्दे**फिर याद आता है कि तीर्थंकर के अलावा और भी तो बहुत से सिद्ध हैं। अरिहंतों को नमस्कार कर लिया, अब किसको करना? सिद्धों को। मैं सभी सिद्धों को नमस्कार करता हूँ। कैसे हैं सभी सिद्ध? **विसुध्दसब्भावे।**क्या मतलब हुआ? विशुद्ध सदभाव वाले हैं। मतलब जिनका अस्तित्व, जिनका वर्तमान में परिणमन बहुत विशुद्ध हो गया है। किसी भी प्रकार की अब उन आत्माओं में कोई भी कर्म कालिमा बची नहीं। बिल्कुल उनके अंदर शुद्ध स्वभाव रूप परिणमन होकर के उनका सद्भाव कैसा हो गया? एकदम pure बिल्कुल निर्मल, विशुद्ध हो गया है। मतलब आत्मा का जैसा शुद्ध स्वभाव था, वैसा उनका शुद्ध स्वभाव प्रकट हो गया। ऐसे उन सब सिद्धों को भी मैं नमस्कार करता हूँ। क्या सुन रहे हो? तीर्थंकरों में भी सब तीर्थंकरों को नमस्कार करना। लेकिन पहले वर्धमान, जो तीर्थ शासन नायक हैं, उनको करना है और फिर सब सिद्धों को भी करना। क्योंकि जो अतीत काल में अनंत सिद्ध हो चुके हैं और जो वर्तमान के तीर्थंकर सब सिद्ध हो गए, उन सबके लिए नमस्कार करने का भाव आचार्य कुन्दकुन्द देव का बनता है।

अरिहंत और सिद्धो को नमस्कार के बाद किनको नमस्कार

वे सबको नमस्कार करने के साथ साथ देखो आगे क्या कर रहे हैं? **समणे य णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे** श्रमणों को भी नमस्कार करते हैं। आचार्य देव क्या कर रहे हैं? **श्रमण** कहने का मतलब क्या हुआ? श्रमण माने न केवल साधु होता है और न केवल आचार्य होता है। श्रमण में आचार्य, उपाध्याय, साधु, तीनों आ जाते हैं। क्योंकि आचार्य भी जो होते हैं, वो पहले साधु होते हैं। आचार्य बाद में होते हैं। उपाध्याय भी जो होते हैं, पहले साधु होते हैं। उपाध्याय बाद में होते हैं। ऐसा नहीं होता कि साधुपना छोड़ दो और उपाध्याय बन जाओ या साधुपना छोड़ दो और आचार्य बन जाओ। साधु की quality जो है, वो तो पूरी की पूरी follow करना ही है। लेकिन उसके साथ साथ अन्य कुछ जो कार्य होते हैं, आचार्यों के और उपाध्यायों के, वो उन सब कार्यों को साधुपने के साथ करते हैं। इसलिए सभी श्रमण कहलाते हैं तो उन श्रमणों को भी वो याद करते हैं।

श्रमण के पंचाचार

श्रमण कैसे होते हैं? **णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे। णाण**माने ज्ञान।**दंसण**माने दर्शन।**चरित्त**माने चारित्र।**तव**माने तप।**वीरिय**माने वीर्य।**आयार**मानेआचार। ये आचार कहलाते हैं। ज्ञानाचार, दर्शनाचार,

चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार। ये आचार का क्या मतलब होता है? आत्मा में इनका आचरण करने का नाम आचार कहलाता है। ये पांच आचार कहलाते हैं। इन्हीं को पंचाचार कहते हैं और ये पंचाचार हर श्रमण की शोभा होते हैं। आत्मा की सज्जा, आत्मा की शोभा और आत्मा का श्रृंगार इन्हीं पंच आचारों से होता है। ये सब के लिए होते हैं। ज्ञानाचार मतलब ज्ञानमय आचरण करना। दर्शनाचार मतलब दर्शनमय आचरण करना। चारित्राचार मतलब चारित्रमय आचरण करना। तपाचार मतलब तपरूप आचरण करना और वीर्याचार माने वीर्य रूप आचरण करना। इसमें ज्ञान का मतलब सम्यग्ज्ञान भी होता है। दर्शन माने सम्यग्दर्शन भी होता है। चारित्र माने सम्यग्चारित्र भी होता है। तप माने सम्यग्तप होता है और वीर्य माने सम्यग्वीर्य के साथ में। इन सब का आचरण करना, ये पंचाचार कहलाता है।

पंचाचार का व्यवहार और निश्चय रूप

अब ये पंचाचार वस्तुतः व्यवहार और निश्चय दोनों रूप होता है। जब तक ये व्यवहार रूप रहता है तब तक अनेक भेद रूप रहता है और जब केवल आत्म स्वरूप में आचरण होने लग जाता है तो वह निश्चय रूप कहलाने लग जाता है। ऐसे ये पंचाचारों को जो धारण किए हैं, वे सभी श्रमण हमारे लिए वंदनीय है।नमस्कार करने योग्य हैं। तो आचार्य कुन्दकुन्द देव पंचाचार से विभूषित उन श्रमणों को नमस्कार करते हैं और अपने अंदर उस पंचाचार की भावनाओं को और प्रबल करते हैं।

ज्ञानाचार – व्यवहार और निश्चय रूप

ज्ञानाचार का मतलब क्या हो गया? सम्यग्ज्ञान रूप आचरण। अब वोसम्यग्ज्ञान रुप आचरण एक तो व्यवहार रूप होता है कि जैसे ज्ञान के आठ अंग होते हैं। उन आठ अंगो का पालन करना, ये कहलाएगा व्यवहार ज्ञानाचार और केवल अपने आत्मज्ञान में आचरण करना, इसका नाम हो गया निश्चय ज्ञानाचार।

दर्शनाचार – व्यवहार और निश्चय रूप

दर्शन माने सम्यग्दर्शन है। तो व्यवहार सम्यग्दर्शन के जो आठ अंग हैं, उन आठ अंगो का पालन करना, ये व्यवहार दर्शनाचार हो गया। जब हम उस भाव को छोड़कर के केवल अपनी आत्मा में ही स्थित होने का या रमण करने का भाव करते तो वो हो गया केवल अपना निश्चय दर्शनाचार।

चारित्राचार – व्यवहार और निश्चय रूप

जब तक तेरह प्रकार का चारित्र पालन किया जाएगा या अठाइस मूल गुण रूप चारित्र पालन किया जाएगा तब तक यह व्यवहार चारित्राचार कहलाएगा। जब सब विकल्प छोड़कर के बिलकुल शुद्ध आत्मभावों में लीन होते हैं तो वो निश्चय चारित्राचार कहलाता है। समझ में आ रहा है? हर चीज दो दो प्रकार की है। एक व्यवहार रूप और एक निश्चय रूप। ऐसे ही तपाचार।

तपाचार – व्यवहार और निश्चय रूप

तप बारह प्रकार का होता है। छह अंतरंग तप हैं और छः बाह्य तप हैं। जब तक ये बारह प्रकार के तप रूप विकल्पों में आचरण है तब तक व्यवहार तपाचार कहलाएगा और सब विकल्प छोड़ कर के केवल अपनी शुद्ध आत्मा में रमण करने रूप भाव आता है और उसमें स्थिरता आती है तो वहनिश्चय तपाचार कहलाएगा।

वीर्याचार – व्यवहार और निश्चय रूप

वीर्याचार में भी बाहरी अनेक प्रकार के जो नियम बने हुए हैं, उन नियमों का पालन करना, ये व्यवहार वीर्याचार है। अपनी शक्ति को नहीं छिपाते हुए तप करना।यथोक्त समय पर करना। माने जो समय जिस चीज का कहा गया है, उसी समय पर करना। जिसमें जितना समय लगाने के लिए कहा गया है, उतना समय लगाना। यह सबव्यवहार वीर्याचार कहलाएगा।

व्यवहार वीर्याचार का उदाहरण

जैसे मान लो आप से कहा जाए कि एक कायोत्सर्ग करो तो आप क्या करते हो? आपने नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ लिया। जबकि नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ने का जैसा भगवान ने तरीका बताया हैं, उस तरीके से णमोकार पढ़ोगे तो वो आपका एक व्यवहार से कायोत्सर्ग कहलाएगा और वहीं आपका व्यवहार से वीर्याचार कहलायेगा कि आप अपनी शक्ति लगा कर के नौ बार णमोकार मंत्र को जैसा बताया गया है, वैसा पढ़ रहे हैं। हम उसमें क्या करते हैं? हम उसमें जल्दी जल्दी नौ बार णमोकार मंत्र भी पूरा नहीं पढ़ते हैं और नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं कर के उसको छोड़ देते हैं। तो वह व्यवहार रूप भी पूरा नहीं होता।निश्चयतो बहुत दूर की बात है। तो पहले व्यवहार रूप सही होगा तो निश्चय रूप सही होगा। अब व्यवहार रूप क्या होता है? आचार्यों ने कहा है कि श्वासोच्छ्वास के साथ में नौ बार णमोकार मंत्र पढना और उस समय पर शरीर का ममत्व छोड़ना। कायोत्सर्ग - काय का उत्सर्ग माने त्याग कर देना। ये सोच कर के कि हम इतनी देर के लिए अपनी काया को छोड़ रहे हैं। और उस समय पर अपने आत्मीय गुणों का या जिनेंद्र भगवान के गुणों को स्मरण

करना ,तो वह कायोत्सर्ग कहलाता है। इतनी चीजें याद रख कर के जब एक कायोत्सर्ग किया जाएगा तो व्यवहार वीर्याचार कहलायेगा। क्योंकि आप उसमें शक्ति लगा कर के वो काम कर रहेहो। ऐसा करते करते जब आपका मन बिल्कुल उससे भी हटकर के अपने आप आत्मा में निमग्न होने लगेगा तो वह निश्चय वीर्याचार कहलायेगा।

कायोत्सर्ग का अर्थ

कायोत्सर्ग में क्या होता है? काय से ममत्व छोड़कर सत्ताईस श्वासोच्छ्वास के माध्यम से नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ा जाता है। अगर आपको णमोकार मंत्र नहीं भी याद रहे तो कम से कम सत्ताईस श्वासोच्छ्वास को स्मरण करते हुए जिनेन्द्र भगवान का स्मरण करो। तो भी आपका एक कायोत्सर्ग हो जाएगा। श्वासोच्छ्वास क्या होती है? एक श्वास लेना और छोड़ना। जो सामान्य से श्वास चलती है उसको बस केवल सहजता से लेना और सहजता से छोड़ना। बगल वाले को पता भी ना पड़े। नहीं तो पता चले कि आपकपालभाती करने लग जाओ। सहजता से जोश्वास आ रही है और जो श्वास छोड़ रहे हैं।एक हो गया। फिर एक श्वास आई और एकश्वास छोड़ा। दूसरा हो गया। और उस समय पर हमारा ध्यान शरीर पर न हो। या तो भगवान की प्रतिमा पर हो या णमोकार मंत्र के स्मरण पर हो। श्वास पर भी चला जाता है तो श्वास के साथ साथ यह भी ध्यान रहे कि णमोअरिहंताणं, णमोसिद्धाणं।बोलना नहीं है लेकिन याद रहे। **णमोआयरियाणं, णमोउवझायाणं, णमोलोएसव्वसाहूणं**। ये तीन श्वासोच्छ्वास में एक बार णमोकार मंत्र पूरा हो गया। फिर दूसरी बार पढ़ना। और सही तरीके से तब होगा जब आप उंगलियां पर भी गिनो नहीं। तब सही तरीके से होगा। तो कैसे करोगे? आपको याद रखना पड़ेगा कि एक बार हो गया है। यह सब practice से ही संभव है। अभ्यास करने से संभव है। आप तो नौ बार की बात करते हो आचार्य महाराज तो माला बिना उंगली गिने हुए फेर लेते हैं। एक माला, दो माला, तीन माला बिना उंगली गिने हुए ही फेर लेंगे और सब ध्यान रहेगा किकितनी माला हो गई। कैसे कर लेंगे? उसकी भी तरकीब होती है। भगवान पर ध्यान रखते हुए गिनती करते चले जाओ और अपने आप आपका नौ बार हो जाएगा। एक सौ आठ बार हो जाएगा। यह सब तीर्थंकरों पर ध्यान रखते हुए हो जाता है। गिनती करने का तरीका अलग अलग होता है। जैसे आपको नौ बार करना है। तो एक बार तीन श्वासोच्छ्वास में आदिनाथ भगवान के पैर में ध्यान रखो। फिर अजितनाथ भगवान पर आ जाओ। फिर वहाँ पर तीन श्वासोच्छ्वास कर ली। फिर संभवनाथ भगवान पर चले जाओ। ऐसा करते हुए आप नौ बार कर सकते हैं। अथवा भगवान के किसी एक अंग पर नौ बार ध्यान रख लो।दो तो चरण हो गए। दो हाथ हो गए। पांच शरीर के केंद्र जो अर्हं योग में बताया करते हैं (मुख्य रूप से नाभि, हृदय, कंठ, ज्ञान केंद्र और सिद्धि केंद्र)। बस नौ हो गए। कई तरीके होते हैं। बिना हाथ चलाये हम इस तरीके से कायोत्सर्ग की विधि को अपना कर के औरजो कुछ भी हम करें, वह सही तरीके से करें।जैसा कहा गया है, वैसा करेंगे तो वोवीर्याचार कहलाता है। माने, हम अपनी आत्मशक्ति का सही उपयोग कर रहे हैं। समझ में आ रहा है?

श्रावक का पंचाचार

श्रावक को भी क्या करना पड़ता है? पहले तो उसको थोड़ा सा व्यवहार पंचाचारों का ज्ञान रखना पड़ता है। अब श्रावक क्या कर पाएगा? ज्ञान का और दर्शन का आचरण तो कर लेगा। थोड़ा बहुत चारित्र कुछ होगा तो होगा नहीं होगा तो कुछ नहीं होगा। तप भी जब कभी कुछ कर पाए तो कर पाए। जब कभी थोड़ा बहुत अगर ये ज्ञान और दर्शन के साथ में चल जाए तो जैसा ज्ञानचार के आठ अंग बताए हैं, दर्शनाचार के आठ अंग बताये हैं, उन अंगों का सही ढंग से पालन करना, वो भी वीर्याचार कहलायेगा। अब जैसे ज्ञानाचार में क्या होता है? हम जब कोई भी ग्रंथ पढ़ें तो बहुमान के साथ पढ़ें। विनय के साथ पढ़ें। उसका शब्द भी पढ़ें और अर्थ भी पढ़ें। दोनों पर ध्यान दें। और कोई ना कोई एक नियम ले लें कि जब तक यह ग्रंथ पूरा होगा तब तक हमारे लिए इस चीज का त्याग। तो ये आपका ज्ञानाचार कहलाएगा। पहले व्यवहार ज्ञानाचार तो तैयार करो। तब निश्चय ज्ञानाचार की बात आएगी। सब लोग निश्चय ज्ञानाचार को तो प्रकटाने की चेष्टा करते हैं। लेकिन व्यवहार ज्ञानाचार के बिना निश्चय ज्ञानाचार भी नहीं आता।

पहले विनय रखो, ग्रंथ का बहुमान करो, उसे पैरों पर मत रखो, उसे सामान्य पुस्तक मत समझो। समझ आ रहा है? उसे कभी अपने बेडों पर बैठ कर के मत पढ़ो। इतने बड़े बड़े शास्त्र हैं, इनको शुद्धि पूर्वक पढ़ो। जब पढ़ो उससे पहले कम से कम हाथ धो लो। बाहर से चल के आये हो तो पैर धो लो। थोड़ा ये भी सोच लो कि आज हम जिन कपड़ों को पहने हैं वो कपड़े कितने अशुद्ध हो चुके हैं। किन किन से मिलकर के आये हैं? किन किन के साथ में बैठें हैं? ये सब चीजों को आप ध्यान में रखोगे तो थोड़ा सा ज्ञानाचार चलेगा। केवल ग्रंथ सामने रख कर के हमने पढ़ लिया और आपने सुन लिया तो ज्ञानचार नहीं हो जाता। इससे विनय बढ़ेगी, बहुमान बढ़ेगा तो आपके अंदर विशुद्धि बढ़ेगी। इसके बिना वह ज्ञान आगे वृद्धि को प्राप्त नहीं होता है। जब भी पढ़ो विनय के साथ पढ़ो। संभव हो सके तो जमीन पर बैठ कर के पढ़ो। भले ही थोड़ा सा पैर हिला लो,आसन बदल लो। कोई बात नहीं। बेड पर पड़े पड़े कभी भी इन ग्रंथों को नहीं पढ़ना चाहिए। विनय ही नहीं होती ग्रन्थों की। कई बार लोग इतना तक ध्यान नहीं रखते हमारा मुंह झूठा है की नहीं? ये भी एक विनय सिखाई जाती थी पहले कि कभी देव शास्त्र गुरु के सामने झूठे मुहँ नहीं आना हैं। शास्त्र पढ़ रहे हो तो कम से कम उस समय पर तो खाना पीना कुछ नहीं करना। शास्त्र पढ़ने से पहले नौ बार णमोकार मंत्र तो कम से कम पढ़ना। मंगलाचरण करना। उसके बाद में शास्त्र पढ़ना। ये जो विनय होती हैं, इन विनय के बिना कभी भी ज्ञानाचार का पालन नहीं होता है। इसको क्या बोलते हैं? ज्ञानाचार। ये सब व्यवहार ज्ञानाचार है। इसी के माध्यम से हमें निश्चय जो अपना आत्मज्ञान है, वहां तक हमारी गति होगी। यह व्यवहार बिगड़ जाएगा तो निश्चय तक वह साधन नहीं बनेगा। निश्चय की प्राप्ति का वह साधन नहीं बनेगा।

व्यवहार हमारे लिए साधन बन जाता है। कहाँ तक पहुंचने के लिए? हमें अपने आत्म स्वरूप में स्थिर होने के लिए। आत्म स्वरूप की भावना करने के लिए भी व्यवहार साधन बनता है। तो शास्त्र को पढ़ना भी इतना सरल नहीं होता जितना आप लोगों ने बना लिया है। उससे पहले भी कुछ नियम होते हैं। उन नियमों का भी पालन करना। हाथ धो कर के आना, पैर धो करके बैठना, कपड़े भी यथाशक्ति शुद्ध हों। जैसे मंदिर में आने के लिए हम अच्छे कपड़ों का प्रयोग करते हैं ऐसे ही शास्त्र स्वाध्याय के लिए जो बड़े ग्रंथ होते हैं, उनके लिए भी थोड़ा कपड़ों की शुद्धि रहे। तब वह विनय के माध्यम से ज्ञान हमारे भीतर आता है और यहीं पर सब फेल हो जाते हैं। अब देखो जिनको घुटनों की समस्या है, उनके लिए कुछ ना कहो। उनको बुरा लगेगा लेकिन फिर भी यह ध्यान रखो कि हम अपने पैरों पर ग्रंथों को न रखें। ग्रंथ को, जो ग्रंथ का आसन होता है, उस पर रखें। सामने table हो।उसी पर रख कर के हम उसको विनयपूर्वक पढ़ें।इतना प्रयास करना। तो ये क्या कहलाएगा? ज्ञानाचार।

इसी तरीके से दर्शनाचार हैं। सम्यग्दर्शन के आठ अंगों का पहले पालन करो। जब वो होगा तो व्यवहार दर्शनाचार होगा। उसके माध्यम से निश्चय दर्शनाचार की प्राप्ति होगी। ऐसे ही चारित्र है, ऐसे ही तप है, ऐसेही वीर्य है। ऐसे ये व्यवहार और निश्चय दोनों प्रकार के पंचाचार होते हैं। ये पांचों ही प्रकार के आचारों का पालन करने वाले कौन होते हैं? श्रमण होते हैं। इसलिए उनको नमस्कार किया जाएगा। तुम को नमस्कार नहीं किया जाएगा। भले ही आप कितने ही सम्यग्दृष्टि बने रहो। नमस्कार किसको किया जाएगा? जो पंचाचार का पालन कर रहे हैं।

भ्रान्ति-नय-व्याख्या

अब आप कहने लगो कि हम भी दो आचार का पालन कर रहे हैं। दर्शनाचार, ज्ञानाचार। नहीं समझ में आ रहा? कई लोग कहते हैं कि थोड़ा तो कुछ हमें भी आ गया। सम्यग्दर्शन आ गया। सम्यग्ज्ञान आ गया। तो थोड़ा तो हमारे अंदर भी वीतरागता आ गई। अनंतानुबंधीकषाय का क्षय हो गया या क्षयोपशम हो गया याउदय का अभाव हो गया तो थोड़ा बहुत तो हमारे अंदर भी आ गया। सम्यग्दर्शन आ गया और मिथ्यात्व चला गया। हमारे अंदर भी वीतरागता आ गई। तो क्या करें? आपकी वीतरागता को नमस्कार करें? जो काम आचार्य कुन्दकुन्द देव नहीं कर सकते वो काम कोई भी नहीं कर सकता। हम श्रमण भी नहीं कर सकते। देखो! आचार्य कुन्दकुन्द देव किन किन को नमस्कार कर रहे हैं? अरिहंतों को किया, तीर्थंकरों को किया, सिद्धों को किया और श्रमणों को किया है। और वो श्रमण कौन से होने चाहिए? जो ये पंचाचार का पूरा पालन करने वाले हों। इनसे ही अगर सीख लोगे तो भी आपका कल्याण हो जाएगा कि जो आचार्य कुन्दकुन्द देव कर रहे हैं वही हमें करना है। हमें भी तीर्थंकरों को नमस्कार, तीर्थंकरों की वंदना, सिद्धों की वंदना और श्रमणों की वंदना करनी है। कैसे श्रमणों की? जो पंचाचार से सहित हों - ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार।

सम्यग्दृष्टि का व्यवहार – सम्यग्दर्शन के आठ अंग

तो ऐसे गुणों की भावना करने से ही अपने अंदर गुण आने लग जाते हैं। किसी बाहरी भेष की आराधना नहीं है। देखो! जैन दर्शन कितना महान है। किसी का नाम नहीं ले रहा है। किसकी आराधना? आत्मा के गुणों की। ये सब आत्मा में ही होती है। सब चीजें ज्ञानाचार, दर्शनाचार, सम्यग्ज्ञान का पालन,सम्यग्दर्शन का पालन। ये सब कहाँ होगा? ये सब आत्मा के वैभव हैं। शरीर में कुछ नहीं है। शरीर की क्रियाओं से तो बस केवल प्रकट होता है। अगर आपके पास सम्यग्दर्शन होगा तो आपके अंदर जो आठ अंगों के प्रति बहुमान है, वो आपके व्यवहार में दिखाई देंगे। कौन से आठ अंग होते हैं? नि:शंकित अंग, नि:कांक्षित अंग, निर्वि-चिकित्सा अंग, अमूढ़दृष्टि अंग, उपगूहन अंग, स्थितिकरण अंग, वात्सल्य अंग और प्रभावनाअंग। ये आठों अंगों पर भी ध्यान देना। तो सम्यग्दृष्टि जीव का आचरण कैसे दिखाई देगा? इन आठ अंगमय होगा।

कभी भी वह किसी भी प्रकार की जिनवाणी में लिखे हुए तत्व की कोई भी शंका नहीं रखेगा। अब वर्तमान में तो कोई सर्वज्ञ नहीं है। पता नहीं ये जो लिखते हुए आ रहे हैं, क्या भगवान के ही अनुसार लिखा है? ये किसने कहा? क्या इसकी प्रमाणिकता? सुन रहे हो? ऐसा मन में विचार कभी भी सम्यग्दृष्टि जीव के अंदर नहीं आएगा। वो हर चीज को पहले ही तोल चुका होता है। यह कहलाता है उसकानि:शंकित अंग।ऐसे हीनि:कांक्षित अंगहोता है - धर्म करके, धर्म के फल से किसी भी प्रकार इस संसार के भोग विलासता की अभिलाषा नहीं चाहना। इसको बोलते हैं -नि:कांक्षित अंग।ऐसे हीनिर्विचिकित्सा अंगहोता है। मुनि महाराज को देख कर के कभी भी ग्लानि का भाव नहीं आना। ये क्या कहलाता है? निर्विचिकित्सा अंग। किसी भी प्रकार के चमत्कारों में मूढ़ नहीं होना। येअमूढ़दृष्टिअंग हो गया। दूसरों के दोषों को देख करके भी उसको छिपाना, येउपगूहनहो गया। फिर उसको दोष रहित बनाने के लिए उसे उसी भाव में स्थिर करना, येस्थितिकरणहो गया। अपने साधर्मी भाइयों से वात्सल्य भाव रखना, येवात्सल्य अंगहो गया और यथाशक्ति धर्म की प्रभावना में सहायक बनना, ये धर्म प्रभावना अंग हो गया। ऐसे ये व्यवहार अंगों का आचरण सम्यग्दृष्टि में दिखाई देता है। तो उसे यह सम्यग्दर्शन के भाव अपने आप समझ में आने लग जाते है। तो आप यथा शक्तिज्ञान दर्शनाचार का पालन करते हैं। थोड़ा थोड़ा समय समय पर अपने चारित्र की वृद्धि के लिए, तप की वृद्धि के लिए भी और अपनी आत्मशक्ति की वृद्धि के लिए भी, अगर हम यथा शक्ति पालन करेंगे तो हमारे अंदर भी ये सब चीजें आने लगेंगी। लेकिन फिर भी जब तक आप घर में रहेंगे तब तक आप श्रमण नहीं कहलायेंगे। श्रमण में तो ये पाँचो चीजें पूरी होनी चाहिए।

प्रवचन०२ – मंगलाचरण (गाथा००२ – ००५)

सेसेपुणतित्थयरेससव्वसिद्धेविसुद्धसब्भावे।
समणे य णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे॥ २॥

सिद्धों समेत अवशेष जिनेश्वरों को, तीर्थंकरोंशुचितरों गुण-धारियों को।
सद्ज्ञान-वीर्य-तप-दर्शन-वृत्त वालों, वंदूँ लिए श्रमणताश्रमणोंनिहालों॥

अन्वयार्थ- (पुण)और (**विसुद्धसब्भावे**) विशुद्ध सत्ता वाले (**सेसेतित्थयरे**) शेष तीर्थंकरों को (**ससव्वसिद्धे**) सर्व सिद्ध भगवन्तों के साथ ही (**य**) और (**णाणदंसणचरित्ततववरियायारे**) ज्ञानाचार, दुर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार तथा वीर्याचार युक्त (**समणे**) श्रमणों को नमस्कार करता हूँ।

मंगलाचरण गाथा का अर्थ

अभी यह मंगलाचरण ही चल रहा है। मंगलाचरण की दोनों ही गाथाएं आप लोगों को पढ़ने में आ रही हैं।**इस**माने यह मैं।**सुरासुरमणुसिंदवंदिदं**अर्थात् सुर, असुर और मनुष्य के इंद्रो से वंदित।**धोद**अर्थात् धो दिया है।**घादि**माने घाती।**कम्ममलं**माने घाती कर्म मैल को। ऐसे कौन हैं? वर्धमान भगवान। जो कैसे हैं? **तित्थं**माने तीर्थ हैं और**धम्मस्सकत्तारं**माने, धर्म के कर्ता हैं। उनको हम क्या करते हैं? **पणमामि**अर्थात् मैं प्रणाम करता हूँ। ऐसे अर्थ लगाना आपको आना चाहिए। फिर उसके आगे**सेसे**माने शेष।**पुण**माने पुनः।**तित्थयरे**यानी तीर्थंकर। जो शेष तीर्थंकर हैं, उनको।**ससव्वसिद्धे**सभी सिद्धों से सहित।**विसुद्धसब्भावे**जो सिद्ध भगवान कैसे हैं? विशुद्ध सद्भाव वाले हैं। यानि जिनका सत्त माने, अस्तित्व विशुद्ध है।**समणे ये णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे**और वह किस को नमस्कार करते हैं? **समणे**माने श्रमणों को।

श्रमण का स्वरूप

जो कैसे हैं? ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्याचार का पालन करने वाले हैं। पाँच प्रकार के आचार बताये गए हैं। पहला आचार क्या कहलाता है? ज्ञानाचार। दूसरा दर्शनाचार, तीसरा चारित्राचार, चौथा तपाचार और पाँचवावीर्याचार। यह सभी आचारों के कितने रूप होते हैं? एक निश्चय से और एक व्यवहार से। यानी व्यवहार ज्ञानाचार, निश्चय ज्ञानाचार, व्यवहार दर्शनाचार, निश्चय दर्शनाचार, व्यवहार चारित्राचार, निश्चय चारित्राचार। ऐसे ही आगे भी होते हैं। तो उसमें व्यवहार ज्ञानाचार के बारे में बताया था।व्यवहार ज्ञानाचार के कितने भेद

होते हैं? आठ। ऐसे ही व्यवहार दर्शनाचार के कितने भेद होते हैं? आठ। आचार्य के व्यवहार चारित्राचार के १३ भेद और व्यवहार तपाचार के १२ भेद और वीर्याचार के भी अनेक भेद होते हैं। इसके कोई निश्चित भेद नहीं हैं। और जब निश्चय आचार होता है तो यह सब आत्म रूप हो जाते हैं। व्यवहार की क्रियाओं को छोड़ कर के यह सब कैसे हो जाते हैं? आत्मरूप हो जाते हैं। यानी आत्म स्वरूप में लीन होने पर पांचों ही प्रकार के आचारों का पालन हो जाता है। और जब अलग अलग करेंगे तो वह दर्शनाचार, ज्ञानाचार आदि अलग अलग तरीके से उनका पालन होगा। इस तरीके से यह दूसरी गाथा का अर्थ हो गया। तो इस तरह से यहां पर पंच परमेष्ठी को आचार्य कुंदकुंद देव ने नमस्कार कर लिया। अरिहंत भी हो गए, सिद्ध भी हो गए और आचार्य, उपाध्याय, साधु भी हो गए। श्रमण कह देने से तीनों ही प्रकार के परमेष्ठी आ जाते हैं। आचार्य भी, उपाध्याय भी एवं साधु भी। तो यह अभी भी मंगलाचरण ही चल रहा है। यानी ग्रंथ कितना बड़ा होगा? यह बात इससे समझी जा सकती है। इसका मंगलाचरण ही इतना बड़ा है। अभी मंगलाचरण का क्रम पूरा नहीं हुआ है। तीसरी गाथा में भी मंगलाचरण ही आने वाला है।

तेतेसव्वेसमगंसमगंपत्तेगमेवपत्तेगं।
वंदामि य वट्टंतेअरहंतेमाणुसेखेत्ते ॥ ३ ॥

जो भी यहाँ मनुज क्षेत्रन में सुहाते, हैं पूज्य तीर्थंकर हैं अरहन्त नाते।
मैं भिन्न-भिन्न अथवा इक साथ ध्याऊँ, पूजूँ उन्हें विनय से नत माथे भाऊँ।।

अन्वयार्थ- (**तेतेसव्वे**) उन उनसबको (**य**) तथा (**माणुसेखेत्ते**) मनुष्य क्षेत्र में विद्यमान (**अरहंते**) अरहन्तों को (**समगंसमगं**) साथ ही साथ समुदाय रूप से और (**पत्तेगमेवपत्तेगं**) प्रत्येक प्रत्येक को व्यक्तिगत (**वंदामि**) नमस्कार करता हूँ।

गाथा का अर्थ

तेतेमाने उन उन।**सव्वे**माने सबको।**समगंसमगं**यानी एक साथ समुदाय रूप में। अर्थात् सिद्ध भी बहुत सारे हैं, तीर्थंकर भी बहुत सारे हैं। साधु भी बहुत सारे हैं। तो क्या करना है? एक साथ सभी की वंदना कर लेना कि मैंने सभी को एक साथ प्रणाम कर लिया है। लोक के जितने भी साधु हैं, उनको भी मेरा प्रणाम। लोक में जितने भी सिद्ध परमेष्ठी हैं, उनको भी मेरा प्रणाम। लोक में जितने भी अरिहंत भगवान हैं, उनको भी मेरा प्रणाम। एक साथ ही हो जाता है और**पत्तेगमेवपत्तेगं**अर्थात् प्रत्येक। उनको हम अलग अलग भी प्रणाम करते हैं और सब को एक साथ भी प्रणाम करते हैं।**वंदामि य वट्टंते**और उनकी भी मैं वंदना करता हूं, जो वर्तमान में

हैं।**वट्टंते**माने जो वर्तमान में हैं।**अरहंते**जो वर्तमान में भी अरिहंत भगवान हैं। कहां होते हैं? **माणुसेखेत्ते**इस मनुष्य क्षेत्र में। वर्तमान में भी अरिहंत भगवान विचरण करते हैं। कहां पर करते हैं? मनुष्य क्षेत्र में।

मनुष्य क्षेत्र का स्वरूप

मनुष्य क्षेत्र बहुत व्यापक होता है, जिसे ढाई द्वीप कहते हैं। और जो ४५ लाख योजन प्रमाण होता है, वह मनुष्य क्षेत्र कहलाता है। जहां तक मनुष्य का आवागमन होता है। फिर उसके आगे मनुष्य नहीं जा सकते हैं। उस क्षेत्र को मनुष्य क्षेत्र कहा जाता है। तो आप लोग जो अभी यहाँ बैठे हैं, वह कौन से द्वीप में बैठे हैं। ढाई द्वीप के अंदर जम्बूद्वीप है। उस जम्बूद्वीप के बाद में दूसरा द्वीप आता है - धातकी खंड द्वीप। और उसके बाद आता है - पुष्करार्ध द्वीप। ये आधा लिया जाता है इसलिए इसका नाम पुष्करार्ध द्वीप है। और इन ढाई द्वीप में ही अरिहंत भगवान रहते हैं। और जो अरिहंत भगवान इन ढाई द्वीप में रहते हैं तो वह कहां रहते हैं? वह उन कर्म भूमिओं में रहते हैं जो शाश्वत कर्म भूमि कहलाती हैं। क्या बोलते हैं? शाश्वत। जिस क्षेत्र में हम और आप बैठे हैं, वह भरत क्षेत्र हैं। जम्बू द्वीप में 7 क्षेत्र हैं। उनमें से एक क्षेत्र का नाम है - भरत क्षेत्र। यह भरत क्षेत्र कर्मभूमि तो है लेकिन यह कर्म भूमि शाश्वत नहीं है। यह क्या कहलाती है? अशाश्वत। शाश्वत का मतलब? जो हमेशा कर्म भूमि ही चलती रहे। कोई दूसरी चीज ना आवे। तो भरत क्षेत्र में औरऐरावत क्षेत्र में भोग भूमि भी होती है और कर्म भूमि भी होती है। आपको मालूम होगा कि 6 काल होते हैं। इसमें अभी पंचम काल चल रहा है। उससे पहले चौथा काल था। उसमें तो कर्म भूमि थी। लेकिन उससे पहले जो तीसरा और दूसरा, पहला काल था, वह सब भोग भूमि के काल थे। भोग भूमि का काल हटा तो कर्म भूमि का काल आया। इसलिए यह जो क्षेत्र है, इसमें कर्म भूमि और भोग भूमि दोनों का परिवर्तन होता रहता है। इसलिए यहां पर जो कर्म भूमि है, उसे कहते हैं - अशाश्वत कर्म भूमि। और यहां अलग से याद किया जा रहा है मनुष्य क्षेत्र की उस कर्म भूमि को, जो शाश्वत है।

शाश्वत कर्म भूमि यानिविदेह क्षेत्र

शाश्वत कर्म भूमि कहां होती है? जिसे हम कहते हैं - विदेह क्षेत्र। उस विदेह क्षेत्र में हमेशा ही तीर्थंकर भगवान का बना रहना होता है। कभी भी वहां पर अभाव नहीं होता है। हर तीर्थंकर के समय पर वहाँ दिव्य ध्वनि इत्यादि के कार्य होते हैं। पूरा का पूरा लोक के लिए मोक्ष मार्ग बनता है। और यह भी बताया जाता है कि कम से कम 20 तीर्थंकर हमेशा ही विदेह क्षेत्र में विद्यमान रहते हैं। कितने? 20 तो कम से कम है औरअधिक से अधिक 160 हो सकते हैं। 170 तो भरत और ऐरावत सब मिलाकर होते हैं। विदेह क्षेत्र में 5 महा विदेह कहलाते हैं और एक एक में बत्तीस बत्तीसविदेहों की रचना हो जाती है। तो 32 x 5= 160 विदेह हो जाते हैं। जिनमें हर एक विदेह क्षेत्र में एक एकतीर्थंकर भी हो सकते हैं। तो इसलिए वह 160 विदेह के ही हो जाते हैं और 5 भरत में होते हैं, 5 ऐरावत में होते हैं। सब मिलाकर 170 कर्म भूमि होती हैं और उनमें 170 तीर्थंकर भी

हो सकते हैं। ऐसा भी शास्त्रों में बताया जाता है कि भगवान अजितनाथ के समय पर सभी 170 कर्म भूमियों में तीर्थंकरविद्यमान थे। सभी कर्म भूमि तीर्थंकरों से शोभित थी। भरत क्षेत्र में वर्तमान में अभाव है और ऐरावत क्षेत्र में भी वर्तमान में अभाव है। लेकिन विदेह क्षेत्र में सब मिलाकर के 20 तीर्थंकर तो कम से कम रहते ही हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द देव का सभी तीर्थंकरो को नमस्कार

इसीलिए आचार्य कुंदकुंद देव ने मनुष्य क्षेत्र में रहने वाले तीर्थंकरों को यहीं से बैठकर नमस्कार करते हैं। क्या सुन रहे हो? यहीं से बैठकर नमस्कार करना है। यहीं से बैठकर नमस्कार कर रहे हैं और उनका नमस्कार, जितने भी तीर्थंकर भगवान विदेह क्षेत्र में हैं, उन सब के लिए हो रहा है। केवल एक ही सीमंधर भगवान के लिए नहीं हो रहा है। जितने भी उस क्षेत्र में तीर्थंकर हैं, सबके लिए हो रहा है। सीमंधर भगवान के पास में साक्षात पहुंचें कि नहीं पहुंचे, कुछ कहा नहीं जा सकता। वह अगर यहीं से बैठे-बैठे भगवान को नमस्कार कर रहे हैं, तो इसका मतलब है कि वह कहीं नहीं गए। वह यहीं पर बैठकर भगवान को नमस्कार कर रहे हैं। और देखो थोड़ी सी सोचने वाली बात है कि अगर हमें इतना अद्भुत लाभ हो जाता कि हमें सीमंधर भगवान मिल गए होते तो क्या आचार्य कुन्दकुन्द देव उन सीमंधर भगवान का नाम स्मरण नहीं करते? उनका नाम नहीं लिख सकते थे? उनके लिए एक वंदना अलग से**"सीमन्दारेवन्दे"**ऐसा नहीं कह सकते थे? लेकिन उन्होंने क्या लिखा? **माणुसेखेत्ते**जितने भी मनुष्य क्षेत्र में तीर्थंकर हैं, उन सब की मैं वंदना करता हूं। तो यह चीज बताती है कि आचार्य कुंदकुंद देव मंगलाचरण कर रहे हैं तो सभी सिद्धों को याद कर रहे हैं। श्रमणो को याद कर रहे हैं और वर्धमान भगवान का भी नाम ले रहे हैं। और अगर सीमंधर भगवान के दर्शन किए होते तो सीमंधर भगवान का नाम भी अवश्य लेते। लेकिन उन्होंने किसी भी ग्रंथ में सीमंधर भगवान का कोई नाम नहीं लिया। अगर उन्हीं से उनको ज्ञान प्राप्त हुआ होता या उन्हीं के उन्होंने अदभुत दर्शन किए होते तो जरूर वह उनका नाम अपने किसी ग्रन्थ के मंगलाचरण में अवश्य लेते। ऐसा मेरा सोचना है। आपका सोचना कुछ भी हो सकता है।

वंदना, प्रणाम या नमस्कार।

तो हम अपनी बात बता रहे हैं कि वह अरिहंत भगवानों को नमस्कार कर रहे हैं, लेकिन कौन से? मनुष्य क्षेत्र में रहने वाले सभी अरिहंतों को नमस्कार कर रहे हैं। एक और बात जो देखने योग्य है कि इसमें एक शब्द है**वंदामि य वट्टंते। वंदामि**माने वंदना करना। कुछ लोग कई तरह के आग्रह करते हैं और कई तरह की विचारधारा पाल लेते हैं। कई लोगों का कुछ ऐसा कहना होने लगा है कि मुनियों को वन्दामि बोलना चाहिए, नमोस्तु नहीं बोलना चाहिए। सुन रहे हो? यह आवाज भी शायद तुम्हारी दिल्ली से ही शुरू हुई है। यहाँ पर

लिखा है ना -**वंदामि य वट्टंते।**वंदना कर रहे हैं। अगर हम पहली वाली गाथा को देखें तो उसमें तो**प्रणमामि**लिखा है। वहाँ प्रणाम कर रहे हैं। यहाँ वंदना कर रहे हैं। आगे की गाथा में णमो भी आने वाला है। नमस्कार भी कर रहे हैं। समझ में आ रहा है? मुख्य रूप से यह सब क्रियापद हैं और इन क्रियापदों का जहाँ जैसा प्रयोग करना होता है, हो जाता है। एक ही अर्थ में अनेक क्रियापद होते हैं। वंदना करना, प्रणाम करना, नमस्कार करना, अर्चना करना, पूजा करना, जहाँ जैसा बैठ जाता है, वही हो जाता है। गाथा के अनुसार और भाव के अनुसार। लेकिन उसमें कुछ लोग आग्रह कर लेते हैं कि मुनि महाराज को नमोस्तु नहीं बोलना चाहिए, वंदना करना चाहिए। ऐसा कई लोगों का कहना है। विद्वानों की घोषणा भी हो गई। और विद्वानों का तो क्या है? जो कहलवायोवो कह देते हैं। लेकिन जहाँ कहीं पर भी वंदना लिखा होता है, उसका एक अर्थ होता है।

वंदना – एक आवश्यक क्रिया और उसकी विधि।

मुनि महाराज के षट्-आवश्यक होते हैं। उनमें एक वंदना नाम का आवश्यक होता है। और जहां वंदना करने को कहा जाता है, उससे यह भाव निकलता है कि हम उनको केवल सिर झुका करके नमस्कार नहीं कर रहे हैं। हम उनकी वंदना कर रहे हैं। उस वंदना करने की जो विधि है, वह विधि वंदना नाम के आवश्यक में बताई गई है। इसको कहते हैं -**कृतिकर्म**वंदना। यानी कृति पूर्वक वंदना करना। कृति कर्म क्या होता है? जब भी हम किसी की वंदना करते हैं तो शास्त्रों में एक विधि दी है। कृति कर्म पूर्वक वंदना करना। तो उस कृतिकर्म की एक विधि होती है। कि पहले आप णमोकार मंत्र पढ़ो। फिर**सामायिक दंडक**पढ़ा जाता है। उसके बाद में 9 बार णमोकार मंत्र पढ़ा जाता है। फिर**थोस्सामि दंडक**होता है जिसमें 24 भगवान की स्तुति होती है और उसके बाद में फिर हमें अगर सिद्ध की वंदना करनी है तो हम सिद्ध भक्ति करेंगे। हमको आचार्य की वंदना करना है तो आचार्य भक्ति करेंगे। इस तरह से कृति कर्म पूर्वक जो आवश्यक की पूर्ति की जाती हैं, उसे वंदना कहा जाता है। समझ आ रहा है? यहां वन्दामि कहने का मतलब क्या है कि हम उनको कृति कर्म पूर्वक वंदना कर रहे हैं। कृति कर्म पूर्वक का मतलब हो गया कि जो विधि शास्त्रों में लिखी हुई है वंदना के लिए, उस विधि पूर्वक हम उनकी वंदना कर रहे हैं। तो उस विधि में सिद्ध भक्ति भी होती है। भक्तियाँ करके हम आगे का वन्दामि का कार्यक्रम करते हैं। तो मतलब भक्ति पूर्वक वंदना करना। यह वन्दामि शब्द से कहा जाता है।

वन्दामि या नमोस्तु

इसीलिए कुछ लोगों ने इसका अर्थ अपने-अपने तरीके से निकाल लिया और कुछ लोग कहते हैं कि वंदना ही बोलो, वन्दामि बोलो। नमोस्तु बोलने की कहीं कोई भी विधि नहीं है। तो ऐसा नहीं होता। वंदना करने का मतलब होता है कि हम उनकी भक्ति पूर्वक जो क्रिया कर रहे हैं, उसका नाम है - वंदना। यही बात आचार्य

अमृतचंद जी महाराज ने इसी ग्रंथ की टीका में की है। इस टीका में इस बात को लिखा है। आचार्य जयसेनमहाराज ने भी यही बात की है कि सिद्ध भक्ति पूर्वक और योगी भक्ति पूर्वक हम इनकी वंदना कर रहे हैं। क्योंकि जो अरिहंत सिद्ध हैं उनकी सिद्ध भक्ति पूर्वक वंदना हो जाती है और जो श्रमण होते हैं उनकीयोगी भक्ति पूर्वक वंदना हो जाती है। तो इस तरह से जो यह वंदना के पीछे छिपा हुआ भाव है, वह आपको बताया। तो आप कभी किसी भ्रम में मत पड़ना कि आप भी नमोस्तु की जगह वंदना कहने लग जाओ। एक व्यवहार होता है और उस व्यवहार की विधि भी निश्चित हो चुकी है कि मुनि महाराज के लिए नमोस्तु ही बोलना। यह नीतिसार आदि ग्रंथों में लिखा हुआ है। आर्यिका माताजी के लिए वन्दामि बोलना। तो यह एक एक व्यक्ति के लिए अलग-अलग सम्मान सूचक शब्द निर्धारित करें गए हैं। अब इसमें किसी भी तरह का विषमवाद करना, अपनी जो अच्छी परंपरा चल रही है, उसके साथ एक तरह से उलझना है। जो क्षुल्लकऐलक हैं उनके लिए इच्छामि बोलना। व्रती के लिए वंदना बोलना और सामान्य जो साधर्मी भाई हैं, उनसे जय जिनेंद्र करना। तो यह विधि चली आ रही है और इसमें कहीं कोई बाधा नहीं है। जब हम भक्ति पढ़ते हैं तो उसमे आता हैं - अंचेमीपुजेमिवन्दामिनम्मसामि। अंचेमी माने अर्चना करता हूँ। पुजेमि माने पूजा करता हूँ।वन्दामि माने वंदना करता हूँ। नम्मसामि माने नमस्कार करता हूँ। लोग इसके भी अपने अपने अर्थ निकाल लेते हैं। अब इसकी टीका की गई तो बोला गया कि द्रव्य से ही उनकी पूजा की जाती है तो वो अर्चना हो जाती हैं।पुजेमि मतलब जहां अष्ट प्रकार के द्रव्य का आलंबन लिया जाए वो पूजा हो जाती हैं। तो कोई कहने लगा कि गणधरपरमेष्ठी भी आठ प्रकार के द्रव्य से भगवान की पूजा करते हैं तो महाराज को भी करनी चाहिए। तो ऐसे ही लोग कुछ ना कुछ अर्थ का अनर्थ करते रहते हैं।

वंदना करने का काल और फल

जब हम किसी को भी वंदना कर रहे हैं तो उस वंदना में हमारे अंदर अनेक प्रकार की क्रिया से अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं। उन भावों में पर्यायवाची शब्दों का आलंबन लिया जाता है। तो अर्चना करना, पूजा करना, वंदना करना, नमस्कार करना, यह सब पर्यायवाची शब्द है। तो इन चीजों में ज्यादा उलझना नही हो। हमें तो भाव शुद्धि पूर्वक अरिहंतो को नमस्कार करना। यहीं से बैठे-बैठे सीमंधर भगवान को नमस्कार करने की भी इच्छा करना। होती है कि नहीं होती है? यहीं से बैठे-बैठे सिद्ध भगवान तक अपनी नमोस्तु पहुँचाना। अब वो सुनते ही नहीं हैं। नमोस्तु कैसे पहुचाये? वह सुने या ना सुने लेकिन आपको तो अपना काम करना ही है। देखो यह जैन दर्शन के अंदर द्रव्य की कितनी स्वतंत्र व्यवस्थाएँ, वस्तु की कितनी स्वतंत्र व्यवस्था है। यह बहुत अच्छी चीजें लगती हैं। वस्तु अर्थात् अपनी आत्मा स्वतंत्र है। हम भगवान के ऊपर निर्भर नहीं है कि भगवान जब सुनेंगे तभी हम उन्हें सुनाएंगे। दूसरों के यहां तो भगवान को इस तरीके से पूछा जाता है कि भगवान सुन रहे हो कि नहीं सुन रहे? और कई बार तो उनके भगवान ही सो जाते हैं। फिर आप किस को सुनाओगे? लेकिन जैन धर्म के अनुसार वस्तु व्यवस्था इतनी स्वतंत्र है।आचार्य कहते हैं - चाहे कोई भी समय हो, कोई भी

काल हो, कोई भी क्षेत्र हो, कोई भी स्थिति हो, कोई भी परिस्थिति हो। आप हमेशा यह भाव रखें कि हमें भगवान की स्तुति करना है, हमें भगवान की वंदना करना है। और जब आप भगवान की वंदना करेंगे, तब आपको भगवान की वंदना का फल उसी समय मिल जाएगा। Without any delay. यहां कुछ लेट नहीं होता है। इधर आपने भगवान की वंदना की और इधर आपको तुरंत अपने परिणामों में विशुद्धि मिल जाएगी। आचार्य समन्तभद्र महाराज कहते हैं, नमिनाथ भगवान की स्तुति करते हुए -**" स्तुतिःस्तोतुः साधोः कुशलपरिणामय स तदा, भवेन्मावा स्तुत्यः, फलमपिततस्तस्य च सतः"**क्या कहते हैं? भगवान की स्तुति करते हुए वह कहते हैं कि अगर यह स्वाधीन श्रायसपथ है तो हे भगवान! हे नमिनाथ भगवान! कोई भी भव्य जीव आपकी स्तुति यदि करता है तो उसे उसी समय पर कुशल परिणाम की प्राप्ति हो जाती है। कुशल परिणाम अर्थात् जो मंगल परिणाम और पुण्य भाव हैं, उसी समय उसे प्राप्त हो जाते हैं। चाहे भले ही जो स्तुति के योग्य है, जो भगवान स्तुति योग्य हैं, वह चाहे हमारे सामने हो या ना हो। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। भगवान हमारे सामने साक्षात हो या ना हो। लेकिन स्तोता जिस समय पर आप की स्तुति करेगा उसी समय पर उसके परिणामों में अंतर आ जाएँगे और उसके अंदर पुण्य बंध हो जाएगा और परिणाम अर्थात् भाव उसी समय पर मंगल रूप हो जाएँगे। यह फल उसको तुरंत ही प्राप्त हो जाएगा। ऐसा ही श्रायसपथ है।

श्रायसपथ की स्वाधीनता

श्रायस का मार्ग स्वाधीन हैं। मतलब मोक्ष का मार्ग स्वाधीन है। जब जब आप भगवान की स्तुति का भाव करोगे, आप के परिणामों में कुशलता आएगी। कषाय में मंदता हो जाएगी। आपके पाप कर्मो का आस्रव रुक जाएगा और पुण्य कर्म का अच्छा खासा बंध होगा। और आप के लिए लाभ ही लाभ होगा। भगवान है नहीं ,तो भी, हो, तो भी। हम भगवान से पराधीन नहीं है, हम स्वाधीन हैं। तो हमारी स्वाधीनता कब होगी? हम स्वाधीन कब होते हैं? जब हम चाहे तब हम हमारे लिए स्तुति हो जाए और जब जब स्तुति हो जाए तब तब उस स्तुति का फल हमे मिल जाए। तो हम स्वाधीन है।

स्वाधीनता का अर्थ और मार्ग

स्वाधीनता किसे कहते हैं? आपके घर में टीवी रखा है। अब आप स्वाधीन तो हो लेकिन पराधीन भी हो। पराधीन कैसे हो? light नहीं है तो टीवी नहीं चलेगा।invertor नहीं है तो टीवी नहीं चलेगा। ऊपर anteenaबाहर निकल गया तो टीवी नहीं चलेगा। बारिश आ गयी है तो फिल्म खराब आएगी। क्या समझ में आ रहा है? इतनी पराधीनता हैं। लेकिन इस स्तुति करने के लिए, मोक्ष मार्ग पर चलने के लिए हमें कहीं कोई पराधीनता नहीं है। आपका regulator always open समझ आ रहा है? जब भाव करो, जब भी आपके लिए पुण्य के संचय की इच्छा करो उसी समय पर आपके लिए पुण्य के परिणाम, कुशल परिणाम उत्पन्न हो

जायेंगे। कोई जरूरत नहीं है कि हमारे सामने जिन प्रतिमा होनी चाहिए तभी हम णमोकार मंत्र पढ़ेंगे, तभी हम भगवान की स्तुति करें। कहीं भी पढ़ो, कहीं भी बैठो, आपके मन में भाव आना चाहिए। यहीं बैठ कर के भगवान सिद्धों को याद करो। सोते समय कर लो, सोकर के करलो, सोने से पहले कर लो और सोते समय भी हो जाए, सोते सोते भी हो जाए तो भी कोई बात नहीं है। लेकिन ऐसा हो नहीं पाता। इतनी स्वाधीनता। इसको बोलते हैं - वस्तु तत्व बिल्कुल स्वाधीन है। आप अपने लिए करोगे तो तुरंत आपको फल मिलेगा। और आप ये देखोगे कि वह कर रहा है कि नहीं कर रहा है? वो करें तो हम करें। तो आपके लिए पराधीनता होगी। आपको तो स्वाधीनता है। कहीं पर भी आप हैं, अपने लिए हित चाहते हैं, कहीं पर भी बैठ कर के आप भगवान को नमस्कार कर सकते हैं। भगवान की स्तुति कर सकते हैं। और आचार्य कहते हैं - इस स्वाधीनता के मार्ग पर चल कर के आप अपना श्रायस पथ माने, मोक्ष का मार्ग तैयार कर सकते हैं। तो जैन दर्शन में भक्ति का मार्ग पराधीन नहीं है, स्वाधीन है। सीमंधर भगवान तक हमारी बात पहुंचेगी कि नहीं, कोई देवता आ जाए सामने, कोई सिद्धि हो जाए तो वो हमें वहां तक पहुंचा दें। हम यहाँ से भगवान को नमोस्तु कर रहे हैं, पता तो पड़े वहां भगवान को। कुछ सोचने की जरूरत नहीं है। तुम अपना काम करो। यहीं बैठे बैठे। सीमंधर भगवान विदेश क्षेत्र में विद्यमान हैं। वह पांच सौ धनुष की काया वाले हैं।उनके चरणों में मेरा सच्चे मन से, वचन पूर्वक, काय से मस्तक झुकाते हुए नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है। आपका काम हो गया। क्या हो गया? आप की भावना अरिहंत भगवान से जुड़ गई। आपके मन में उनके प्रति भक्ति आ गई। आपके अंदर पुण्य का बंध हो चुका। यह स्वाधीनता का मार्गहैं।

क्या सिद्धशिला तक पहुँचने वाला एकइंद्रिय जीव पुण्यशाली है?

तो हमें कहीं पर भी जाने की जरूरत नहीं है। यहीं से भाव करके हम भगवान की वंदना कर सकते हैं। नहीं तो सिद्ध शिला पर कौन जाएगा? सिद्ध भगवान की वंदना करने के लिए तो बस एकइंद्रिय जीव पहुंचते हैं। फिर आपको भी एकइंद्रिय बनना पड़ेगा और एक एकइंद्रिय बन जाओगे तो फिर वहां पता ही नहीं पड़ेगा कि हम कहाँ हैं और वो कहाँ हैं? कई लोग पूछते हैं। महाराज ! सिद्ध शिला पर हम नहीं जा सकते हैं पर एक एकइंद्रिय पहुँच जाते हैं ,तो बड़े पुण्यशाली होंगे? वह पुण्यशाली नहीं हैं। उनको तो पता ही नहीं है कि हम कहाँ हैं। एकइंद्रिय जीवों का जन्म तो कहीं पर भी लोक के अंदर हो जाता है और उनका सिद्ध शिला पर जन्म भी हो गया तो भी उनकी चेतना में कोई पवित्रता नहीं आती। क्योंकि पवित्रता तो भावों से आती है। उन्हें तो कोई भाव ही नहीं है कि हम यहाँ हैं और हमे क्या करना है? उनको वहां पर पहुंचने के बाद भी वो पवित्रता नहीं आ सकती। यहां आप बैठे बैठेवो पवित्रता ला सकते हैं क्योंकि आप उनका स्वरूप जानते हो। वो उनका स्वरूप नहीं समझते हैं। तो आपके लिए यह सौभाग्य है कि आप भले ही वहां सिद्ध शिला में नहीं पहुंच पाते लेकिन यहीं पर बैठे बैठे सिद्ध भगवान को नमस्कार कर सकते हो। इसीलिए यहाँ पर जो आचार्य कहते हैं कि

हे भगवन ! मैं आपकी यहीं से वंदना कर रहा हूँ। तो मतलब वोभक्तिपूर्वक वंदना कर रहे हैं। जो कृति कर्म होते हैं उस पूर्वक वंदना कर रहे हैं, प्रणाम कर रहे हैं। और यह अभी भी उनका भाव आगे भी बना हुआ है।

अभी ये मंगलाचरण का क्रम चल रहा है। और देखो! अगर मंगलाचरण किया जाता है, कोई भी भगवान से प्रार्थना की जाती है तो उसके कुछ फल की भी इच्छा कर ली जाती है। कोई भी बिना वजह किसी को नमोस्तुनहीं करता है। अपन भी नहीं करते हैं। पूर्व आचार्यों ने भी नहीं किया है। लेकिन उस नमोस्तु का फल क्या होना? क्या चाहना? यह हमें पूर्व आचार्यों से सीखना होगा। देखो आचार्य महाराज अब आगे क्या कहते हैं और क्या वह फल चाह रहे हैं?

किच्चाअरहंताणंसिद्धाणंतहणमोगणहराणं।
अज्झाावयवग्गाणंसाहूणंचेवसव्वेसिं ॥ ४॥
तेसिंविसुद्धदंसण-णाणपहाणासमंसमासेज्ज।
उवसंपयामिसम्मंजत्तोणिव्वाणसंपत्ती ॥ ५॥ जुगलं

सिद्धों पुनीत अरहन्तन को जिनों को, पूज्यों वरों गणधरोंमुनिनायकों को।
आचार्यवर्य-उवझायसुसाधुओं को, मैं वन्दना कर सभी परमेष्ठियों को।।
है मुख्य ज्ञान-दृग आश्रम जो उन्हीं का, पूरा प्रयास कर आश्रय ले उसी का।
सम्यक्तया श्रमण हो समता भजूँ मैं, निर्वाण प्राप्त फलतः ममता तजूँ मैं।।

अन्वयार्थ-इस प्रकार (**अरहंताणं**) अरहन्तों को (**सिद्धाणं**) सिद्धों को (**तहगणहराणं**) आचार्यों को (**अज्झाावयवग्गाणं**) उपाध्याय वर्ग को (**चेव**) और (**सव्वेसिंसाहूणं**) सर्व साधुओंको (**णमोकिच्चा**) नमस्कार करके। (**तेसिं**) उनके (**विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं**) विशुद्ध दर्शन ज्ञान प्रधान आश्रम को (**समासेज्ज**) प्राप्त करके (**सम्मंउपसंपयामि**) मैं साम्य को प्राप्त करता हूँ (**जत्तो**) जिससे (**णिव्वाणसंपत्ती**) निर्वाण की प्राप्ति होती हैं।

ये दो गाथाएं युगल हैं, एक साथ हैं।

<u>गाथा का अर्थ</u>

अरहंताणंमाने अर्हन्तों को। अब जो जो कर लिया, उसको समेट रहे हैं। हमने क्या क्या कर लिया तीन गाथाओं में? अरिहंतों को नमस्कार कर लिया।**सिद्धाणं**माने सिद्धों को नमस्कार कर लिया।**तह**माने उसी

प्रकार।**णमो**माने नमस्कार किया है।**गणहराणं**मानेगणधरों को भी मैं नमस्कार कर रहा हूँ। ये भी कह सकते हैं कि अलग से भी कर रहे हैं और कर भी चुके हैं। श्रमण कहने से सब आ ही गया है और यहां पर पुनः याद कर रहे हैं कि मैं गणधरों को भी नमस्कार कर रहा हूँ। अब यहाँ पर गणधर से मतलब है - आचार्य परमेष्ठी को यहां गणधर कहा गया है।**अज्झावयवग्गाणं**और अध्यापक वर्ग माने अध्यापकों का समूह। अब देखो**अज्झावय**माने क्या हो गया? अध्यापक को क्या बोलते हैं? **अज्झावय**माने उपाध्याय परमेष्ठी। चूंकि पठन पाठन का मुख्य कार्य करते हैं इसलिए उनको अध्यापक भी कहा जाता है। अपने स्कूल के कॉलेज के अध्यापक मत समझ लेना।**साहूणंचेवसव्वेसिं**और जितने भी साधु हैं, उन सबको भी मैं नमस्कार करता हूँ।

णमोकार में लोए

एक जगह शास्त्र में यह भी लिखा हुआ है कि जो हम ये पंक्ति पढ़ते हैं**णमोलोएसव्वसाहूणं**तो णमोलोएसव्वसाहूणं के साथ ही नहीं जोड़ना है। लोए शब्द इन सब के साथ जुड़ जाता है। लोक में सभी अरिहंतों को नमस्कार करता हूँ। लोक में सभी सिद्धों को नमस्कार करता हूँ। लोक में सभी आचार्यों को, लोक में सभी उपाध्याय को, लोक में सभी साधुओं को नमस्कार करता हूँ। ये सब के साथ जुड़ जाता हैं।इसमें कोई बाधा नहीं है। ठीक है न। तो जब भी आप अगर कभी णमोकार मंत्र में नया भाव लाकर के पढ़े तो इस ढंग से भी पढ़ सकते हैं कि लोक में जितने भी अरहंत हैं, मैं उन सब को नमस्कार कर रहा हूँ। भले ही लोएसबके साथ नहीं लिखा ना हो लेकिन आप सबके साथ लगा सकते हैं। यहां पर भी वही स्थिति है कि जितने भी आचार्य उपाध्याय अरहंत सिद्ध साधु हैं, उन सबको मैं नमस्कार करता हूँ।

परमेष्ठी का स्वभाव

तेसिंमाने, उनके।**विसुद्धदंसण - णाणपहाणासमंसमासेज्ज**ये सब कैसे हैं? ये सभी विशुद्ध दर्शन ज्ञान की प्रधानता रखने वाले हैं। इस पर हमारी दृष्टि नहीं जा पाती। ये सब कैसे हैं? इनकी आत्मा में दर्शन और ज्ञान की जो प्रधानता है, वह दर्शन और ज्ञान की प्रधानता इसलिए है क्योंकि वह हमेशा अपनी आत्मा के सहज शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव को ही ध्यान में रखते हैं। जो अरहंत सिद्ध परमेष्ठी हैं वो तो अपने उस सहज शुद्ध स्वभाव को प्राप्त हो चुके हैं और बाकी के जो तीन परमेष्ठी हैं, वो जो कुछ भी व्यवहार रत्नत्रय की आराधना करते हैं तो वह इसी विशुद्ध दर्शन ज्ञान को प्राप्त करने के लिए करते हैं। ये दर्शन ज्ञान की विशुद्धता का मतलब क्या है? जो हमारी आत्मा का दर्शन गुण और ज्ञान गुण है वही हमारी आत्मा का सबसे बड़ा चैतन्य भाव है। और आत्मा के अंदर सबसे ज्यादा इन्हीं दो गुणों की चैतन्यता का हमें आभास होता है। कौन से दो गुण? दर्शन गुण और ज्ञान गुण। आत्मा का सबसे बड़ा स्वाभाव क्या है? जानना और देखना। लेकिन वह स्वभाव की शुद्धता नहीं होने के कारण से, यह दर्शन और ज्ञान जो आत्मा के गुण है, यह शुद्ध नहीं हैं। ये कैसे हैं?

अशुद्ध हो गए हैं। किनके कारण से? कर्म के कारण से। तो इन अशुद्ध गुणों को जिन्होंने शुद्ध कर लिया है, वह तो हो गए अरिहंत और सिद्ध भगवान और इन्हीं आत्मा के गुणों को शुद्ध करने के लिए जो निरंतर चारित्र के माध्यम से अपनी उस आत्मा के सम्यक स्वभाव को बार बार ध्यान में लाते हैं, बार बार उसी दर्शन ज्ञान की प्रधानता वाली आत्मा के स्वभाव का स्मरण करते हैं और उसी का ध्यान करते हैं, ऐसे ध्यानी भी आचार्य उपाध्याय और साधु परमेष्ठी ही होते हैं। इसलिए अगर हम इनको नमस्कार कर रहे हैं तो हमें क्या प्राप्त करना है? कोई लौकिक इच्छा नहीं है कि हमें कुछ मान सम्मान मिल जाए, कि हमें कुछ धन वैभव की प्राप्ति हो जाए, कि हमारे कुछ विघ्न दूर हो जाए। क्या मिल जाए? आत्मा को नमस्कार कर रहे हो तो आत्मा के गुणों की प्राप्ति की ही भावना करो। हर किसी को नमस्कार तो नहीं होता न। जो अपने दर्शन ज्ञान स्वभाव की आराधना कर रहे हैं उन्हीं से हम यह प्रार्थना करेंगे कि जैसे आप अपने दर्शन ज्ञान स्वभाव की प्रधानता को प्राप्त हैं, वही चीज हमको भी प्राप्त हो। इसलिए यहाँ बहुत अच्छा भाव है कि विशुद्ध दर्शन ज्ञान प्रधान**पहाणासमं**लिखा हुआ है। इसका अर्थ आचार्यों ने निकाला है कि विशुद्ध दर्शन ज्ञान प्रधान आश्रम का आश्रय लेता हूँ।**समासेज्ज**माने आश्रय लेता हूँ। आश्रम का मतलब हो गया- जहाँ पर ये विशुद्ध दर्शन ज्ञान रहते हैं, उस स्थान को आश्रम कहा गया है। आश्रम का मतलब कोई मठ नहीं है, न कोई ईंट पत्थरों की चीजें हैं। आश्रम का मतलब - जहाँ पर ये विशुद्ध दर्शन ज्ञान प्रधान रूप आचरण चलता है, ऐसे उस स्थान का आश्रय लेकर के, माने पंच परमेष्ठी की आत्माओं के विशुद्ध दर्शन ज्ञान स्वभाव का आश्रय लेकर के, मैं उवसंपयामि**,** माने प्राप्त कर रहा हूँ। क्या प्राप्त कर रहा हूँ? **सम्मं।** किसको प्राप्त करना है? **सम्मं**का मतलब होता है - साम्यभाव।

पंच परमेष्ठी को नमस्कार क्यों करना?

पंच परमेष्ठी की वंदना नमस्कार करके क्या प्राप्त करना है? साम्यभाव। अब यह साम्यभाव क्या होता है? आगे आएगा। अगर उन्होंने कहा है कि मुझे यह प्राप्त करना है तो बताएँगे भी तो कि ये क्या होता है? ये इतना बड़ा भाव है कि**जत्तो**माने उसी से।**णिव्वाणसंपत्ती**निर्वाणकी संप्राप्ति। यानि निर्वाण की प्राप्ति यदि होती है तो किससे होती है? साम्य भाव से होती है। क्या आलंबन लेना? पंच परमेष्ठी का आलंबन लेना। आलंबन माने माध्यम बनाना। हमने पंच परमेष्ठी को नमस्कार किया तो किसलिए किया? आज तक आपको पता ही नहीं होगा? बस हम तो करते रहते हैं। महाराज ! पाप नष्ट हो जाता है, पुण्य की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए कर लेते हैं। लेकिन जब आप उनकी आत्मा की ओर दृष्टिपात करोगे तब आपको पता पड़ेगा कि पाप और पुण्य से रहित जो आत्मा का स्वभाव है, शुद्ध स्वभाव है, उस शुद्ध स्वभाव को प्राप्त करने के लिए हम पंच परमेष्ठी को नमस्कार करते हैं। कुछ ज्ञान में शुद्ध भाव आ रहा है? पंच परमेष्ठी को नमस्कार करने के लिए हमारे समक्ष कोई लक्ष्य भी होना चाहिए। और वह लक्ष्य केवल इतना ही नहीं कि बस पाप नष्ट हो जाए और पुण्य आ जाए। ये तो एक तरीके की मांग हो गई। ये तो सांसारिक चीजें हो गई। वस्तुतः जो आत्मा की संपत्ति है, वो

क्या है? साम्यभाव। वह साम्यभाव जिसके कारण से निर्वाण की प्राप्ति होती है। ऐसा साम्यभाव चाहिए, जिससे निर्वाण , मिले मोक्ष मिले। उस साम्यभाव से ही सब प्रकार के दुखों से मुक्ति मिलती है। इसलिए पंच परमेष्ठी को नमस्कार करने का प्रयोजन साम्यभाव की प्राप्ति करना होना चाहिए। जब हम पंच परमेष्ठी को नमस्कार करें तो हम उनकी विशुद्ध दर्शन ज्ञान स्वभाव का भी आश्रय लें। ये हो गई आध्यात्मिक वंदना। क्या बोलते हैं इसको? आध्यात्मिक वंदना।

क्या वंदना भी आध्यात्मिक होती है?

जो आत्मा से related हो, वो सब कुछ आध्यात्मिक होता है। वंदना तो हम करते हैं और वह वंदना द्रव्य और भाव, दोनों रूप होती है। द्वैत और अद्वैत रूप भी होती है।

द्रव्य नमस्कार और भाव नमस्कार

द्रव्य भाव रूप का मतलब यह हो गया कि हमने शरीर से, वचन से, मन से, जो हमने अपने शारीरिक द्रव्य के साथ में वंदना की, हाथ जोड़कर, गऊ मुद्रा में नमस्कार करते हुए, तो ये सब क्या हो गया? द्रव्य नमस्कार। और भाव नमस्कार? जब हम उनके भावों पर अपनी दृष्टि लगाएं और उस भाव को प्राप्त करने के लिए अपने अंदर भाव करें तो वह कहलाएगा भाव नमस्कार। कहाँ दृष्टि जाए? अरिहंत भी दिखें, सिद्ध भी देखें, साधु भी दिखें और उनकी आत्मा का शुद्ध दर्शन ज्ञान रूप जो परिणमन हो रहा है, वो भी दिखे। कैसा परिणमन है? शुद्ध ज्ञान दर्शन रूप परिणमन। मतलब वह शुद्ध ज्ञान दर्शन परिणमन के माध्यम से, किसी भी प्रकार के अन्य कर्म जन्य भाव में जिनका परिणमन नहीं जाता और जो अपने शुद्ध ज्ञान दर्शन की आराधना करने के लिए सब प्रकार के पुण्य और पाप कर्म, सबसे विरक्ति को प्राप्त कर लेते हैं, ऐसी भावना करने वाले साधु आदि परमेष्ठी और जो उसको उपलब्ध हो गए, ऐसे अरिहंत सिद्ध परमेष्ठी, ये जब हमारे भावों में आते हैं तो हम जब भावपूर्वक नमस्कार करेंगे तो वह कहलाएगा - भाव नमस्कार। एक द्रव्य नमस्कार, एक भाव नमस्कार। कभी कभी भाव नमस्कार भी करना। भाव नमस्कार में एक तरह का ध्यान आ जाता है।

द्वैत नमस्कार और अद्वैत नमस्कार

ऐसे ही एक द्वैत नमस्कार और एक अद्वैत नमस्कार। द्वैत का मतलब होता है - जहाँ हमारे अंदर दो चीजों का भाव आए ये मैं और ये मेरे सामने पंच परमेष्ठी। ये दो चीजें जब तक हमारे भावों में रहेंगी तब तक वह कहलाएगा - द्वैत नमस्कार। जब हम उनका ध्यान करते करतेकरतेकरते बिल्कुल अपने ही आत्म स्वभाव में लीन होने लग जाते हैं, स्थित होने लग जाते हैं, उनको भी हम अपने उपयोग से अपने आप छोड़ कर के अपने

ही स्वभाव में स्थित हो जाते हैं तो वह द्वैत ना रह कर के क्या हो जाता है? अद्वैत भाव हो जाता है।वह अद्वैत नमस्कार कहलाता है। ये भी ध्यान में ही होगा। बिना ध्यान के कभी भी आप भाव नमस्कार और अद्वैत नमस्कार नहीं कर सकते हैं।

द्रव्य नमस्कार या भाव नमस्कार। क्या करे?

ध्यान भी करना, द्रव्य से भी नमस्कार करना, वंदना भी करना, अपने हाथ पैर, जोड़ कर के, सिर झुका कर के भी करना। और कभी कभी ये भी सोचना कि आज हम भावों से भगवान को देखते हैं, भावों से भगवान को नमस्कार करते हैं तो उसके लिए थोड़ा सा भाव में उन पंच परमेष्ठी को लाना। भाव में तो कभी कुछ नहीं होता है। द्रव्य में सब हो जाता है। सबसे ज्यादा समय द्रव्य में ही जाता है। महाराज ! सब के साथ करने में द्रव्य नमस्कार बड़े आराम से हो जाता है। भाव में तो हम अकेले पड जाते हैं। हमारे साथ कोई नहीं होता है। भाव में हम कहाँ जाएँ, क्या करें? कुछ समझ में नहीं आता है। द्रव्य में तो ठीक है। भगवान सामने विद्यमान है और पाठ हमारे सामने रहता है। पूजा कराने वाला पूजा करा देता है या स्तुति कराने वाला स्तुति पढ़ देता है और हम भी पढ़ लेते हैं और अपना अर्घ समर्पित कर लेते हैं तो यह द्रव्य नमस्कार तो बड़ा सरल है। सरल तो है लेकिन सबसे ज्यादा लाभ कहाँ मिलेगा? द्रव्य के साथ में भाव तक गति हो तो उसमें लाभ और ज्यादा मिलेगा। क्योंकि द्रव्य नमस्कार में धारणा नहीं बनती है। धारणा कब बनेगी? भाव नमस्कार में। जब हम किसी भी तरीके का भगवान का ध्यान करें, कहीं पर भी किसी भी रूप में उनको imagine करें तो वह हमारे लिए जो भाव आएगा वह हमारा भाव ध्यान, भाव नमस्कार कहलायेगा।

समभाव , समता भाव और साम्य भाव

तो आचार्य कहते हैं कि हम उनके उस दर्शन ज्ञान स्वभाव को प्राप्त करके, ऐसे साम्यभाव को प्राप्त हो रहे हैं जिस साम्यभाव का फल क्या है? निर्वाण की प्राप्ति।और वोसाम्यभाव क्या है? अभी तो आप समझ रहे हो समता भाव, समभाव। यही है न। अब देखो यही भीतर का साम्यभाव, जो आत्मा का भाव है, ये कहाँ का भाव है? आत्मा का भाव। और यह आत्मा का ऐसा एक परिणाम है कि जब आत्मा बिलकुल साम्य रूप परिणमन कर जाता है तो फिर उसके अंदर कर्म जन्य भावों से कोई भी किसी भी तरीके की कोई भी बाधा उत्पन्न नहीं होती। तो उस भाव को क्या बोलते हैं? साम्यभाव। अब हम जब अपने अंदर साम्यभाव की बात करते हैं या उस शब्द के माध्यम से हम सोचते हैं तो फिर आदमी भीतर से निकल कर के उस साम्यभाव को बाहर अपने अपने ढंग से ले आता है। समता रखना, समभाव रखना। भीतर का साम्यभाव जो आत्मा का था, वो अलग है। मन का जो समता भाव है, वो अलग हैं। और जो सबके प्रति समभाव है, वो अलग है। क्या सुन रहे हो? शब्द सब एक ही हैं लेकिन वर्तमान में उनके प्रयोग भीतर के अर्थ को छोड़ करके बाहरी अर्थ में अधिक होने

लगे। हर किसी से कहो - भैया सबके प्रति समभाव रखा करो। तो वो समझ लेगा कि समभाव रखो। किसी से कहो कि अपनी आत्मा के साम्यभावों में परिणमन करो या आत्मा के साम्य स्वभाव को प्राप्त करो तो वह कहेगा कि ये साम्य स्वाभाव क्या होता है? समभाव तो समझ में आता है। सबके प्रति समभाव रखो। माने किसी को छोटा बड़ा मतसमझो। किसी को गरीब अमीर मत समझो। किसी को ऊँचा नीचा मत समझो। सबके प्रति सम भावना। तो यह उसी साम्य की बहुत बाहरी व्याख्या है और ये बाहरी व्याख्या तो हमें समझ में आ जाती है। लेकिन जब वही व्याख्या थोड़ी सी भीतर की ओर गति करती है तो हम मन के पास पहुंच जाते हैं तब हम कहते हैं - भैया ! समता रखो। तो ये भी समझ में आ जाता है। कब समता रखो? जब दूसरा तुमको पीटे, मारे, तुम्हारा बुरा करे, तुम्हारे लिए बुरा बोले, तुम को दूसरे से दिक्कत हो तो क्या करो? समता रखो। माने उसके प्रति भी समभाव अपने मन में लाओ। तो समता का भाव वहां पर भी आ जाता है। गुस्सा नहीं करो। यह भी समझ में आ जाता है।

वर्तमान में समभाव की व्याख्या

अब यह तीसरी चीज कौन सी है? शब्द सब वहीं घूम रहे हैं लेकिन ये बाहरी समभाव से, मानसिक समता भाव से भी हटकर के आत्मिक साम्यभाव रूप जो परिणमन है, ये कुछ अलग चीज है। लोग आत्मा को हीनहीं जानते हैं तो इस साम्यभाव को क्या जानेंगे? जिनका कर्म के ऊपर ही विश्वास नहीं है वो इस साम्यभाव में परिणमन क्या करेंगे? तो लोगों के लिए यही व्याख्याएं जब व्यावहारिक रूप में दी गई तो लोगों को समझ में आई। इसलिए व्यवहार रूप में जितनी भी भाषाएं हैं वो सब अच्छी लगेंगी। अगर हम समभाव की बात करें तो आपको भी अच्छा लगेगा। समभाव माने सबके प्रति समान भाव रखो। किसी को भी छोटा बड़ा, ऊंच नीच, छुआछूत, कुछ नहीं होनी चाहिए। सब समभाव। क्या सुन रहे हो? ये शुद्धि में है या अशुद्धि में हैं। क्या महाराज अभी तो आप समझा रहे थे कि समभाव रखो। फिर इनको नहीं छुओ, इनको नहीं छुओ। ये व्यवहार का समभाव तो सबकी समझ में आता है। लेकिन ये भाव कहाँ से आया? तो यह साम्यभाव का बदलता बदलता जो बाहरी रूप है, वह रूप ही आज धर्म का रूप बन गया। किसी भी धर्म की निंदा मत करो। किसी भी धर्म के बारे में कभी बुरा मत बोलो।

सम भाव की भीतरी व्याख्या

कोई भी हो, सब के प्रति समभाव रखो। ये यहाँ भी कहा गया है लेकिन इसके भीतर की जो गति है, वहाँ तक हम नहीं पहुँच पाते हैं। क्या सुन रहे हो? कभी भी यह नहीं कहा गया कि आप कभी किसी दूसरे धर्म की निंदा करो। आपको समझ में नहीं आता तो आप उसको मत अपनाओ लेकिन कभी किसी की निंदा भी मत करो। समभाव का मतलब होता है कि आपको उससे द्वेष नहीं होना चाहिए। भले ही वो आपके लिए हितकारी नहीं

लग रहा हो लेकिन आपको उससे भी द्वेष नहीं होगा तब आपके अंदर वो समभाव आएगा। क्या सुन रहे हो? लेकिन समभाव का मतलब यह भी नहीं है कि उस में लिप्त हो जाओ। हमारा तो सब में समभाव है। हम तो यह भी कर रहे हैं और वह भी कर रहे हैं तो सम भाव नहीं रहेगा। सम का मतलब क्या होता है? बिलकुल balanced और जब कुछ चीज balanced होती है तो क्या होती है? जो जहाँ है, उस रूप में स्थिर रहे। अगर किसी दूसरे की तरफ उसका inclination होता है तो इसका मतलब है कि उसका समभाव बिगड़ गया। क्या सुन रहे हो? समभाव में द्वेष भी नहीं होगा और उससे आसक्ति यानीattachment और राग का भाव भी नहीं होगा। ये भी ध्यान रख लेना। लेकिन कुछ लोग समभाव की भी परिभाषा अपने मन से कर लेते हैं। हमारा तो सब में समभाव है। हम तो सब कुछ करते हैं, सब कुछ अपनाते हैं। क्या सुन रहे हो? सम का मतलब भी अपने आप में बड़ा अद्भुत है। ये भी हमारे लिए तब समझ में आएगा जब हम यह समझेंगे कि सम माने किसी के लिए निंदा नहीं करना और हमारे अंदर वह सम भाव इस रूप में आ जाना कि हम अपने परिणामों में स्थिर बने रहें। हमारे ऊपर किसी दूसरे का कोई प्रभाव न पड़े तो समझना कि हमारे अंदर वह समभाव से सब कुछ चल रहा है।

विषमता में समता

अनेक मत हैं, अनेक संप्रदाय हैं। सब कुछ होते हुए भी किसी का प्रभाव अपनी इस धारणा पर न पड़े और आप शांत भाव से अपना काम करते चले जाएं। दूसरे से आपको कोई क्षोभ नहीं हो और न आप दूसरे को क्षोभ पैदा करें तो वह कहलाएगा समभाव। क्या समझ में आ रहा है? आपको पता नहीं पड़ता है कि कब विषमता आ जाती है? समता जब हो तब तो विषमता का अनुभव होगा। जब विषमता को ही हम समता मान के बैठेंगे तो हमको पता ही कैसे पड़ेगा कि समता क्या कहलाती है? तो यह समता तो बाहरी है जो हम आपको बता रहे हैं लेकिन वो भी गहरा है। फिर मानसिक समता की बात आएगी वो भी बहुत गहरी है। ये जो आत्मिक साम्य परिणमन है, ये तो अत्यंत गहरी बात है। यहाँ तक तो हमारी गति तब होगी जब हम आत्मा के अस्तित्व को बिलकुल श्रद्धा के साथ स्वीकार करेंगे। अपने अंदर उठने वाले राग द्वेष आदि भावों को अपने से भिन्न समझ कर के उन्हें त्यागने का भाव करेंगे और कर्म जन्य परिणामों को अपना स्वभाव नहीं मानेंगे तब हमारा इस आंतरिक आत्मिक साम्य परिणमन में हमारा परिणमन लगेगा। ये थोड़ी बहुत गहरी भीतरी चीज है और उसी चीज को आगे आचार्य देव खुद बताने वाले हैं कि वह समभाव क्या कहलाता है। कोई चीज है, भले ही हमें नहीं दिखती है लेकिन श्रद्धा तो नहीं दिखने वाली चीज पर भी हो जाती है। आस्था तो बन जाती है। जैसे हमने अदृश्य सिद्धों पर अपनी आस्था बनाई ऐसी ही हमारी आस्था में यह साम्य आत्मा का परिणाम भी आना चाहिए। जब हमारी आत्मा ऐसी ही विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव के साथ में साम्य रूप परिणमन करेगा तब हमारा आत्मा निर्वाण के योग्य होगा।

प्रवचन०३ – निर्वाणकीप्राप्तिकासाधन (गाथा००६)

संपज्जदिणिव्वाणंदेवासुरमणुयरायविहवेहिं।
जीवस्सचरित्तादोदंसणणाणप्पहाणादो ॥ ६॥

सम्यक्त्व ज्ञान समवेत प्रधान होता, चारित्र को जब सजीव सुजान ढ़ोता।
पाता सुरासुर–नरेंद्र–सुसम्पदा को, निर्वाण का पद पुनः गहता सदा वो।।

अन्वयार्थ– (**जीवस्स**) जीव को (**दंसणणाणप्पहाणादो**) दर्शन ज्ञान प्रधान (**चरित्तादो**) चारित्र से (**देवासुरमणुयरायविहवेहिं**) देवेन्द्र, असुरेन्द्र और नरेन्द्र के वैभवों के साथ (**णिव्वाण**) निर्वाण (**संपज्जदि**) प्राप्त होता है।

गाथा का अर्थ

संपज्जदिअर्थात प्राप्त होता है।**णिव्वाण**अर्थात निर्वाण (मोक्ष)**देवासुरमणुयरायविहवेहिं** - देव, असुर, मनुष्य (**मणुय**अर्थात मनुष्य) और**राय**अर्थात राजा। मनुष्यों में भी जो राजा होते हैं, ऐसे चक्रवर्ती आदि।**विहवेहिं**- वैभव के साथ। इन सब के वैभव के साथ।देवों का भी वैभव होता है, असुरों का भी वैभव होता है और मनुष्यों में जो राजा होते हैं, चाहे वह चक्रवर्ती हो या उनसे छोटे मंडलीक राजा इत्यादि होते हैं, उन सबके वैभवों के साथ, इस जीव को निर्वाण की प्राप्ति होती है। किससे निर्वाण की प्राप्ति होती है? **जीवस्स –**जीव को, **चरित्तादो –**चारित्र के माध्यम से निर्वाण की प्राप्ति होती है। वह चारित्र कैसा होना चाहिए? **दंसणणाणप्पहाणादो** - दर्शन और ज्ञान की प्रधानता वाला वह चारित्र हो। इस चारित्र से जीव को देव, असुर और मनुष्य राजाओं के वैभवों के साथ निर्वाण की प्राप्ति होती है। यह इस गाथा का पूरा अर्थ होता है।

निर्वाण की प्राप्ति का साधन

मुख्य बात यहाँ पर निर्वाण की प्राप्ति का साधन बताया जा रहा है। जो जीव्मोक्ष की अभिलाषा रखते हैं, उन्हें वह मोक्ष कैसे प्राप्त हो? पिछली गाथा में बताया था कि वह मोक्ष जीव को साम्य भावों से प्राप्त होता है। आत्मा की साम्य परिणति से जीव को निर्वाण की प्राप्ति होती है। किस रूप में वह निर्वाण इस जीव को प्राप्त होता है? उससे पहले भी उसे और क्या प्राप्त होता है? उसी को यहाँ पर बताया जा रहा है। यहाँ भी बात वही है कि साम्य भाव से जीव को निर्वाण की प्राप्ति होती है। तो वह साम्य भाव क्या है?

चारित्र से निर्वाण की प्राप्ति

इस गाथा में बता रहे हैं कि जीव को चारित्र से निर्वाण की प्राप्ति होती है। पिछली गाथा में कहा था कि जीव को साम्य भाव से निर्वाण की प्राप्ति होती है। ये दोनों बातें अलग अलग नहीं हैं। साम्यभाव ही जीव का चारित्र होता है क्योंकि साम्यभाव जीव के चारित्र गुण की ही परिणति है। जीव अर्थात जो जीवात्मा है, उसमें जो उसका चारित्र गुण विद्यमान है। वह जब साम्य रूप में परिणमन करने लगता है तो वही चारित्र उसके लिए निर्वाण का कारण बन जाता है। उस चारित्र के साथ क्या होना चाहिए? क्योंकि वह चारित्रसूखा-सूखा न हो।**दंसणणाणप्पहाणादो**अर्थात दर्शन और ज्ञान उस चारित्र में होना चाहिए। दर्शन और ज्ञान से तात्पर्य सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से है। सम्यक् दर्शन और ज्ञान की प्रधानता के साथ में जो चारित्र ग्रहण किया जाता है, वह चारित्र हमें निर्वाण की प्राप्ति कराता है।

निर्वाण से पहले वैभव

यह चारित्र भी मुख्य रूप से दो प्रकार का बताया जाता है। एक वीतरागचारित्र और दूसरा सरागचारित्र होता है। अभी ऐसा इस गाथा में नहीं बताया किन्तु इस गाथा में भी ऐसा भाव निकल रहा है। कैसे निकल रहा है? यहाँ एक बात कही है कि निर्वाण की प्राप्ति तो होगी लेकिन वह किसके साथ होगी? देवों का वैभव मिलेगा,असुरों का वैभव मिलेगा, मनुष्यों का वैभव मिलेगा, उस वैभव के साथ निर्वाण मिलेगा। किसी को भी सीधा- सीधा निर्वाण नहीं मिलेगा। क्योंकि मोक्ष आप सीधा- सीधा नहीं जा सकते हो। उससे पहले आपको थोड़ा वैभव भी मिलेगा।

निर्वाण से पहले वैभव क्यों?

आपके मन में शंका उठ सकती है कि वैभव छोड़कर तो दीक्षा ली जाती है और वैभव को छोड़कर ही तप त्याग किया जाता है। फिर यह वैभव बीच में क्यों आ जाता है? इसका समाधान यह है कि कुछ चीजें नियामक हैं। या यह भी कह सकते हैं कि उनका क्रम वही है। किसी चीज को प्राप्त करने के लिए आपको उस रास्ते से गुजरना ही होगा। वह रास्ता कौन सा है? यह वैभवों का रास्ता है। अगर निर्वाण की बात है तो बीच में वैभव के साथ निर्वाण क्यों है? **विहवेहिं**इन वैभवों के साथ ही जीव को निर्वाण की प्राप्ति होगी। सीधा- सीधा निर्वाण की प्राप्ति नहीं होगी। इसी से समझ में आता है कि जब कोई जीव निर्वाण की प्राप्ति करता है तो उससे पहले उसे बीच में ये वैभव भी मिलते हैं और फिर अंत में उसे निर्वाण की प्राप्ति होती है। आपने देखा होगा कि जितने भी निर्वाण को प्राप्त होते हैं, वे महापुरुष कहलाते हैं। बड़े-बड़े सेठ हो, चाहे राजा हो, मनुष्यों में अच्छे पुण्यवान

मनुष्य हो तो उनको भी ये सब चीजें मिलती हैं। और वो इसलिये हीमिलती हैं क्योंकि पहले भी उन्होंने कुछ चारित्र का पालन किया है। ये सब स्वतः ही नहीं मिल जाती है। पूर्व में भी उन्होंने इसी दर्शन ज्ञान की प्रधानता के साथ में चारित्र को धारण किया होगा।सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, ये सब तो गृहस्थ में भी हो जाता है। लेकिन सम्यक् चारित्र गृहस्थ में कभी भी नहीं होता है।

सरागचारित्र के बाद वीतरागचारित्र

सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान के साथ में जब सम्यक् चारित्र का पालन किया जाता है तो वह चारित्र दो प्रकार से चलता है। पहला - सरागचारित्र और दूसरा - वीतरागचारित्र कहलाता है। कभी -कभी ऐसा भी होता है कि मोक्ष जाने का समय हो, चतुर्थ काल हो तो कोई भी जीव सीधा-सीधा पहली बार में ही सराग सम्यक् दर्शन ज्ञान को प्राप्त करके, सीधा- सीधा सरागचारित्र प्राप्त करके और अंत में वह वीतरागचारित्र को उसी भव में प्राप्त करके, सीधा मोक्ष भी जा सकता है। उसके लिए ऐसा जरूरी नहीं है कि वह नियम से देव बने या फिर चक्रवर्ती बने, उसके बाद में उसे मोक्ष की प्राप्ति हो। ऐसे भी जीव होते हैं जो सीधा-सीधा उसी भव में सम्यक् दर्शन,ज्ञान चारित्र को प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त हो गए। और जब ऐसा नहीं हो पाता यानि चतुर्थ काल का समय नहीं है, पंचम काल है और पंचम काल में मोक्ष की प्राप्ति होती नहीं है तो उनके लिए ये गाथा ही उपयुक्त हो जाएगी। उनको इसी रास्ते से जाना पड़ेगा। उन्हें पहले ये सब वैभव मिलेगा और अंत में निर्वाण प्राप्त होगा। क्यों अंत में मिलेगा? क्योंकि वह वीतरागचारित्र की प्रधानता से उस चारित्र का पालन नहीं कर पाएँगे। क्योंकि पंचम काल में वीतरागचारित्र की मुख्यता नहीं है। वह वीतरागचारित्र जो हमें सीधा-सीधा केवल ज्ञान प्राप्त करा दे, ऐसा वीतरागचारित्र धारण करने की शक्ति नहीं होने पर भी सरागचारित्र को धारण किया जाता है। लेकिन दृष्टि वीतरागता की ओर रखी जाती है। लक्ष्य वीतरागचारित्र को ही प्राप्त करना होता है। इस तरह वह सरागचारित्र के फल से पहले क्या प्राप्त करेगा? सराग चरित्र के फल से सर्वप्रथम देवों के वैभव, असुरों के वैभव, मनुष्यों के वैभव, उसको जरूर मिलेंगे। इसके बाद में फिर वह मनुष्य बनकर और इन वैभवों को छोड़कर, बाद में पुनः वहचारित्र को धारण करेगा तो उसे वीतरागचारित्र के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति होगी।

सरागचारित्र और वीतरागचारित्र में भेद

यह जो चारित्र है, यह चारित्र अपने आप में दो प्रकार का बन जाता है। एक सरागचारित्र और दूसरा वीतरागचारित्र। सराग का अर्थ है राग से सहित। चारित्र तो है लेकिन कैसा है? राग से सहित है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र, ये तीनों ही जो हमारे मोक्ष के लिए घटक हैं, ये तीनों दो-दो प्रकार के घटित हो जाते हैं।सरागसम्यग्दर्शन - सरागसम्यग्ज्ञान और सरागसम्यग्चारित्र। ऐसे ही वीतरागसम्यग्दर्शन,

वीतरागसम्यग्ज्ञान और वीतरागसम्यग्चारित्र। इनमें क्या अंतर हो जाता है? जब राग का पूर्णतया अभाव हो जाता है, उस अवस्था में जो आत्मा के अंदर सम्यग्दर्शन होगा वह वीतरागसम्यग्दर्शन और उसी अवस्था में आत्मा का जो चारित्र होगा, वह वीतरागचारित्र कहलाएगा। यदि आपने थोड़ा सा भी गुणस्थानों का ज्ञान किया हो तो आप समझ सकते हैं कि दसवें गुणस्थान तक सूक्ष्म राग का सदभाव रहता है। और वर्तमान में मुनि महाराजों के पास छठवाँ सातवाँ गुणस्थान ही होता है। इससे आगे के गुणस्थान मुनि महाराज को नहीं हो सकते हैं। तो सराग दशा कहाँ तक जा रही है? दसवें गुणस्थान तक सराग दशा होती है। ग्यारहवें गुणस्थान में भी वह राग दशा रहती है, नष्ट नहीं होती है।इसलिए उस गुणस्थान का नाम उपशांतमोहगुणस्थान कहलाता है। और बारहवेगुणस्थान का नाम क्षीण मोह गुणस्थान कहलाता है, जिसमें मोह राग सब कुछ नष्ट हो चुका होता है। इस तरह बारहवेगुणस्थान में जाकर जब ये मोह राग नष्ट होता है तो वस्तुतः उसको ही वीतरागचारित्र कहा जाता है। क्योंकि वहाँ पर राग का नाश हो चुका है, अभाव हो चुका है, सत्ता से उसका बिलकुल अभाव हो चुका है। वह वीतरागचारित्र ही वास्तव में केवल ज्ञान का कारण बनता है और मोक्ष का कारण बनता है।

वीतरागचारित्र से मोक्ष की प्राप्ति

अब जीव को मोक्ष की प्राप्ति किससे होगी? उस वीतरागचारित्र से। क्योंकि बारहवें गुणस्थान में जो जीव पहुँचा है, वह नियम से तेरहवें गुणस्थान को प्राप्त करता है और उसे तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान हो जाता है। फिर उसके बाद में उसकी जितनी आयु रहती है, उस गुणस्थान में वह जीव उतने समय तक रहता है। अंत में आयु के पूर्ण होने पर वह मोक्ष को भी प्राप्त हो जाता है। इस तरह वास्तव में मोक्ष का कारण वह वीतरागचारित्रही होता है। जब तक उसे मोक्ष नहीं होता, केवलज्ञान नहीं होता, उससे पहले उसे क्या होता है? उससे पहले वह सरागचारित्र को अपनाता है।

सरागचारित्र से वैभव

अब प्रश्न उठता है - अगर वह वीतरागचारित्र को प्राप्त नहीं कर पाएगा तो सरागचारित्र के माध्यम से उसको क्या मिलेगा? सरागचारित्र के माध्यम से वह देव बनेगा। उसे असुरों के वैभव मिलेंगे, मनुष्यों के वैभव मिलेंगे और इन वैभवों के साथ वह जीता रहेगा। ये वैभव उसे तब तक भी मिल सकते हैं जब तक उसे वीतरागचारित्र की उपलब्धि न हो। ऐसा जरूरी नहीं है कि जो मनुष्य यहाँ पर सरागचारित्र को प्राप्त करके देव बना हो, अगले जन्म में वह मनुष्य बनकर मोक्ष को प्राप्त कर ले। वहाँ पर भी वह सरागचारित्र को प्राप्त करके पुनः फिर देव् बन सकता है और फिर देव बनने के बाद में पुनः फिर मनुष्य बन सकता है और उसके बाद भी मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। मोक्ष को प्राप्त करने के लिए उसका सम्यग्दर्शन नहीं छूटना चाहिए। और वह सम्यग्दर्शन उसका देव-मनुष्य, देव-मनुष्य, ऐसा करते -करते कितनी बार तक चल सकता है? सिद्धांत के अनुसार

छियासठ सागर काल तक क्षयोपशमसम्यग्दर्शन आत्मा में बना रहता है। छियासठ सागर काल वह देव मनुष्य की पर्यायों को धारण करता रहे किन्तु इस बीच उसका सरागसम्यग्दर्शन नहीं छूटना चाहिए। वह सम्यग्दर्शन भले ही सराग है लेकिन वह उसको संसार में भटकने नहीं देगा। भले ही वह उसको संसार में बनाए रखे। भटकने से तात्पर्य है- वह किसी और गति में चला जाए। दुर्गतियों का पात्र बन सकता है अगर उसका सम्यग्दर्शन छूटता है। अगर सम्यग्दर्शन बना है तो वह नियम से देव बनेगा, मनुष्य बनेगा, देव बनेगा, मनुष्य बनेगा। ऐसा वह तब तक करेगा जब तक वो छियासठ सागर का काल पूरा न कर ले।

शंका- क्या उसे छियासठ सागर काल का समय पूरा करने पर मोक्ष की प्राप्ति होगी?

समाधान- उसे इतनी अवधि पूरी करनी पड़े, ऐसा जरूरी नहीं है। लेकिन अगर अधिक से अधिक वह इस सराग दशा में रहना चाहेगा तो इतना भी लगातार सरागसम्यग्दर्शन के साथ में रह सकता है। क्योंकि सरागसम्यग्दर्शन का, जिसे हम क्षयोपशमसम्यग्दर्शन कहते हैं, उसका यह काल है। और फिर उसके बावजूद भी**वह क्षायिकसम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है**तो वह भी काल और बढ़ सकता है। तेंतीस सागर काल और बढ़ सकता है। ये भी हो सकता हैं। अगर इस तरह से भी संसार देखा जाए तो संसार सागरों की अपेक्षा से बहुत हो जाता है। भले ही वहभटके नहीं, नरकोंमें नहीं जाए, तिर्यंचोंमें भी नहीं जाए तो भी वह देव गतिमें कितना रहेगा, मनुष्य गतिमें कितना रहेगा। उसका संसार तो बहुत बड़ा हो गया। एक सागर असंख्यात वर्ष का होता है। सर्वार्थसिद्धि के देव बन गए तो तैंतीस सागर के लिए वहीं रहना पड़ेगा। जैसे पाँच पांडवों में से दो पांडव सर्वार्थ सिद्धि के देव बन गए। अब तैंतीस सागर तक वे कुछ नहीं कर सकते। तो यह कितना दीर्घ (लम्बा) समयहो जाता है। यह भी संसार ही कहलाता है। सम्यक् दृष्टि के लिए यह भी संसार दिखता है कि यह भी संसार ही हैं। अगर वह देव बनेगा तो वहाँ से च्युत होकर मनुष्य बनेगा। सर्वार्थसिद्धि वाले देवों के लिए तो नियमकता है कि उसी भव से मोक्ष जाएगा। किन्तु अन्य जो छोटे-छोटे देव हैं, जिनकी आयु दो सागर की है, दस सागर की है, उनके लिए ऐसा नियम नहीं है कि वह मोक्ष ही चला जाए। पुनः वह फिर देव बनेगा, फिर मनुष्य बनेगा, फिर देव बनेगा, उनका संसार इतने काल तक बना ही रहता है।

शंका- किस कारण से?

समाधान-वह जब-जब भी मनुष्य बनेगा तब-तब वह बीच-बीच में सरागचारित्र भी धारण करेगा। सरागसम्यग्दर्शन के साथ में छियासठ सागर काल तक केवल सरागसम्यग्दर्शन के साथ नहीं रह सकता है। देव में तो सम्यग्दर्शन का काल निकाल लिया लेकिन जब मनुष्य बनेगा तो सम्यग्दर्शन के साथ में सरागचारित्र धारण करेगा तभी पुनः वह अच्छा वाला देव बनेगा। देव से पुनः मनुष्य बनेगा तो पुनः

सरागचारित्र धारण करेगा। फिर अच्छा वाला देव बनेगा। यह किसकी देन है? यह सरागचारित्र की देन है।**इसलिए आचार्य कहते हैं – सरागचारित्र का फल संसार है, निर्वाण नहीं है।**

तो फिर क्या सरागचारित्रहेय है?

हमें इन सभी बातों को समझना चाहिए जो भी शास्त्रों में लिखा रहता है। हम उसको पढ़ तो लेते हैं लेकिन उसका गहराई से अर्थ न समझ पाने के कारण भटकते ही रहते हैं और अर्थ का अनर्थ भी कर लेते हैं। शास्त्रों में लिखा है –**सराग दशा तो बंधकी दशा है, सरागचारित्र तो हेय है।** हेय का आशय छोड़ने योग्य है। किसको छोड़ने योग्य है? जब इस ग्रंथ में, इन गाथाओं की टीकाएं पढ़ेंगे तो आचार्य अमृतचंद महाराज ने ,आचार्य जयसेन महाराज ने सबने यही कहा है कि- सरागचारित्रहेय है और वीतरागचारित्रउपादेय है। हेय माने छोड़ने योग्य और उपादेययानि ग्रहण करने योग्य। हम आचार्यों की भाषा तो पढ़ लेते हैंलेकिन भाव हमें तब तक समझ में नहीं आ सकते जब तक कि कोई हमें समझाने वाला न हो। केवल ग्रंथ को पढ़कर, टीका को पढ़कर आप समझ लेंगे - सरागचारित्र तो हेय है। शास्त्रों में लिखा भी है। अब यह बात उन्हें कौन समझाएगा कि छोड़ने योग्य क्या होता है? **आपके पास सरागचारित्र कहाँ है जो आप उसे छोड़ोगे**? आपके छोड़ने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। छोड़ने योग्य तो उसके लिए होगा जिसके पास पहले कुछ हो, जब उसने ग्रहण किया हो। क्या आपके पास सरागचारित्र है? जो सत्य है, वह सत्य है लेकिन उस सत्य को हमने क्या समझा? हमने किस रूप में समझ लिया? यह हमारी स्वयं की कमी है,आपको पढ़ाने वालों की कमी है और उन ग्रंथों के अनुवाद और विशेषार्थ करने वालों की कमी होती है। इसलिए कहा जाता है,**अध्यात्म ग्रंथ हमेशा गुरु के मुख से ही पढ़ना चाहिए**। अन्य किसी के मुख से कभी नहीं पढ़ना चाहिए। ये बातें थोड़ी सी कठोर लग जाती हैं।

क्या सरागचारित्र को धारण किए बिना वीतरागचारित्र उपलब्ध होता है?

हाँ, सरागचारित्रहेय है। हम जिनवाणी के अलावा अन्यथा नहीं कहेंगे। जो जिनवाणी में लिखा है, वही सत्य है। लेकिन हेय तो तब होगा जब हमने उसको पहले पकड़ लिया हो। हमने ग्रहण कर लिया हो तब तो हम उसका त्याग करें। और अगर वह ग्रहण करने योग्य ही नहीं है तो बात अलग है। तब तो आप अच्छे हो कि वह ग्रहण करने योग्य ही न हो तो हमने ग्रहण किया ही नहीं। और हमें ग्रहण क्या करना है? जो उपादेय है, उसको ग्रहण करेंगे। वीतरागचारित्रउपादेय है, बस उसी को ग्रहण करेंगे। तो क्या वह वीतरागचारित्र आप को ग्रहण करने में आ जाएगा? आचार्य कहते हैं - यह क्रम है। उसमें आचार्य अमृतचंद्र जी महाराज ने भी बताया हैं – **करमापतितं**। यह क्रम से आता है। इसके बिना आगे बढ़ा ही नहीं जाता है। सरागचारित्र को धारण किए बिना कभी भी वीतरागचारित्र उपलब्ध होता ही नहीं है। यह बीच का एक भाव है, बीच की एक स्थिति है। यह बीच

की इसलिए है क्योंकि यह हमारा अंतिम लक्ष्य नहीं है। जब हमें अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है तो ये बीच का चारित्र, जो बीच का भाव है, यह हमसे छूट जाता है। स्वतः ही हेय हो जाता है। जो छूटने योग्य है, वह बीच में आएगा लेकिन उसको पकड़ना नहीं। उसका सहारा लेकर आगे बढ़ना हैं। बीच में आने वाली चीज इसलिए ही होती है कि उसका सहारा लेकर आगे बढ़ा जाये। वह पकड़कर रखने के लिए नहीं होती है।

सरागचारित्र को हेय क्यों कहा?

जब आप सीढ़ियों पर ऊपर चढ़ते हैं तो सीढ़ियां आपके लिए ऊपर चढ़ने में सहारा बनती है। अगर आप सीढ़ियों को पकड़ कर खड़े हो जाएँ और कहें, यही हमारा लक्ष्य है। तो क्या आप ऊपर मंजिल तक पहुँचेंगे? नहीं पहुँचेंगे। और जब मंजिल तक पहुँचेंगे तो सीढ़ियाँ अपने आप छूटती दिखाई देंगी। हम ऊपर आ जायेंगे लेकिन सीढ़ियाँ पीछे ही छूट जाएँगी। ये आपके लिए छूटने योग्य थी तो अपने आप ही छूट गई।

यह वीतरागचारित्र प्राप्त करने से पहले जो सरागचारित्र आता है और उस सरागचारित्र का जो फल मिलता है, वह फल भी हमारे लिए ऐसा ही होना चाहिए। सरागचारित्र के फल से क्या मिलेगा? **देवासुरमणुयरायविहवेहिं।**और वीतरागचारित्र के फल से क्या मिलेगा? **णिव्वाणंसंपज्जदि।**जैसे सरागचारित्र को हेय कहा तो क्यों कहा? क्योंकि उसका जो फल है, वह हमारे लिए संसार में रखने का कारण है। उसने हमें तैंतीस सागर तक के लिए इस संसार मे देव पर्याय में लटका दिया। किसने लटका दिया? इसी सराग सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र की परिणति ने। चूंकि इसका फल संसार में बनाए रखना है, अनंत संसार में बनाए रखना नहीं है, थोड़ा संसार बनाए रखना है तो भी वह हमारे लिए उपादेय नहीं है। क्योंकि मोक्ष नहीं है, संसार ही है। इसलिए उसको मोक्ष से विपरीत फल वाला कहा जाता है। यह मोक्ष फल नहीं दे रहा है, यह हमें संसार फल दे रहा है।

सरागचारित्र और मिथ्यात्व, दोनों के संसार फल में क्या अंतर है?

हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि यह संसार फल एकांत से वैसा नहीं है जैसा मिथ्यात्व के साथ संसार फल मिलता था। ये संसार का फल तो आपको क्रम से देव मनुष्य बनाते बनाते, नियम से आपको वीतरागचारित्र दिला देगा। ये संसार फल आपके लिए नियम से निर्वाण प्राप्ति का कारण बन जाएगा।लेकिन जब तक यह सराग सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र नहीं होता और जीव जब तक उस मिथ्या दर्शन ज्ञान चारित्र का पालन करता है या उसको धारण करता है **तब तक तो वह कभी भी संसार के अलावा और कोई दूसरी बात सोच ही नहीं सकता है**। यह चीजें दिमाग में रख लो कि सराग और वीतराग का फल क्या है? सराग

और वीतराग का संबंध क्या हैं? इस चीज को नहीं समझने के कारण से ही अलग अलग धारणाएँ बन चुकी हैं, अलग अलगमत बन चुके हैं।
सराग दशा हेय है क्योंकि उसका फल संसार है। लेकिन वह संसार अनंत संसार नहीं है, यह भी ध्यान रखना। वह संसार तो है लेकिन अनंत संसार रूप उसका फल नही हैं। उसका फल सीमित संसार रूप है। लेकिन फिर भी वह संसार तो है ही। मोक्ष नहीं है। इसलिए वह संसार फल वाला कहा जाएगा। जो संसार का फल दे, वह हमारे लिए उपादेय तो नहीं है लेकिन अगर वो बीच में आ रहा है, तो थोड़ा सा ग्रहण करने योग्य तो है ही। क्योंकि उसके बिना दूसरा कोई रास्ता भी नही है। हमें सीढियों पर चढ़ना तो पड़ेगा ही। जो बिना सीढ़ियों के हमें कहीं पहुँचा दे, ये तो कहीं है ही नहीं।तरीका तो यही है

क्या तीर्थंकर भगवान सरागचारित्र को ग्रहण करते हैं?

जितने भी तीर्थकरमहापुरुष मोक्ष गए हैं, सब इसी सरागचारित्र और वीतरागचारित्र, दोनों का पालन करके ही गए हैं। ऐसा कोई भी नहीं है कि जिसने सरागचारित्र का पालन न किया हो। यह बात अलग है कि उसी जन्म में वह सरागचारित्र को छोड़कर के, वीतरागचारित्र को धारण करके केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है। लेकिन सरागचारित्र तो पहले अपनाना ही पड़ेगा। क्योंकि वीतरागचारित्र का फल क्या है? केवलज्ञान। और वोवीतरागचारित्र जब हो जाएगा तो अंतर मुहूर्त से ज्यादा इस संसार में टिकेगा नहीं।

वीतरागचारित्र कौन से गुणस्थान में होता हैं?

वीतरागचारित्र बारहवें से शुरू होगा। ग्यारहवे से हो जाएगा लेकिन बारहवाँ काम का है। क्योंकि ग्यारहवे वाला तो नीचे गिरेगा। बारहवें वाला कारण किसका बनेगा? केवलज्ञान का कारण बनेगा। बस केवलज्ञान हो गया तो मोक्ष हो ही गया, समझ लो। फिर तो कुछ नहीं हैं। क्योंकि उसको तो मोक्ष होना ही है, उसी पर्याय से। तो केवलज्ञान ही हमारे लिए मुख्य है। और वह केवलज्ञान किस से होगा? वीतरागचारित्र से होगा। वह वीतरागचारित्र कब होगा? बारहवें गुणस्थान में होगा। बारहवाँ गुणस्थान कब होगा? जब आपके पास में सरागचारित्र हो। क्योंकि छठवें सातवें गुणस्थान में आये बिना कभी भी बारहवाँ गुणस्थान आता नहीं है। ऐसी कोई lift है ही नहीं, जो bypass से हम को सीधा बारहवें गुण स्थान में ले जाये। अगर ऐसा होता तो बड़े बड़े महापुरुष उस रास्ते से निकल गए होते। सीधा सीधावोवीतरागचारित्र का पालन करके मोक्ष प्राप्त कर गए होते। लेकिन ऐसा कभी कोई भी नहीं कर सका।

सिद्धांत कहता है – पहले सराग दशा आएगी ही आएगी।

नहीं भी चाहोगे तो भी आएगी। छठवें, सातवेंगुणस्थान में रहना हर मुनि महाराज के लिए आवश्यक होता है। उसमें रहे बिना कभी भी आप ऊपर के आठवें आदि गुणस्थान को प्राप्त नहीं कर सकते। इसी से सिद्ध होता है

कि सराग दशा आये बिना वीतराग दशा कभी भी प्राप्त नहीं होती। अगर नही समझोगे तो कोई भी आपको भटका देगा। और भटकाना इसी तरीके से हो जाता है कि सरागचारित्र, सराग दशा हेय है। यह हेय क्यों है? क्योंकि बंध का कारण है।इसलिए उसका कुछ ध्यान नहीं रख कर वीतरागचारित्र को अपनाओ। उसी को ग्रहण करो। सराग को ग्रहण नहीं करना, यह सिखाया जाता है। इसलिए वे सरागचारित्र को धारण नहीं करते।

सरागचारित्र का मतलब क्या है?

व्रतों को धारण करना। ये पहला काम होता है कि व्रतों को धारण करना है। तो यह सरागचारित्र ही होता है। कोई भी व्रत हो। चाहे मुनि के व्रत हो या चाहे श्रावक के व्रत हो, सब सरागचारित्र में ही आएंगे। उद्देश्य होता है - वीतरागता को प्राप्त करने का। लेकिन धारण करने में पहले तो सरागचारित्र ही आता है। चाहे अणुव्रत रूप में हो चाहे महाव्रत रूप मे हो। इसलिए आचार्य कहते हैं कि आपको निर्वाण प्राप्त करने के साथ साथ ये चीजें भी प्राप्त करनी होगी। स्वयं आचार्य कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं। अब इतना संसार में रहो। थोड़ा सा और सही लेकिन संसार बढ़े तो नहीं। बढ़ेगा तब, जब उल्टा चलोगे। रास्ते से चलोगे, थोड़ी देर से पहुँचेगे लेकिन पहुँच तो जाओगे। रास्ते पर नहीं चलोगे और कहोगे कि हम तो सीधा मंजिल पर ही पहुँचेंगे तो कैसे पहुँच जाओगे? जो रास्ता है, वह तोअपनाना ही है।

व्यवहार मोक्ष मार्ग और निश्चय मोक्ष मार्ग

मोक्ष मार्ग इसीलिए दो प्रकार का बन जाता है।एक व्यवहार मोक्ष मार्ग और एक निश्चय मोक्ष मार्ग। जो व्यवहार मोक्ष मार्ग है, वोसराग रूप है। जो निश्चय मोक्ष् मार्ग है, वोवीतराग रूप है। सराग सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र क्या हो गया? ये व्यवहार मोक्ष मार्ग हो गया। जो व्यवहार मोक्ष मार्ग वीतराग मोक्ष मार्ग में ढलने लगा, ये निश्चय मोक्ष मार्ग हो गया। तो ये दोनों ही प्रकार के मोक्ष के मार्ग हैं, रास्ते हैं। मोक्ष मार्ग के माध्यम से जब मोक्ष की प्राप्ति होती है तो उसमें भी एक चीज और ध्यान में रख लेना कि मोक्ष का कारण निश्चय मोक्ष मार्ग हैं। लेकिन निश्चय मोक्ष मार्ग का कारण व्यवहार मोक्ष मार्ग है। कारण समझते हो? जिस कारण से कार्य की प्राप्ति होती है। कोई भी कार्य हमें प्राप्त करना है तो उसका कारण होगा। कारण से कार्य की प्राप्ति होती है और कारण अगर हमारे पास है, तो कार्य अवश्य ही प्राप्त होता है।

मोक्ष का वास्तव में कारण क्या है? निश्चय मोक्ष मार्ग। और निश्चय मोक्ष मार्ग का वास्तव में कारण क्या है? व्यवहार मोक्ष मार्ग। ये परंपरा बन जाती है। इसलिए इस व्यवहार मोक्ष मार्ग को परंपरा से मोक्ष काकारण

कहा जाता है। दो प्रकार के कारण हो गए, एक साक्षात् कारण और एक परंपरा से कारण। सामान्य बातें हैं। एक पहली सीढ़ी है और एक अंतिम सीढ़ी है। तो पहली सीढ़ी अगली वाली सीढ़ी के लिए कारण है। अगली वाली सीढ़ी और अगली वाली सीढ़ी के लिए कारण है। और वो भी अंतिम सीढ़ी के लिए कारण है। अंतिम सीढ़ी मंजिल के लिए कारण है। तो जो पहली सीढ़ी है, वो उस मंजिल के लिए परंपरा से कारण कहलाएगी। और जो अंतिम सीढ़ी है, वह उसके लिए साक्षात कारण कहलाएगी। बस इस पर आते ही मोक्ष होना हैं। उसको क्या बोलेंगे? साक्षात कारण। और जो पहली सीढ़ी है, वो कहलाएगी परम्परा कारण।

सराग सम्यक् दर्शन मोक्ष के लिए कारण है कि संसार के लिए कारण है?

मोक्ष का कारण है।अभी तो कह रहे थे कि संसार का फल मिलता है, संसार होता है। अब आप कहने लगे, मोक्ष कारण होता है। सराग सम्यक् दर्शन या सरागचारित्र मोक्ष के लिए कारण है कि संसार के लिए कारण है? जब मोक्ष के लिए कारण है तो फिर संसार में क्यों रोक रहे हो? रुकना पड़ रहा हैं। जब संसार में रुके हो तो फिर उसको मोक्ष का कारण कैसे कहा जा सकता है? संसार बढ़ाने का कारण नहीं है, इसीलिए मोक्ष का भी कारण है। इसी को हम स्याद्वाद शैली कहते है। स्याद्वाद शैली क्या कहती है? सरागचारित्रकथनचित् संसार का भी कारण है और सरागचारित्रकथनचित् मोक्ष का भी कारण है। दोनों बातें बतानी पड़ेगी। तो कथंचित् संसार का कारण क्यों है? क्योंकि उससे सीधा मोक्ष नहीं होता हैं। अगर हम केवल सरागचारित्र में ही रह गए तो नियम से हमको देवादिगतियों की प्राप्ति होगी, इसलिए वोकथनचित् संसार का कारण है। और वो मोक्ष का कारण क्यों है? क्योंकि इसके बिना कभी भी वीतरागचारित्र की प्राप्ति होती नहीं। क्योंकि यह वीतरागचारित्र के लिए कारण है, इसलिए ये कथनचित् मोक्ष का भी कारण है।

अनेकांतवाद – समस्या का समाधान

ये उलझनें किससे दूर होंगी? स्याद्वाद से, अनेकांत से। जो एकांतवाद को पकड़ेगा, वो उलझेगा और उलझायेगा। यही हो रहा है, दुनिया में। एक बात को पकड़ कर के, एक ही तरीके से उसकी व्याख्या और एक ही बात पर जोर देना और शास्त्र का reference देते रहना और उस एकांतवाद को बढ़ाते जाना। बस ये कहना कि लिखा तो शास्त्र में यही है। सराग दशा हेय है और वीतराग दशा उपादेय है। अब बस एक ही बात पकड़ ली। क्योंकि वह संसार का कारण है और ये मोक्ष का कारण है इसलिए हमको व्रत, संयम, नियम कुछ नहीं लेना। बस वीतरागचारित्र की बात करो।और वोवीतरागचारित्र तो आत्मा में होता है, बाहर से कुछ होता नहीं है। तो आत्मा में जो चीज हैं, वो अपने लिए उपादेय हैं। अब बाहर की ये छोड़ो, वो छोड़ो, ये तो सब बाहर की क्रियाएँ हैं। इनमें कुछ न होने जाने वाला है। बस यही पढ़ना है और यही पढ़ाना है और मोक्ष मार्ग के लड्डू खाना है। हमें तो मोक्ष मार्ग पर चलना हैं।

अभिप्राय समझने का नाम ही अनेकांत

देखो! अगर हम गलत अभिप्राय की ओर जाते हैं तो न तो अपना आत्म कल्याण होता है और न किसी दूसरे का होता है। यह जैन दर्शन इतना बड़ा है कि नयों के बिना, स्याद्वाद के बिना हम क,ख ,गभीनहीं समझ सकते हैं। वही चीज सही भी है और वही चीज गलत भी है। सही किस अभिप्राय में है, गलत किस अभिप्राय में है? अगर हम अभिप्रायों को ध्यान में नहीं रखेंगे तो हम सही को भी गलत स्वीकार कर जायेंगे और सही को भी गलत मान कर के छोड़ देंगे। क्योंकि हमें अभिप्राय पता ही नहीं हैं। अभिप्राय पता होना चाहिए। इसी को कहते हैं - हमारे अंदर क्या हमारी भावना है? क्या अभिप्राय है? ये समझ लेने का नाम ही अनेकांत को समझना कहलाता है। तो आचार्य कहते हैं कि निर्वाण की प्राप्ति होगी लेकिन किसके साथ होगी? कम से कम आचार्य कुंदकुंद देव की बात तो मानो। जब देव गति का मिलना ही है। देव गति क्यों मिलेगी? क्योंकि वर्तमान मेवीतरागचारित्र है ही नहीं। आपको मोक्ष के लिए साक्षात कुछ मिलने वाला है ही नहीं। आप तो बीच में सरागचारित्र अपनाओगे तो देव गति मिलेगी। तभी कुछ आगे जाकर के मनुष्यों के कुछ और वैभव मिलेंगे। और वो कब मिलेंगे? इस जन्म में जो हम तपस्या करके, सरागचारित्र के माध्यम से पुण्य अर्जित कर लेते हैं। उस पुण्य का कुछ तो भोग देवों में जाकर के हो जाता है। जो बचता है, वो जा कर के फिर मनुष्य बनोगे। तो जितना बचेगा, उसके हिसाब से मनुष्य बनोगे। अगर खूब बचा रहा है तो बड़े महामंडलीक राजा बन जाओगे। बड़े बड़े बलदेव चक्रवर्ती बन जाओगे। और थोड़ा बचा रहा तो सामान्य सेठ बन कर के रह जाओगे। लेकिन सेठ तो बनोगे।

सरागचारित्र भी आदरणीय और उपासनीय है

ये बस इतनी सी बात है और इसी चीज को जो व्यक्ति समझ लता है तो वह दोनों प्रकार के चारित्र का आदर भी करता है। सरागचारित्रहेय है तो क्या बिलकुल ही हमारे लिए आदरणीय नही हैं? अगर आदरणीय नहीं होगा तो फिर क्या होगा? सरागचारित्र को धारण करने वालों को आप नमोस्तु ही क्यों कर रहे हो? हम अगर सरागचारित्र को धारण करने वालो को आदरणीय नहीं स्वीकार करेंगे तो कभी भी वह सरागचारित्र को ग्रहण करने का भाव भी आपके अंदर नहीं आ पाएगा। तो वह सरागचारित्र भी आदरणीय है, उपासनीय है, उपासना करने योग्य है। हेय होते हुए भी वो छोड़ने योग्य नहीं हैं। अभी तो वह ग्रहण करने योग्य है। क्योंकि उसी के बल पर हमें आगे वीतरागता की प्राप्ति होगी। ये आचार्यों के जो अभिप्राय नहीं समझते हैं, वो अपनी हानि कर जाते हैं। आप लोग थोड़ा समझेंगे तो हानि नहीं करेंगे। जीव का जो चारित्र है, वह दोनों प्रकार का होता है। यह यहाँ आचार्य कुन्दकुन्द देव इस उदाहरण के माध्यम से, इस गाथा के माध्यम से हमको समझा रहे हैं।

निदान के कारण असुर देवो का वैभव

अब इसमें देवों के वैभव तो समझ में आते हैं कि इन्द्र बन गए हैं, सौधर्मइन्द्र बन गए, कोई भी स्वर्ग के इन्द्र बन गए, देवों के राजा बन गए, बड़े बड़े भी और सामान्य आदि देव बन गए। कोई बात नहीं, देवों के भोग मिल गए है तो ठीक है। लेकिन ये असुरों के इन्द्र या सुरों के इन्द्र, ये कुछ बात समझ में नहीं आती।

असुर भवनवासी देवों की एक quality है। और ये तो एक तरीके से निम्न जाति के देव माने जाते हैं। कभी कभी क्या होता है कि कोई व्यक्ति अगर सम्यक् चारित्र का पालन करते हुए अगर कभी निदान कर लेता है। निदान क्या होता है? किसी के वैभव को देख करके, देवों के वैभव को देख कर के कि हमें ऐसा वैभव मिले। जैसे मान लो, भवंत्रिक जो देव होते हैं तो उनमें सबसे ज्यादा वैभव इन्हीं असुरों का होता है। इसलिए अगर कभी निदान हो जाता है, किन्हीं देवों की विभूति देख कर के कि हम भी देव बने तो उस निदान के कारण से उसको वह तो नहीं मिलता, जहाँ उसको पहुँचना था। वह उससे निचले वैभव को प्राप्त करने की इच्छा कर लेता है तो वह असुर आदि देव भी बन जाता है। इसलिए यहाँ लिखा है कि वे असुर कुमार आदि का देव भी बन सकता है। मनुष्यों के वैभव तो आप जानते हैं। राजा, राजाधिराज, महामंडल, मंडलिक, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, ये सब मनुष्यों के वैभव हैं। इन सब वैभवों के साथ उसे निर्वाण की प्राप्ति होती है। इसलिए आचार्य कुन्दकुन्द देव भी स्वीकार कर रहे हैं कि सरागचारित्र के साथ में वीतरागचारित्र से निर्वाण की प्राप्ति होती है। सरागचारित्र के फल को भोग कर के ही निर्वाण की प्राप्ति होगी।

पहले वैभव छोड़ा तो बाद में अधिक वैभव मिला तो क्या फायदा हुआ?

अब आप कहो कि महाराज पहले कुछ छोड़ा, अब उससे ज्यादा मिलेगा। यह कौन सा business है? समझ में नहीं आ रहा है। देखो, आपने जो छोड़ा, वो इस भावना से तो नहीं छोड़ा कि बाद में ज्यादा मिलेगा। जब छोड़ा जाएगा, वो इस भावना से कभी नहीं छोड़ा जाएगा कि हमें इससे ज्यादा देवों का, असुरों का, मनुष्यों का वैभव मिलेगा। अगर इस भावना से छोड़ा जाएगा तो कभी भी वह सरागचारित्र भी नहीं कहला पायेगा। यह भावना नहीं है लेकिन यह उसके बीच में आने वाला एक फल है, जिस फल को हमें प्राप्त करना है। माने, उसको यह मालूम है कि अभी वर्तमान में मोक्ष नहीं है। फिर भी मोक्ष मार्ग पर चलना है। क्यों चलना है? ताकि अगले जन्म तक हमारे अंदर यह संस्कार पड़े रहे कि हम भटके नहीं और अगले जन्म में भी हमारा मोक्ष मार्ग ज्यों का त्यों ऐसा ही बना रह जाए। अगर यह भाव होगा कि हमें देवों के वैभव मिलेंगे। फिर बाद में बड़े बड़े राजा बनेंगे तो फिर कुछ नहीं होगा। इसलिए ये जो भाव है कि देव हैं, मनुष्य हैं, इनके वैभव मिलते हैं तो ये इसलिए बताया गया क्योंकि यह सिद्धांत है। ये तो मिलेगा ही लेकिन इसको मिलने के लिए सरागचारित्र नहीं अपनाना। किन्तु सरागचारित्र का यह फल है।

वीतरागचारित्र का प्रारम्भ और पूर्णता

बुद्धि को सीधा रखना बहुत कठिन काम है। खास तौर से सब देख कर के, जान कर के, आगे का भी, पीछेका भी और बुद्धि बिलकुल सही काम करे, इसी का नाम सम्यक् ज्ञान है। तो सम्यक् ज्ञानी जीव जब सम्यक् चारित्र को धारण करता है तो यह सोच कर कि नहीं करता कि सरागचारित्र के बल से देव बनूँगा।बल्कि ये सोच कर करता है कि मुझे सरागचारित्र के फल से वीतरागचारित्र की प्राप्ति करना है। और वह यथासंभव जितने अंश में पंचम काल में उस वीतरागता का अनुभव होता है, वह उस वीतरागचारित्र का अनुभव कर लेता है। क्योंकि सप्तमगुणस्थानमे भी वीतरागचारित्र का अनुभव होता है। सप्तमगुणस्थान में भी वह वीतरागताकी स्थिति प्रारम्भ हो जाती है, जो ध्यान अवस्था से प्रारंभ होती है। यहाँ से जो चीज शुरू हो रही है, जो कारण बन रही है, उस कारण को वह बार बार छूता है कि यही कारण तो हमें बारहवेंगुणस्थान में ले जाएगा। उस वीतरागचारित्र की वह पूर्णता बारहवें गुणस्थान में होगी। लेकिन शुरुआत कहाँ से होगी? सातवें गुणस्थान में,ध्यान अवस्था में।

जब वह समस्त रागादि विकल्पों को छोड़ कर के अपने निर्विकल्प ध्यान में स्थित होता है तो वहीं उसकी वीतरागचारित्र की परिणति कहलाती है। ये उसके लक्ष्य में रहता है। इसलिए वह उस वीतरागचारित्र का भी यथा संभव अनुभव करता हैं। लेकिन वह पूर्णता नहीं होती। इसलिए जो है, उसके फल से उसे अभी पंचम काल में केवलज्ञान नहीं हो सकता। यह स्पष्ट बातें हैं, जो सबको ध्यान में रखने योग्य हैं। अध्यात्म ग्रंथ पढ़ाओ, अध्यात्म ग्रंथ सुनाओ, सब की भावना रहती है। लेकिन अध्यात्म का ground भी तो देखो, क्या है? हम कहाँ खड़े हैं? अध्यात्म किसी स्थिति की बात कर रहा है? अब यहाँ अगर देखा जाये तो आचार्य छठवीं गाथा में विषय प्रस्तुति करना प्रारंभ कर रहे हैं। और उस विषय प्रस्तुति में भी सबसे पहले चारित्र ले आए। चारित्र में भी सम्यक् दर्शन, ज्ञान सब कुछ है। जिसके पास में हैं, उसके लिए उपदेश दिया जा रहा है। और जिन्हें अभी सम्यक् दर्शन, ज्ञान का भी कुछ अता पता नहीं है, वो कहें कि हम तो प्रवचनसार पढ़ लेते हैं और हम सब समझ लेते हैं। हमें तो नहीं लगता कि कुछ उनके अंदर भी जाता हो।

अभी तो आदमी के सम्यक् दर्शन, ज्ञान का ही ठिकाना नहीं है। और सम्यक् चारित्र? वह तो कुछ है ही नहीं। फिर भी वह अपने आपको इन ग्रंथों का रसिक मानता है। समझो कि हमारा ground अभी इस स्तर पर खड़े होने का है कि नहीं? फिर भी स्वाध्याय तो जरूरी है, सीखना तो जरूरी है। क्योंकि जब तक सीखेंगे नहीं तब तक पता कैसे पड़ेगा कि हेय क्या है? उपादेय क्या हैं? तो सीखो भाई, हमें क्या फर्क पड़ रहा है। लेकिन कोई भी चीजें गलत तरीके से नहीं सीख लेना हैं। और कोई भी गलत धारणाएँ मत बना लेना। इतना स्पष्टीकरण करने के बावजूद भी मन में कुछ भी अन्यथा न रह जाये। अपना ज्ञान मिथ्या ज्ञान की ओर न ढल जाए। ये आत्मा की परिणति जो चारित्र के रूप में यहाँ की गई है।देखो एक बहुत अच्छी बात इसमें लिखी हुई है-

अतीन्द्रियसुखापेक्षा हास्य इन्द्रियसुखस्यकारणत्वात्सरागचारित्रंहेयमिति।

सरागचारित्रहेय क्यों कहा?

इसका एक कारण तो हमने आपको बता दिया कि संसार है। इसका मतलब है कि अभी उसे इन्द्रिय सुख ही मिल रहा है। जब तक संसार रहेगा तब तक क्या मिलेगा? देवों में क्या मिलेगा? मनुष्यों के राजा बनोगे तो क्या मिलेगा? इन्द्रिय सुख। मैं इतना बड़ा राजा हूँ, मेरे control में इतने राज्य हैं, मैं इन सब का स्वामी हूँ, मेरे पास इतना वैभव है। जब वैभव है तो पाँचों इन्द्रिय के विषय मिलेंगे। तो क्या मिल रहा है? इन्द्रिय सुख। चारित्रकिसलिए धारण किया गया था? इसी इन्द्रिय सुख की प्राप्ति के लिए? अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति के लिए धारण किया था। तो अतींद्रिय सुख तो मिला नहीं? मिला क्या? इन्द्रिय सुख। तो दोनों चीजें एक दूसरे के विपरीत हो गई कि नहीं? जहाँ इन्द्रिय सुख है, वहाँ पर अतीन्द्रिय सुख नहीं और जहाँ अतीन्द्रिय सुख, वहाँ पर इन्द्रिय सुख नहीं। जहाँ क्षयोपशमिक ज्ञान हैं, वहाँ क्षायिक ज्ञान नहीं और जहाँ क्षायिक ज्ञान है, वहाँ पर क्षयोपशमिक ज्ञान नहीं। बिलकुल विपरीत चीजें हैं। जब अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होगी तो वहाँ पर इन्द्रिय सुख नहीं होगा और जब तक इन्द्रिय सुख मिल रहा है तब तक संसार का सुख है। इन्द्रिय सुख अतीन्द्रिय सुख की अपेक्षा से कैसा है? हेय है। उपादेय क्या था? अतीन्द्रिय सुख उपादेय था। इसलिए अतींद्रिय सुख की अपेक्षा से जो इन्द्रिय सुख हेय है, इस कारण से सरागचारित्र को हेय कहा जाता है।

सरागचारित्र सर्वथा हेय नहीं है।

कथनचित्हेय भी है और कथनचित्उपादेय भी है। जब मोक्ष का कारण है तो कथनचित्उपादेय हो गया और संसार का कारण है तो कथनचित्हेय भी हो गया। तो वह हेय भी हो गया और उपादेय भी क्योंकि वह बीच की दशा है। जो सीढ़ी बीच की है, वो हमारे लिए निचले वाली सीढ़ी की अपेक्षा से उपादेय है और आगे वाली सीढ़ी की अपेक्षा से हेय है। ऊपर वाला जो अतींद्रिय सुख है, उसकी अपेक्षा से विचार करेंगे तो इंद्रिय सुख कैसा हो गया? हेय हो गया। इसलिए सरागचारित्र वाला कभी भी इन्द्रिय सुख की अभिलाषा नहीं करता है। सरागचारित्र के साथ में इन्द्रिय सुख की अभिलाषा होगी तो फिर आपको अतीन्द्रिय सुख का भान भी नहीं रहेगा। इन्द्रिय सुख की अभिलाषा को त्यागने के लिए ही तो सरागचारित्र ग्रहण किया था। अब फिर वही इन्द्रिय सुख की अभिलाषा की तो इसका मतलब है किवह अपने लक्ष्य से भटक गया। उसको अतीन्द्रिय सुख के लिए अब कोई भी इच्छा नहीं है। इसलिए सरागचारित्र के साथ में इन्द्रिय सुख नहीं ग्रहण किया जाता।

इन्द्रिय सुख की अभिलाषा में सरागचारित्र नहीं होगा क्योंकि वह वीतरागचारित्र के लिए कारण नहीं बन रहा हैं।

<u>सरागचारित्र वाला अतीन्द्रिय सुख का अभिलाषी होता है।</u>

अतीन्द्रिय सुख की इच्छा होगी तो इंद्रिय सुख अपने आप हेय होंगे। वो अपनी इंद्रियों का काम चलाऊउपयोग करेगा क्योंकि पंचेन्द्रिय मनुष्य है और अभी उसके लिए पूर्णता नहीं है। उसे सब कुछ देखने में भी आएगा, सुनने में भी आएगा। लेकिन वह किसी भी विषय में आसक्त नहीं होगा। और इन्द्रिय सुख की अभिलाषा करेगा तो फिर उसके लिए सरागचारित्र भी छूट गया, **यह इससे अपने आप सिद्ध हो जाता है**।क्योंकि सरागचारित्र में क्या आता है? जब मुनियों के महाव्रत आते हैं तो उसमें पंच इन्द्रिय रोध नाम के पाँच मूल गुण होते हैं। जब हमने अपनी इन्द्रियों को रोका ही नहीं तो फिर कैसे सरागचारित्र का पूर्ण पालन होगा? कैसे मूल गुणों का पालन होगा? इसीलिए सरागचारित्र के साथ में वह जो भी तपस्या करता है, वह तपस्या उसकी सुख सुविधा के अनुसार नहीं होती है। उसकी तपस्या शास्त्रोक्त विधि के अनुसार होती है और उस तपस्या से वह वीतरागचारित्र की अभिलाषा करता है। इन्द्रिय सुख को हेय मानेगा तभी अतीन्द्रिय सुख की अभिलाषा उत्पन्न होगी। इसलिए सरागचारित्र सस्ता नहीं है। अगर सस्ता होता तो आप लोगों ने कब का उसको ग्रहण कर लिया होता। सरागचारित्र को प्राप्त करने के लिए क्या करना पड़ेगा? थोड़ा इन्द्रिय सुख को छोड़ना पड़ेगा। और वो छोड़ने के बावजूद भी सरागचारित्र मिल जाए, जरूरी नहीं है। सरल नहीं है इतना पुण्य होना कि हम सरागचारित्र को ग्रहण कर सकें। यह पुण्य भी आपको छोटे छोटे संयम, छोटी छोटीतपस्याओ से ही प्राप्त होगा। वह पुण्य इकट्ठा होगा, तब जा कर के वोसरागचारित्र ग्रहण करने के काम में आएगा। फिर उसके बाद उसका जो फल मिलेगा, उसको छोड़ने की हिम्मत करनी पड़ेगी। अब देव बन गए तो मस्त रहो? क्या करना है? ऐसा सोचेगा तो देव में जाकर के भी भ्रष्ट हो जाएगा। क्योंकि जो सम्यक् दर्शन यहाँ से लेके वहाँ गया, वह सम्यक् दृष्टि जीव देवों के सुखों में भी आसक्त नहीं होता है। वहाँ पर भी वोसराग सम्यक् दर्शन होने के कारण से धर्म ध्यान करता है।

इसीलिए आचार्य कहते हैं - संसारी जीव से इन्द्रिय सुखों की अभिलाषा कभी भी छूटती नहीं है इसीलिए ये सरागचारित्र को धारण कर नहीं पाता। पहले इतना पुण्य बढ़ाओ कि वह सरागचारित्र अपना लो। जब वह हो जायेगा तभी जा कर के कुछ वीतरागचारित्र की उपलब्धि होगी। सरागचारित्रकथनचित्हेय है और कथनचित्उपादेय है। कथनचित् मोक्ष का कारण है और कथनचित् संसार का कारण है। संसार का कारण है क्योंकि उसके फल से संसार के वैभव मिलते है और मोक्ष का कारण इसीलिए हैं क्योंकि वह वीतरागचारित्र का कारण हैं।

प्रवचन०४ – धर्मकास्वरूप (गाथा००७)

चारित्तंखलुधम्मोधम्मो जो सो समोत्तिणिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणोपरिणामोअप्पणोधसमो॥ ७॥

चारित्र ही परम–धर्म यथार्थ में है, साधु जिसे शममयी लख साधते हैं।
मोहादि से रहित आतम भाव–प्यारा, माना गया समय में शम साम्य सारा।।

अन्वयार्थ–(**चारित्तं**) चारित्र (**खलु**) वास्तव में (**धम्मो**) धर्म है। (**धम्मो जो**) जो धर्म है (**सो समो**) वह साम्य है (**त्तिणिद्दिट्ठो**) ऐसा शास्त्रों में कहा है। (**अधसमो**) साम्य (**मोहक्खोहविहीणो**) मोह क्षोभ रहित (**अप्पणोपरिणामो**) आत्मा का परिणाम भाव है।

'चारित्तंखलुधम्मो' – धर्म चारित्र रूप है।

चौथी गाथा में बताया था कि निर्वाण की संप्राप्ति साम्य रूप है। पाँचवीं गाथा में साम्यभाव को निर्वाण का कारण बताया था। छठवीं गाथामें चारित्र को निर्वाणका कारण बताया गया था। अब यहाँ पर इस सातवीं गाथा में बताते हैं कि वह चारित्र और साम्य भाव दोनों अलग- अलग चीजें नहीं हैं। बल्कि एक ही चीज है।**चारित्तंखलुधम्मो –**यह आचार्य कुन्दकुन्द देव की एक बहुत बड़ी उद्घोषणा है। धर्म क्या है? लोग धर्म की परिभाषा पूछते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द देव के अनुसार -चारित्तंखलुधम्मो। चारित्र ही वास्तव में धर्म होता है। चारित्र को ही धर्म कहा गया है। आचार्य कुन्दकुन्द देव द्वारा विरचित दर्शनपाहुड़ में लिखा है - **दंसणमूलोधम्मो।**धर्म दर्शन मूलक है। और यहाँ कहते हैं -**'चारित्तंखलुधम्मो'**यानिधर्म चारित्र रूप है।इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है।**दंसणमूलोधम्मो**दर्शन धर्म का मूल है। मूल का अर्थ होता है - जड़। जिसके बिना कभी पौधा उत्पन्न न हो और वृक्ष का रूप न ले सके। फलफूल जिसमें न हो, उस जड़ को भी हम धर्म कहते हैं। क्योंकि जिस तरह से बीज के बिना वृक्ष का रूप नहीं होता, वैसे ही जड़ के बिना कभी भी वह पौधा आगे नहीं बढ़ता है। जब**दंसणमूलोधम्मो,**ऐसा कहते हैं तो सम्यग्दर्शन को वहाँ धर्म कहा गया है। यह बात अष्ट पाहुड़ में कही गई है।

सम्यग्दर्शन धर्म का मूल और सम्यग्चारित्र धर्म का फल

वह सम्यग्दर्शन भी धर्म है और यहाँ कह रहे हैं कि **'चारित्तंखलुधम्मो'**वह चारित्र भी धर्म है। एक जड़ रूप है और एक फल रूप है। दोनों ही धर्म हैं। जड़ रूप इसलिए है क्योंकि उसके बिना किसी भी वस्तु का प्रारम्भ नहीं होता। सम्यग्दर्शन के बिना आत्मा में कभी सम्यग्ज्ञान नहीं होता। सम्यग्ज्ञान के बिना कभी सम्यग्चारित्र नहीं होता है। वह सम्यग्दर्शन भी आत्मा का धर्म है। और वह धर्म कैसा है? वह धर्म का मूल है। मूल अर्थात जड़ है। उसके बिना आगे कोई भी धर्म फलित नहीं हो सकता है। उस सम्यग्दर्शन को भी धर्म कहा और यहाँ पर चारित्र को भी धर्म कहते हैं। चारित्र कहने का तात्पर्य क्या है? सम्यग्दर्शन के बाद सम्यग्ज्ञान की आराधना करते हुए, जीव उस सम्यग्चारित्र को प्राप्त कर लेता है। उस सम्यग्चारित्र कोइतना उत्कृष्ट रूप से प्राप्त कर लेता है कि चारित्र ही उसका धर्म हो जाता है। सम्यग्दर्शन भी धर्म हो जाता है और सम्यग्चारित्र भी धर्म हो जाता है।

धर्म का क्या अर्थ होता है?

धर्म का अर्थ होता है – जो आत्मा में धारण किया जाए, उसका नाम धर्महै।आत्मा जिन गुणों को धारण करता है, उस गुण को धर्म कहते हैं। सम्यग्दर्शन भी आत्मा का गुण है और यह चारित्र भी आत्मा का गुण है। इस गुण को जो जैसा है, उसको बिल्कुल आत्मा के स्वभावभूत धारण कर लेना या उसको प्राप्त कर लेने का नाम धर्म हो जाता है। लोग कुछ देने को या कुछ करने को धर्म समझ लेते है। दान इत्यादि करना औपचारिक रूप से धर्म हो सकता है। लेकिन वास्तव में जो आत्मा में धारण किया जाए, उसका नाम धर्म है। जो शरीर से किया जाए, उसका नाम धर्म हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। लेकिन वास्तविक धर्म वही है, जो आत्मा में धारण किया जाए। यह जो आत्म स्वरूप धर्म होता है, वह सम्यग्दर्शन भी आत्मा का स्वभावभूत धर्म है और सम्यग्चारित्र भी आत्मा का स्वभावभूत परिणाम है। इसलिए चारित्र भी आत्मा का धर्म है और सम्यग्दर्शन भी आत्मा का धर्म है। एक मूल रूप में है और एक चूल रूप में है।

धर्म के चूल रूप का उदाहरण

चूल को एक उदाहरण के माध्यम से समझते हैं। जैसे जब आप भवन बनाते हैं तो भवन बनाने से पहले एक नींव डाली जाती है। उस नींव में बहुत सारे पत्थर, ईंट आदि मेटेरियल उसमें भरा जाता है लेकिन वह दिखाई नहीं देता है। जब भवन बन जाता है तो उसके बनने के बाद में सबसे ऊपर की मंजिल पर एक अच्छा सा शिखर बना देते हैं। चूलिका बना देते हैं तो वह उसकी चूल कहलाती है कि अब भवन पूर्ण हो गया। जब नींव डालनी शुरू की थी तब भवन प्रारम्भ हो रहा था। भवन की आधारशिला रखी गई थी कि इसके आधार पर भवन बनेगा। जब हमने उसका शिखर बनाकर उसको अंतिम चूलिका के रूप में दे दिया तो वह भवन अब पूर्ण हो गया। इसके ऊपर अब हमें कुछ भी नहीं बनाना है। इसको चूल कहते हैं। वह मूल और चूल, दोनों ही

आत्मा का धर्म हो जाता है, जिस तरह से उस भवन का मूल और चूल, दोनों धर्म है। क्योंकि मूल के बिना चूल नहीं होता। मूल भले ही दिखाई न दे लेकिन चूल दिखाई देता है।

अगर सम्यग्दर्शन दिखाई नहीं देगा तो प्रश्न उठता है कि फिर क्या दिखाई देगा?

उस सम्यग्दर्शन के अनुसार अगर कुछ आचरण करोगे तो वह दिखाई देगा। सरागसम्यग्दर्शन का भी कुछ आचरण होगा, वह दिखाई देगा। वीतरागसम्यग्दर्शन रूप जो आचरण होगा, वह भी दिखाई देगा। इस प्रकार जो दिखाई देने वाला है, वह अंतिम फल के रूप में हमारे सामने आ जाता है। वह हमारा चारित्र कहलाता है। इसलिए चारित्र भी आत्मा का धर्म है और सम्यग्दर्शन भी आत्मा का धर्म है। इसलिए यहाँ पर**चारित्तंखलुधम्मो**कहा गया है।धर्म का मतलब चारित्र है और चारित्र का मतलब धर्म है। जो वस्तु का स्वरूप है, वैसा ही वस्तु का स्वरूप प्रकट हो जाने का नाम ही धर्म होता हैं। अगर वैसा स्वरूप प्रकट न हो, वह अधर्म कहलाता है।

वस्तु का स्वभाव ही उसका धर्म

एक प्रकार से जो वस्तु का स्वभाव है, वही उसका धर्म है और जो उसका विभाव है, वह उसका अधर्म है। जैसे –अग्नि है। उस अग्नि का स्वभाव उष्णता है तो उष्णता ही उसका धर्म है औरवही उसका स्वभाव है। अगर अग्नि उष्ण स्वभाव के साथ होगी तब तो वह अग्नि कहलाएगी। अगर अग्नि में उष्णता नहीं रही या कम हो गई या बिल्कुल भी प्रकट नहीं हो रही है, वह उसका विभाव हो जाएगा। फिर उस अग्नि का धर्म प्रकट होता हुआ दिखाई नहीं देगा। इसी तरह इस जीव का स्वभाव भी देखना और जानना है। लेकिन यह स्वभाव आपके लिए पूर्ण प्रकट नहीं है।

संसारी जीव का स्वभाव पूर्ण प्रकट क्यों नहीं है?

संसारी जीव का स्वभाव दबा हुआ है। किस कारण से यह स्वभाव दबा हुआ है? इसका उत्तर आचार्य श्री देते हैं कि इस जीवात्मा के साथ जो कर्मों का संबंध है और उसके साथ जो जीव का वैभाविकपरिणमन हो रहा है, उसके कारण से इसका स्वभाव दबा हुआ भी है और उल्टा चल रहा है। यहाँ दोनों ही बातें हैं। स्वभाव का दबा हुआ होना और स्वभाव का उल्टा चलना। सम्यग्दर्शन आत्मा का स्वभाव है लेकिन वह मिथ्यादर्शन में बदल गया तो क्या हो गया? वह उल्टा हो गया। इसी तरह चारित्र भी आत्मा का स्वभाव है लेकिन वह असंयम में बदल गया तो क्या हो गया? वह उल्टा हो गया। कहा जाता है कि वस्तु का स्वभाव धर्म है। तो क्या आपकी आत्मा वस्तु का स्वभाव, आपके अंदर धर्म के रूप में आ रहा है या आ गया है? वह न आता हुआ दिख रहा है

और न अभी आया है। क्यों नहीं? क्योंकि जब हम स्वभाव में होंगे तो हमारी अपनी आत्मा के जो गुण होंगे, वे गुण हमारी अनुभूति में आएँगे। हमारे अंदर किसी भी प्रकार का कोई भी विभाव नहीं आएगा। कोई भी वैभाविकपरिणमन नहीं होगा।

वैभाविकपरिणमन क्या है?

हम चारित्रवान नहीं हैं। क्या समझ में आ रहा है? न बाहर से और न भीतर से। जब वह चारित्र का उल्टा भाव आएगा तो क्या होगा? हम कषायवान बन गये। हम असंयमी हो गये। यह आत्मा का अधर्म भाव हो गया। यह धर्म नहीं रहा। धर्म क्या था? जैसा वस्तु का स्वभाव है, वैसा ही हो जाना धर्म है। अगर आत्मा का स्वभाव ज्ञाता दृष्टा है तो आप ज्ञाता दृष्टा ही रहना। रागद्वेष नहीं करना, आकुलित नहीं होना, चिड़चिड़े नहीं होना, छोटी-छोटी बातों पर क्रोधित नहीं होना। यह सब आत्मा का ज्ञाता द्रष्टा स्वभाव है कि विभाव है? यह अच्छा नहीं लग रहा है या वह अच्छा नहीं लग रहा है। उसने ऐसा कह दिया या उसने वैसा कर दिया। आज मन दुखी है या आज मन में बड़ा उल्लास हो गया है। ये सारे के सारे भाव आत्मा के विभाव हैं, अधर्म हैं। हमारा सबसे ज्यादा परिणमन अधर्म में होता है।

धर्म – चारित्र, संयम, सम्यग्दर्शन

चारित्र, संयम, सम्यग्दर्शन, ये सभी आत्मा के धर्म हैं। इस धर्म का जो अपने अंदर भाव रहेगा, वही आत्मा का स्वभाव कहलाएगा। इसलिए जो वस्तु का स्वभाव है, वह स्वभाव ही धर्म कहलाता है। और जब वह वस्तु विभाव में परिणमन कर जाती है तो वह अधर्म रूप परिणमन कर रही होती है।

श्रावक का धर्म

अब देखो, आप मंदिर में यह आध्यात्मिक ग्रंथ पढ़ रहे हो। जो लोग आपको देखेंगे तो आपसे यही कहेंगे कि आप बड़े धर्मात्मा हो। बहुत मंदिर जाते हो, बहुत मुनि महाराज को आहार देते हो और बहुत प्रवचन सुनते हो। लेकिन वस्तुतः क्या यह आत्मा का धर्म है? क्या यह हमारा वस्तु का स्वभावभूत धर्म है? यह भी आत्म वस्तु का स्वभावभूत धर्म नहीं है। क्योंकि स्वभाव तो केवल ज्ञाता दृष्टा बना रहना, जानना और देखना है। कुछ करना नहीं है। अगर आप कुछ करोगे तो वह आत्मा का धर्म नहीं है। आप मंदिर में आकर सुन भी रहे हो, पढ भी रहे हो, बोल भी रहे हो, सोच भी रहे हो। ये कितने तरह के विभावभूत धर्म आत्मा में चल रहे हैं? आत्मा को अपने स्वभाव में आप तब देखोगे, जब आत्मा मात्र ज्ञाता दृष्टा ही हो और कुछ न करें।मात्र स्वयं को जाने, स्वयं को देखें। इसके अतिरिक्त वह जब कुछ नहीं करता है, तभी वह आत्मा अपने धर्म में आता है।

आत्मा का स्वभावभूत धर्म

ऐसा धर्म कब होगा? उसके लिए तो मंदिर आने की या प्रवचन सुनने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह धर्म तो कहीं भी बैठकर कर सकते हो। मंदिर आना, प्रवचन सुनना, यह बाहर से धार्मिकता का label लग जाता है। व्यवहार से यह धर्म कहा जाता है। चूंकि आप व्यवहार से अच्छी क्रिया कर रहे हो इसलिए धर्म कहने में आता है। लेकिन वस्तुतः यह भी आत्मा का स्वभावभूत धर्म नहीं है। इस तरह आत्मा का धर्म **'चारित्तंखलुधम्मो'** है।**चारित्र का मतलब अपने स्वभाव में रमण करना और अपने स्वभाव में रहना**। स्वभाव ज्ञाता दृष्टा है। अगर आप उसी स्वभाव में रहते हो, उसी स्वभाव में रमण करते हो, उसी स्वभाव में स्थिर रहते हो तब तो आप धर्मात्मा हो। किसकी दृष्टि से? अध्यात्म की दृष्टि से। अगर आप मंदिर में प्रवचन सुनते हो, शास्त्र पढ़ते हो तो आप धर्मात्मा तो हो, लेकिन कैसे हो? बाहर से हो।

अगर मंदिर जाना आत्मा का स्वभावभूत धर्म नहीं तो क्या मंदिर जाना छोड़ दें?

यदि आप मंदिर आना छोड़ दोगे, शास्त्र पढ़ना छोड़ दोगे, पूजा करना, प्रवचन सुनना इत्यादि सब छोड़ दोगे तो क्या आप घर में बैठकर मात्र आत्मा का चिंतन करते रहोगे? नहीं। आप और अधिक विषयों कषायों में पड़ जाओगे। अनेक तरह के पाप भाव और अनर्थदंड करोगे। समझ में आ रहा है? जो हम अपने स्वभाव में रुक नहीं पाते और हमसे अपने स्वभाव में जो रमण नहीं हो पाता, उस स्वभाव तक जाने वाली सहायक वस्तुएँ भी हमारे लिए धर्म कहने में आ जाती हैं। इसलिए भगवान का दर्शन भी धर्म है, प्रवचन सुनना भी धर्म है लेकिन वह सब व्यवहार से धर्म है।

वास्तव में चारित्र ही धर्म है।

चारित्र का मतलब अपने आत्म स्वभाव में रमण करना। अपने आत्मभाव में टिके रहने का नाम ही धर्म है।**ज्ञाता दृष्टा,**यही बस आत्मा का स्वभाव है। इस स्वभाव में जब तक वह रहा, तब तक तो धर्म किया और इस स्वभाव से जब हटा, वह अपने धर्म से हट गया। आचार्य कहते हैं - ऐसा चारित्र जो हमें अपने स्वभाव में स्थिर कर दे और हमारा अपने स्वभाव में ही आना हो जाए। फिर हम विभाव में न जाएँ तो वह हमारे लिए वास्तव में धर्म कहलाएगा। आपके मन में विचार आ रहाहोगा कि **'चारित्तंखलुधम्मो'** शब्द तो बहुत छोटा है और महाराजश्री इसकी इतनी लम्बी -लम्बी व्याख्या कर रहे हैं। ये आचार्य कुन्कुन्द देव के ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों के भाव को समझने के लिए आपको हर प्रकार से अपने ज्ञान को आयाम देना पड़ेगा और हर प्रकार से हमें यह समझना पड़ेगा कि ये कहना क्या चाह रहे हैं? धर्म से अभिप्राय वस्तु का स्वभाव है। और आत्मा भी एक

वस्तु है, आत्मा भी एक पदार्थ है। आत्मा जब अपने स्वभाव में आ गया तो वही उसका धर्म हो गया। जब आत्मा अपने स्वभाव में नहीं आया तो यह उसका अधर्म हो गया। आप मंदिर में पूजा, स्वाध्याय करते हो लेकिन हमारी दृष्टि कहाँ रहनी चाहिए? कि हमें अपने स्वभाव की प्राप्ति करनी है।

आचार्य कुन्दकुन्द देव का पंच परमेष्ठी को नमस्कार करने का प्रयोजन क्या है?

पाँचवीं गाथा में पंच परमेष्ठी को नमस्कार करने के बाद आचार्य कुन्दकुन्द देव भावना कर रहे थे - **"तेसिंविसुद्धदंसण-णाणपहाणासमंसमासेज्ज, उवसंपयामिसम्मंजत्तोणिव्वाणसंपत्ती" तेसिंविसुद्धदंसण।** अर्थात हम उनके विशुद्ध दर्शन और विशुद्ध ज्ञान प्रधान आश्रम को अंगीकार कर रहे हैं। उनके विशुद्ध दर्शन ज्ञान प्रधान आश्रम (स्थान) का हम आलम्बन ले रहे हैं। क्योंकि पंच परमेष्ठी को नमस्कार करने का भी हमारे लिए यही प्रयोजन है। हमारी दृष्टि स्वभाव पर है और स्वभाव ज्ञान दर्शन हैं। जो ज्ञाता दृष्टा कहा जा रहा है, वही ज्ञान दर्शन गुण, जो अशुद्ध नहीं है, विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव है। इसलिए वहाँ एक शब्द आया है -**विसुद्धदंसण-णाणपहाणासमंसमासेज्ज**। वह विशुद्ध ज्ञान दर्शन हमारे स्वभाव में रहे कि हम जो कुछ भी करेंगे, वह स्वभाव की प्राप्ति के लिए करेंगे। जो अपने स्वभाव में स्थित हैं, उनसे भी हम यही प्रार्थना करते हैं कि हमें भी ऐसे ही विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव की प्राप्ति हो। हमारे ज्ञान दर्शन, जो आत्मा के गुण हैं, जो अशुद्ध हो रहे हैं, वह शुद्ध हों। हमें उस विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव के माध्यम से अपना भी दर्शन ज्ञान हो और दूसरों का भी दर्शन ज्ञान हो जाए। लेकिन वह तभी होगा, जब हमारी दृष्टि विशुद्ध ज्ञान दर्शन आत्मा के स्वभाव की ओर होगी। क्या हमारी दृष्टि कभी विशुद्ध होती है? भगवान की पूजन और दर्शन करके हमारी दृष्टि तो नैवेद्य पर रहती है, दीपक पर रहती है या फिर दृष्टि भगवान के सामने आ कर के भी केवल भगवान की प्रतिमा पर रह जाती है? दृष्टि में वह चीजनहीं आती, जो आनी चाहिए। यह पैनी दृष्टि कहाँ मिलेगी? यह केवल अध्यात्म ग्रंथों को पढ़ने से ही हमारे अंदर आती है।

अध्यात्म दृष्टि क्या कहलाती है?

अध्यात्म का मतलब ही यही है कि जो अपनी आत्मा से संबंधित हो। अगर हम दूसरे की भी आराधना कर रहे हैं, वह भी उसकी आत्मा के गुणों से संबंधित है। इसलिए भगवान को देखकर, भगवान की प्रतिमा को देखकर हम यही भाव करते हैं कि विशुद्ध दर्शन ज्ञान स्वभाव हमारा भी ऐसा ही उपलब्ध हो। पंच परमेष्ठी की आराधना से भी विशुद्ध दर्शन ज्ञान प्रधान जो स्थान है, वही हमें प्राप्त हो। इस तरह की जो दृष्टि आती है, वह दृष्टि ही अध्यात्म दृष्टि कहलाती है। बाकी सब करने से पुण्य बंध होगा और थोड़ी मन में शांति मिलेगी। लेकिन उस स्वभाव की ओर दृष्टि आये बिना वास्तव में जो आत्मा का धर्म सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र है, यह धर्म कभी भी प्रकट नहीं होगा। इसलिए आत्मा के विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव के ऊपर भी अपनी दृष्टि रखनी चाहिए।

मात्र कुछ करते रहना का नाम ही धर्म नहीं।

अपने अंदर का जो attitude है, अगर वह बदलेगा तो वह धर्म बनेगा। सुबह से शाम तक कोई न कोई कुछ न कुछ करता ही रहता है। वह कुछ किये बिना रह भी नहींसकता है। आपसे कह दिया जाये कि आप शांत बैठ जाओ तो आपके सिर में दर्द होने लगेगा। आपसे कहा जाये कि आप अपने स्वभाव को देखो तो आपको नींद आने लगेगी। ऐसा करना बहुत कठिन है। इसी से समझ में आता है कि स्वभाव की प्राप्ति करना कठिन बात है। इससे पहले हमें स्वभाव का श्रद्धान तो हो, स्वभाव का ज्ञान तो हो। अपने उस शुद्ध आत्मस्वरूप का श्रद्धान होने का नाम अध्यात्म ग्रंथों में सम्यग्दर्शन कहा जाता है। अपने उस शुद्ध आत्म स्वरूप का ज्ञान होना भी अध्यात्म ग्रंथों में सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। जब इस श्रद्धान और ज्ञान की परिणति बनती है तब उस चारित्र की परिणति बनती है। हम अपने अंदर इतना तो आभास लाएँ कि हमारी आत्मा शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव वाला है। जब यह श्रद्धान और ज्ञान का विषय बनेगा तब आपको अपने स्वभाव में रुचि प्रकट होगी। अन्यथा करते - करते ही सारा जीवन बीत जाएगा।

आचार्य अमृतचंद्र जी महाराज जिन्होंने समयसार की बहुत अच्छी टीका की है, उसमें बहुत अच्छे-अच्छे काव्य लिखे हैं। उसमें उन्होंने लिखा है -

यःकरोति स करोतिकेवलंयस्तुवेत्ति स तुवेत्तिकेवलं।
यःकरोति न हिवेत्ति स क्वचित्यस्तुवेत्ति स करोति न क्वचित्।

अर्थात जो करता है, वहकेवल करता ही रहता है। जो वेदन करता है, जो जानता है, वह केवल जानता ही रहता है। जो करता है, वह कुछ भी जानता नहीं है और जो जानता है, वह कुछ करता नहीं है। अब इसको समझने का प्रयास करते हैं।

जानना और करना, ये दोनों बिल्कुल विपरीत हैं।

जो कर रहा है, वह जान नहीं रहा है। जानने का अभिप्राय - अपनी आत्मा के स्वभाव को केवल अनुभव में लाना।केवल अपनी आत्म स्वभाव का संवेदन करने का नाम जानना है। क्योंकि ज्ञान गुण हैं और ज्ञान का काम जानना है। मात्र जानते रहो, कुछ करो नहीं। जो करेगा, वह केवल करता ही रहेगा। वह कभी जान नहीं पाएगा। क्योंकि जहाँ जानना होगा, वहाँ करना नहीं होगा। जो जान रहा है, वह जानता ही रहेगा। वह कोई भी क्रिया नहीं करेगा। अर्थात जो अपने स्वरूप का संवेदन करेगा, जो अपने स्वभाव का आभास करेगा, आनंद लेगा, वह केवल उसमें ही लीन होगा और कुछ नहीं करेगा। और जो कुछ कर रहा होगा, वह अपने जानन स्वभाव को कभी भी नहीं जानेगा। वह करता ही रहेगा। जो जानता है, वह जानता ही है। जो करता है,

वहकरता ही है।जानने वाला कुछ करता नहीं है और करने वाला कुछ जानता नहीं है। जब व्यक्ति को यह पता लग जाता है कि केवल करना ही आत्मा का स्वभाव नहीं है। जानना और देखना ही आत्मा का स्वभाव है तो वह सब कुछ छोड़कर जानने में लग जाता है। आप जब-जब स्वयं को जानने के लिए और अपना स्व संवेदन करने के लिए बैठेंगे, तब -तब आपको क्या याद आता है? क्या हमने कर लिया है और क्या हमें करना है? करने के भी पीछे अपनी बुद्धि चलती है। उसको रोको। जो किया था, वो सब मिथ्या है और अब हम आगे कुछ भी नहीं करेंगे। उसका मैं प्रत्याख्यान करता हूँ।

प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान

आचार्यों ने दो बातें बताई हैं- पहला प्रतिक्रमण और दूसरा प्रत्याख्यान। प्रतिक्रमण से तात्पर्य है - जो आपने अभी तक किया था, उसको मिथ्या समझ कर त्याग दो। प्रत्याख्यान से तात्पर्य है - जो हमने किया था, अब उसका संकल्प लेते हैं कि अब हम उसे नहीं करेंगे। प्रतिक्रमण अर्थात पूर्व में किए गए दोषों का प्रायश्चित है। पूर्व में किए गए पापों की आलोचना करने को प्रतिक्रमण कहते हैं। प्रत्याख्यान का अर्थ है - हम भविष्य में ऐसा नहीं करेंगे। इससंकल्प को लेने का नाम वर्तमान में प्रत्याख्यान कहलाता है। सुबह से शाम तक जो किया, वह मेरा मिथ्या हो। अब आगे मैं नही करूँगा। जब यह भाव मन में आएगा तब आपका मन रुकेगा और वह अपने स्व संवेदन की ओर जाएगा। तब आप समझ पाओगे कि जानना अपना स्वभाव है। जब आप सामायिक में बैठते हो तब आपको क्या ध्यान आता है? सुबह क्या बना था? कल क्या बनाना है? उसकी तैयारी करना है। करने के अलावा आत्मा का भाव कुछ भी होता ही नहीं है।इसलिए चारित्र अपने आप में बहुत गहरी और बहुत बड़ी वस्तु है।

चारित्र का अर्थ है- अपने स्वरुप में रमण करना, अपने ही स्वभाव में रहना।

रोटी बनाना, बर्तन धोना, घर के कामकाज करना ,दुकान करना, दवाइयाँ बेचना या कपड़े बेचना, ये हमारे उस जानन स्वभाव के लिए सहायक नहीं है। जो सहायक होगा, अगर वह किया जाए तो हो सकता है कि वह कुछ आपके लिए सहायक बन जाए। जैसे आप शास्त्र पढ़ रहे हैं तो यह पढ़ने की क्रिया अपने स्वरुप में आने के लिए आपके लिए सहायक हो सकती है। किसके लिए? अपने स्वभाव को जानने के लिए लेकिन जो क्रिया अपने स्वभाव के लिए कारण नहीं है, उसे आप दिन भर भी करोगे तो भी आप अपने स्वभाव की ओर नहीं आ पाओगे। आपने कभी विचार नहीं किया कि क्या करने से क्या फल मिलेगा? सब कुछ करने से तो आप अपने स्वभाव के निकट नहीं आ सकते हो। तो हमें क्या करना चाहिए? भगवान के दर्शन, पूजन, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान, इन सभी क्रियाओं को करने से आप अपने जानन स्वभाव के पास आ सकते हो। लेकिन घर गृहस्थी के काम, बेटे बेटियों की चिंताएँ, दुकान-व्यापारों की चिंताओं से कभी आप अपनी ज्ञायक

स्वभाव की ओर नहीं आ सकते हो। मात्र इतना जान लेने से कि आत्मा का स्वभाव ज्ञाता दृष्टा है, इससे हम स्वभाव की ओर तो नहीं आ सकते।

वह क्या है, जो हमें अपने स्वभाव में नहीं आने दे रहा है?

उसी के बारे में आचार्य श्री आगे बता रहे हैं। जो चरित्र है, वह धर्म है।**धम्मो जो सो समोत्तिणिद्दिट्ठो।** जोधर्म है, वही हमारा साम्य भाव है। पाँचवीं गाथा में बताया था कि साम्य भाव का मैं आलंबन लेता हूँ। मतलब साम्य भाव भी धर्म है। छठवीं गाथा में बताया कि मैं चारित्र को धारण करता हूँ। क्योंकि चारित्र से निर्वाण होता है। उधर कहा कि साम्य भाव से निर्वाण होता हैं। यहाँ यही बताया जा रहा है की दोनों बातें एक ही हैं। जो चारित्र है, वही धर्म है और जो धर्म है, वह साम्यभाव रूप है। धर्म में केवल आत्मा का परिणाम जो बिल्कुल समभाव के साथ चलता है, जिसमें कोई भी कषाय नहीं रहती, कोई भी राग द्वेष का भाव नहीं होता। किंचित मात्र भी जिसमें अन्यथा परिणमन नहीं होता। ऐसा वह आत्मा का परिणाम, जो अपना साम्य स्वभाव है, वही उसका धर्म है। वह धर्म मय जब हो गया तो वही उसका चारित्र है। ये तीनों चीजें एक हैं। चारित्र धर्म है, धर्म साम्य भाव है या साम्य भाव धर्म है और धर्म चारित्रहै।

कौन सा भाव साम्य कहलाता है?

आगे की पंक्ति में आचार्यश्री लिखते हैं - वह कौन सा भाव है, वह कौन सा परिणाम है, जो साम्य कहलाता है। तो आचार्य कहते हैं **"मोहक्खोहविहीणोपरिणामोअप्पणोधसमो"** वह भाव,मोह और क्षोभ से रहित (अप्पणो) जो आत्मा का परिणाम अर्थात भाव है, वही साम्य है। वह परिणाम मोह और क्षोभ से रहित होना चाहिए। मोह क्या होता है? अपने स्वभाव के अलावा अन्य वस्तु से मोहित होने का नाम ही मोह है।

मोह से तात्पर्य

हमें अपने स्वभाव का तो ख्याल नहीं और हम पर वस्तु को अपनाए जा रहे हैं। उसे अपना मान रहे हैं। इसका नाम मोह है। पर को अपना मानना, पर में अपने पन को देखना ही मोह हो जाता है।

क्षोभ से अभिप्राय

जब हमने उसे अपना माना है तो उससे कुछ न कुछ राग या द्वेष होगा। यह राग और द्वेष ही क्षोभ है। हमारा मन क्षुब्ध कब होगा। जब हमारे पड़ोसी ने अचानक हमारे साथ व्यवहार बदल दिया। वह पहले

तो अच्छा व्यवहार करता था, अब उसने अपना व्यवहार बदल दिया। मन में क्षोभ हो गया है। अब मन अच्छा नहीं रहता है, क्षुब्ध रहता है, उखड़ा-उखड़ा सा रहता है।

क्षोभ का प्रारम्भ राग से ही होता है।

उसने क्या कर दिया? वह तो अपना काम कर रहा है और आप अपनाकाम कर हो। अगर वह आपसे नहीं बोल रहा है, आपसे अच्छा व्यवहार नहीं कर रहा है, यह उसका अपना भाव है। आपको परेशान होने की क्या जरूरत है? आप का भाव तो आपके पास है। आपकी आत्मा का परिणाम तो आपकी आत्मा में ही है। लेकिन वह उससे जुड़ा था। पहले हमने मोह से जोड़ा फिर उसमें हमने अपनापन माना। जबकि वो अपना हो नहीं सकता था। उसको हमने अपना माना, यह हमारा मोह हो गया। और इस अपनेपन में जब हम थोड़ी सी गाढ़ता लाये, उससे राग किया तो यह हमारा क्षोभ हो गया। राग का क्षोभ हमें तब समझ आया, जब उसने अपना हाथ खींचा और उसने आपसे बात करना बंद कर दिया। आपको लगा कि इसको आपसेद्वेष हो गया है और आपको उससे होने वाला क्षोभ समझ में आने लगा।जबकि वह क्षोभ राग से ही प्रारम्भ हो चुका था। क्योंकि राग के बिना द्वेष नहीं होता। अगर द्वेष हुआ है तो इसका अभिप्राय है कि आपने पहले उससे राग किया है। इसलिए राग भी क्षोभ देता है और द्वेष भी क्षोभ देता है। लेकिन राग अच्छा लगता है और द्वेष बुरा लगता है। आपका जब तक उससे व्यवहार बना हुआ था, तब तक उसे अच्छा लग रहा था। जब उसको आपकी आवश्यकता नहीं रही, उसने आपसे व्यवहार छोड़ दिया। वह अपना काम कर रहा है और आप अपना काम करो। कल तक बोल रहा था और आज नहीं बोल रहा है। आपके मन में प्रश्न उठेगा कि ऐसा क्यों होता है? हम सभी के साथ अच्छा करते हैं और दूसरा आदमी उसे एक क्षण में भुला देता है। मंदिर में कहोगे कि हमारे अंदर मोह, रागद्वेष परिणाम ही नहीं है। आप स्वयं को भुलावे में मत डालो।

आत्मा के अंदर मोह, रागद्वेष के भाव का कारण कषाय है।

आचार्य कहते हैं - जब तक ये कषाये पूर्णतः समाप्त नहीं होगी, तब तक आत्मा का जो साम्य रूप परिणाम है, वह प्रकट नहीं होगा। सुन रहे हो? मोक्ष मार्ग इतना सरल नहीं है, जितना आप समझ लेते हो। मोक्ष मार्ग में आपको एक तरह से निर्दयी बनना पड़ता है। आप इतने निर्दयी बन जाओ कि सामने वाले ने आपसे बोलना बंद कर दिया तो आप उसकी चिंता करना छोड़ दो। क्योंकि वह भी अपने मन को क्षुब्ध करने वाला है। द्वेष या राग मेरा स्वभाव नहीं है। मैंने पर को अपना माना, यह मेरा मोह था। आप अपने अंदर यह भाव करो कि मुझे न मोह करना है, न राग करना है, न द्वेष करना है। मेरा स्वभाव तो जानना मात्र है। मैं ज्ञायक स्वभावी हूँ। क्या ऐसा हो जाता है? आपके मन में बार-बार यही विचार आएगा कि आखिर उसने हमारे साथ ऐसा क्यों किया? उसका करना उसके साथ है, आपका करना आपके साथ है। आप अपने साथ उसको क्यों जोड़ रहे हो? यह

जोड़ने का प्रारम्भ मोह से होता है। मोह का अर्थ ही पर परिणति में अपना भाव लाना है। यह तो पर की परिणति है। जो पर आत्मा है, उसका अपना परिणमन है। उसने आपसे अपना परिणमन हटा लिया तो आप भी उससे अपना परिणमन हटा लो। केवल यही अच्छा नहीं लगता है, बाकी सब अध्यात्म में अच्छा लगता है।

मोक्ष मार्ग में निर्दयी बनना पड़ता है।

अध्यात्म केवल जानने और सुनने तक ही सीमित नहीं है। अपने भावों को पकड़कर और उसको मरोड़ कर अपने स्वभाव में लाने की जिसमें क्षमता होती है, वही अध्यात्मिक कहलाता है। इसलिए आचार्य कहते हैं - **"निर्दय भस्म सात् क्रिया"** आदिनाथ भगवान की स्तुति करते हुए आचार्य समन्तभद्र महाराज कहते हैं- भगवन आपने क्या किया? निर्दयता से आपने अपने अंदर के भावों को भस्मसात कर दिया। अब किसी के ऊपर दया का ज्यादा भाव मत रखो। अपने ही अंदर ऐसा कठोर भाव लाना पड़ता है कि हमारा परिणमन किसी से भी जुड़ा हुआ नहीं है। अगर हम यह मानेंगे कि हमारा परिणमन उसके अनुसार हो रहा है तो वह हमारे अंदर का मोह भाव होगा। जहां मोह भाव होगा, वहाँ पर चारित्र का अंश भी नहीं होगा। इसलिए आचार्य क्या कहते हैं -**"मोहक्खोहविहीणो"**मोह अर्थात दर्शनमोह और क्षोभ अर्थात चारित्र मोह।

दर्शन मोहनीय और चारित्रमोहनीय

कर्म की अपेक्षा से देखें तो मोहिनीय कर्म दो प्रकार का होता है। पहला दर्शन मोहनीय और दूसरा चारित्रमोहनीय। दर्शन मोहनीय का कार्य पर में आत्म बुद्धि लगाए रखना है। जो भगवान नहीं है, उन्हें भगवान मानना। जो गुरु नहीं है, उन्हें गुरु मानना। जो शास्त्र नहीं हैं, उन्हें शास्त्र मानना। यह दर्शन मोहनीय का कार्य है। क्योंकि दर्शन मोहनीय का अर्थ है - मिथ्या बुद्धि पैदा करना। इस मोह के बाद दूसरा चारित्रमोहनीय आता है। चारित्रमोहनीय भी अनेक प्रकार का है। अनंतानुबंधीकषाय, अप्रत्याख्यानकषाय, प्रत्याख्यानकषाय, संज्वलनकषाय, ये सभी कषायें आत्मा के अंदर पड़ी रहती हैं। इन कषायों संबंधी रागद्वेष जो मन के अंदर चलता रहता है, वह कभी भी साम्य परिणति को अनुभव करने नहीं देता है।

आत्मा में साम्य भाव कब आएगा?

आचार्य श्री कहते हैं - जब मोह और क्षोभ का अभाव हो जायेगा। जब उसका आत्मा में नाश हो जाएगा। मोह भी नहीं बचेगा और क्षोभ भी नहीं बचेगा। कोई कितना ही क्षुब्ध करें। आत्मा में न राग से, न द्वेष से, कोई क्षोभ उत्पन्न नहीं होगा। आत्मा कभी किसी को अपने सिवाय, पर को अपना मानने का भाव नहीं करेगा। चाहे

वह चेतन द्रव्य हो अथवा अचेतन द्रव्य हो। कोई भी द्रव्य हमारा नहीं है। मेरा परिणमन, मेरी आत्मा में ही है। इसके अतिरिक्त कुछ भी मेरा नहीं। जब आत्मा के अंदर इसतरह की निर्मोह परिणति आती है, तभी वह आत्मा क्षोभ से रहित होकर अपने शुद्ध स्वभाव में ठहरता है और वह साम्य परिणाम वाला कहलाता है।

पंचम काल में आत्मा का साम्य भाव नहीं होता

यह चारित्रपंचम काल में किसी को भीनहीं होने वाला है। क्योंकि यह चारित्र तो चूल रूप में है। इतना जरूर हो सकता है कि आप मकान की नींव डाल दो, मकान की boundary तैयार कर लो और उस boundary के ऊपर एक छत भी डाल सकते हो। एक के ऊपर दूसरी भी छत डाल लो। इतना तो हो सकता है। उस छत पर चूल रूप में शिखर बनाने के लिए, इतना पैसा किसी के भी पास नहीं है कि वह उस पर शिखर बना ले। यहाँ पैसे से तात्पर्य योग्यता से है। पुण्य से है। अभी इतना ही है कि सम्यग्दर्शन की जड़ें औरसम्यग्दर्शन की नींव तैयार कर सकते हो। चारों ओर व्रतों की boundary बना सकते हो। उसमें निश्चिंतता से रहने के लिए उसके ऊपर अपनी अच्छी-अच्छी भावनाओं की छत डाल सकते हो। उसमें बैठकर शांति से ध्यान कर सकते हो कि हे भगवन! वह दिन कब आएगा, जब हमारी इस छत के ऊपर भी एक शिखर बनेगा और हमारा यह भवन पूर्ण कहलाएगा। क्या समझ में आ रहा है? जितना आप कर सकते हो, वह भी कम नहीं है। किन्तु नींव तो तब बनेगी, जब जमीन अपनी होगी। पहले जमीन अपनी बनाओ। फिर उसमें नींव डालो। चारों तरफ चार दीवार खड़ी करो। छत डालकर उसमें शांति से बैठ जाओ। छत के ऊपर शिखर नहीं बन रहा है, कोई बात नहीं। किन्तु छत के नीचे तो बैठे रहो। बहुत सी आपत्ति से, विपत्तियों से, तूफान से, बरसात से, इन सभी से तो आपका बचाव हो जाएगा। समझ आ रहा है क्या?

पंचम काल में धर्म ध्यान

कहने का तात्पर्य है - सम्यग्दर्शन की नींव, व्रत रूपीboundary के बीच में, भावनाओं की छत के नीचे बैठकर आप निश्चिंत हो जाओगे तो उस धर्म ध्यान से ही आपके अंदर इतनी योग्यता आ जाएगी कि शिखर बनाने योग्य जो शुक्ल ध्यान है, वह एकदिन आपको अवश्य प्राप्त हो जाएगा। इस पंचम काल में धर्म ध्यान हो जाए, यह भी कम नहीं है। उस धर्म ध्यान के साथ क्या होगा? जैसा कि पहले आपको दो प्रकार का चारित्र बताया था। एक सरागचारित्र और एक वीतरागचारित्र। वीतरागचारित्र ही यहाँ पर मुख्य रूप से धर्म कहा जा रहा है। क्योंकि**चारित्तंखलुधम्मो**धर्म है। वह स्वभाव है। स्वभाव में अंश मात्र भी रागद्वेष नहीं है। सरागचारित्र में कुछ ना कुछ रागद्वेष का भाव आ ही जाता है। सरागचारित्रवीतरागचारित्र का सहयोगी तो बनता है, किन्तु वह सरागचारित्रवीतराग चरित्र की तरह निर्मल नहीं है। उसमें राग का अंश जुड़ा रहता है। वह सराग होते हुए भी धर्म ध्यान कराने में सहायक है। लेकिन वीतरागचारित्र शुक्ल ध्यान रूप परिणति है। वह परिणति वर्तमान

में न हो तो भी कोई बात नहीं। लेकिन धर्म ध्यान रूपी परिणति इतनी अवश्य हो कि छत डालकर, उसमें शांति से बैठकर हम बाहर की हवा के झकोरों से बच जाएँ। दुनिया में क्या हो रहा है, ये हमें पता न पड़े? हम अपनी अच्छी-अच्छी भावनाएँ करते रहे ,पंच परमेष्ठी की स्तुति करते रहें और आत्मा की भी भावना करते रहें। यह भी कम नहीं है। जब छत ही नहीं होगी, सारा पानी घर में घुसेगा। सारी हवाएँ घर के सामान को उड़ाएँगी। आप चैन से बैठ ही नहीं पाओगे। चैन से बैठने के लिए ही सरागचारित्र अपनाया जाता है। न घर की चिंता, न व्यापार की चिंता, न रोटी की चिंता। इससे क्या होता है? इससे आर्त ध्यान होता है। जब आपने आर्त ध्यान के कारणों को छोड़ दिया तो मात्र धर्म ध्यान बचेगा।

आर्त ध्यान रौद्र ध्यान के साथ ही जुड़ा होता है। जब आर्त ध्यान में थोड़ी तीव्रता आ जाती है, वह रौद्र ध्यान हो जाता है। आर्त ध्यान एवं रौद्र ध्यान छोड़कर धर्म ध्यान करना, यह पंचम काल में कम नहीं है। शुक्ल ध्यान की भावना करो। इतना हो जाये, तो ठीक है। अगर नहीं है, तो कम से कम इतना तो है कि अच्छी छत के नीचे बैठे हो। धर्म ध्यान कर रहे हो। छत से तात्पर्य अच्छी-अच्छी भावनाएँ, बारह भावनाएँ, पंच महाव्रतों की भावनाएँ। उनसे अपनी आत्मा की रक्षा करने का नाम ही छत के नीचे बैठना है। यह धर्म ध्यान करने का एक उपाय है।इसलिए आचार्य कहते हैं - इस धर्म ध्यान में जितना मोह और क्षोभ कम हो जाएगा, उतना ही आपको अपने साम्य भाव के निकट आने का अवसर मिल जाएगा। ऐसा यह मोह और क्षोभ से रहित आत्मा का परिणाम साम्य कहलाता है। इसलिए ऐसा प्रयास करो कि पर परिणति में आपापन छूटे। उससे होने वाले राग और द्वेष अपने अंदर कम हो जाये। तभी हमारे अंदर यह आत्मा का धर्म प्रगट होगा। हमारी पहली भूल तो वहीं हो जाती है, जब हम पर को अपना मान लेते हैं। इस पहली भूल का नाम मोह है। और उसके आगे जब हम अति में रागद्वेष भाव कर जाते हैं, वह हमारा क्षोभ उत्पन्न करने वाला भाव होता है। इन दोनों भावों को अपना स्वभाव मत समझो। यही अपने अंदर आत्मा के अहित करने वाले भाव है। इन भावों से हट कर के अपनी आत्मा के साम्य परिणाम का आलंबन लेना ही इस गाथा का अर्थ है।

प्रवचन०९ – धर्मात्माकाअर्थ (गाथा००८–००९)

परिणमदिजेणदव्वंतक्कालेतम्मएत्तिपण्णत्तं।
तम्हाधम्मपरिणदोआदाधम्मोमुणेदव्वो ॥ ८॥

जो द्रव्य ज्यों परिणमें जिस रूप ढ़ोता, तत्काल तन्मय बना उस रूप होता।
सद्धर्म रूप ढ़लता जब आतमा ही,औचित्य,धर्ममय हो शिवराहराही।।

अन्वयार्थ-(**दव्वं**) द्रव्य जिस समय (**जेण**) जिस भाव रूप से (**परिणमदि**) परिणमन करता है (**तक्काले**) उस समय (**तम्मए**) उस मय है (**तो**) ऐसा (**पण्णत्तं**) जिनेन्द्र देव ने कहा है (**तम्हा**) इसलिये (**धम्मपरिणदोआदा**) धर्म परिणत आत्मा को (**धम्मोमुणेदव्वो**) धर्म समझना चाहिए।

पिछली गाथा में बताया था कि चारित्र ही धर्म है। वह साम्य भाव रूप होता है और इस साम्य भाव से ढला हुआ जो आत्मा है, वह आत्मा ही धर्ममय हो जाता है। आत्मा को धर्ममय कैसे कह सकते हैं? इस बात को समझाने के लिए यहाँ बताया गया है - यह द्रव्य का स्वभाव होता है कि द्रव्य जिस समय जिस पर्याय से या जिस भाव से परिणमन करता है, वह द्रव्य उस समय पर उस मय हो जाता है।

परिणमदिका अर्थ है - परिणमन करता है। (**जेण**का अर्थ है) - जिस रूप से (दव्वं) अर्थात द्रव्य (तक्काले) अर्थात उसी समय पर (तम्मए) वह उस मय हो जाता है। इसको तन्मय कहते हैं। (त्ति) इस प्रकार (पण्णत्तं) अर्थात कहा गया है (तम्हा) इसलिए (धम्मपरिणदोआदा) धर्म से परिणत हुआ आदा अर्थात आत्माधम्मोमुणेदव्वोअर्थात धर्म जानना चाहिए।

द्रव्य का भाव से परिणमन करते हुए उस मय हो जाना

द्रव्य जिस समय पर जिस भाव से परिणमन करता है, वह उस समय पर उस मय हो जाता है। प्रायः यहाँ पर आत्म द्रव्य की बात कही गई है कि हमारा आत्मा एक द्रव्य है जो अनेक प्रकार की पर्यायों में भी परिणमन करता है और अनेक प्रकार के गुणों के साथ में भी परिणमन करता है। जिस समय पर यह आत्मा जिस गुण की पर्याय के साथ परिणमन करेगा, वह आत्मा उस समय पर वैसा ही हो जाता है। तन्मय हो जाता है। संसार में रहने वाला आत्मा, संसारी आत्मा इसलिए कहलाता है क्योंकि वह आत्मा संसार में संसार के भावों के

साथ तन्मय होकर परिणमन करता है। कर्म के साथ में जो कर्म से उत्पन्न होने वाले भाव होते हैं, उन भावों के साथ में जब आत्मा परिणमन करता है तो वह उस समय उस मय हो जाता है।

पाँच प्रकार के भावो की अपेक्षा से आत्मा का परिणमन

आचार्यों ने पाँच प्रकार के भावों के बारे में बताया हैं। औदयिक भाव, औपशमिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, क्षायिक भाव, पारिणामिक भाव, इन पाँच प्रकार के भावों का वर्णन सिद्धांत में मिलता है। यहाँ पर उन्हीं भावों की अपेक्षा से हम समझ सकते हैं कि आत्मा जिस समय पर, जिस भाव से परिणमन करता है, वह उस समय पर उसी रूप हो जाता है। आपसे पूछा जाए कि अगर आपकी आत्मा द्रव्य है तो उसकी पर्याय क्या है? तो उत्तर मिलता है, मनुष्य पर्याय है। अर्थात अभी जो आत्मा है, वह मनुष्य पर्याय में तन्मय हो रही है। तन्मय का अर्थ है - उस मय जाना, उसी में घुल मिल जाना। तन्मय में कुछ भिन्नता का भाव नहीं रहता। उसी में एक रूप हो जाना तन्मय कहलाता है।

तन्मय अथार्त उस मय हो जाने का उदाहरण

जैसे जलेबी बनती तो अलग है और जब वह चाशनी के साथ में डाली जाती है तो उस समय पर चाशनी अलग होती है और जलेबी अलग होती है। चाशनी में ही तो जलेबी नहीं बना देते हो न। पहले जलेबी बनाई जाती है और बाद में उसको चाशनी में डाला जाता है। क्यों डाला जाता है? अगर आपको जलेबी मीठी ही खानी थी तो जलेबी अलग रख लेते, चाशनी अलग रख लेते और जलेबी को चाशनी के साथ मिलाकर खा लेते। उसे बाद में चाशनी में क्यों डाला? क्योंकि चाशनी में डाले बिना वह स्वाद ही नहीं आता। क्यों नहीं आता? क्योंकि वह चाशनी उसमें तन्मय नहीं हो रही है। वह जलेबी जब उस चाशनी में मिलती है तो वह भी बिल्कुल चाशनी मय हो जाती है। वह ऊपर से भी और अंदर से भी मीठी हो जाती है। इसको तन्मय पना कहते हैं। अब आप जब भी जलेबी खाओगे और उसका कोई भी टुकड़ा लोगे तो उसमें आपको मिठास आएगी। अगर आप उसको चाशनी में नहीं डुबाते तो क्या होता? जलेबी के जिस छोर पर आप चाशनी लगाते, केवल वही मीठी होती और वह भी शायद पूरी मीठी नहीं हो पाती। उसको भी जब मुँह में रखते हैं तो लगता कि किसी जगह मीठा नहीं है और किसी जगह मीठा है। अर्थात वह तन्मय नहीं हुआ है।

तन्मय का अर्थ

द्रव्य जिस समय पर, जिस पर्याय के साथ परिणमन करता है, वह उस समय पर उस रूप हो जाता है यानि उसी मय हो जाता है। या यह भी कह सकते हैं कि वह पर्यायमय हो जाता है। वह जिस भाव के साथ परिणमन करेगा, वह उस भावमय हो जाता है। जैसे जलेबी चाशनी मय हो जाती है।

स्वभाविक पर्याय और वैभाविक पर्याय

आप मनुष्य हैं और मनुष्य होना, आत्मा का स्वभाव नहीं है। यह आत्मा की एकवैभाविकपर्याय है। यह स्वाभाविक पर्याय नहीं है। आत्मा की एक स्वभाविक पर्याय होती है और एक वैभाविक पर्याय होती है। यह मनुष्यपना आत्मा की एक वैभाविक पर्याय है। वैभाविक भाव है। जब मनुष्य बन जाता है तो वह हमेशा मनुष्य रूप ही स्वयं को अनुभव करता है। उसे कभी भान नहीं होता कि मैं इस मनुष्य पर्याय से भिन्न हूँ। वह उस पर्याय में ही अपने आपको अनुभव करेगा। इसी को तन्मय हो जाना कहते हैं। द्रव्य जिस पर्याय के साथ परिणमन करता है, वह उस पर्यायमय हो जाता है। जैसे मनुष्य एक पर्याय है, वैसे देव भी एक पर्याय है, पशु भी एक पर्याय है, तिर्यंच भी एक पर्याय है और नारकी भी एक पर्याय है। जो जिस पर्याय में जाएगा, वह उस पर्याय में ही स्वयं को अनुभूत करेगा। मनुष्य कभी पशु पर्याय रूप स्वयं को अनुभव नहीं कर सकता और पशु कभी मनुष्य रूप स्वयं को अनुभव नहीं कर सकता।

द्रव्य का पर्याय के साथ तन्मय हो जाना

हम यह भी जान लें कि मनुष्य मेरा स्वभाव नहीं है और पशु भी जान लें कि पशु होना उसका स्वभाव नहीं है लेकिन उसे अनुभूत तो वही होगा, जिस पर्याय के साथ में वह रह रहा है। इसी को द्रव्य का पर्याय के साथ में एकमेक हो जाना कहते हैं। अर्थात तन्मय हो जाना कहते हैं। मनुष्य में भी कोई स्त्री है तो स्त्री को स्त्री जैसा ही भाव आएगा और पुरुष को पुरुष जैसा ही भाव आएगा। पुरुष कभी स्त्री पर्याय अनुभव नहीं कर सकता और स्त्री कभी पुरुष पर्याय को अनुभव नहीं कर सकता है। वह कह जरूर लें कि स्त्री होना या पुरुष होना, मेरा स्वभाव नहीं है। लेकिन अनुभव क्या करेगा? परिणमन किस रूप करेगा? तो जैसी उसको पर्याय मिली है, जैसा उसको शरीर मिला है तो वह उसी रूप में परिणमन करेगा।

आत्मा की वैभाविक द्रव्य व्यंजन पर्याय

आचार्य यहाँ पर कहते हैं -**परिणमदिजेणदव्वंतक्कालेतम्मएत्तिपण्णत्तं।**द्रव्य यानि आत्मा,जिस समय पर जैसा परिणमन करता है, वह उस समय पर उस मय हो जाता है। इसमें किसी भी प्रकार की भी विरोध की बात नहीं है। मनुष्य मनुष्यता का भाव करेगा, पशु पशुता का भाव करेगा। और मनुष्य में भी स्त्री, स्त्री रूप भाव करेगी और पुरुष पुरुष रूप भाव करेगा। क्यों करेगा? क्योंकि वह उस रूप ही परिणमन कर रहा है। इसी को आत्मा की वैभाविक द्रव्य व्यंजन पर्याय कहते हैं। यह जो हमें मनुष्यपन मिला या स्त्रीपन मिला या पुरुषपन मिला, ये सब क्या है? ये सभी आत्मा की वैभाविक पर्याय है। ये पर्याय आत्म द्रव्य से संबंध रखती

है, इसलिए ये आत्म द्रव्य की वैभाविक पर्याय व्यंजन पर्याय कहलाती है। इस वैभाविक द्रव्य व्यंजन पर्याय में जैसे यह आत्मा तन्मय होता है, वैसे ही आत्मा के अंदर कुछ गुण होते हैं, उन गुणों के साथ भी तन्मय होता है।

जैसे आत्मा का ज्ञान गुण है। जिसके अंदर ज्ञान का जितना क्षयोपशम होगा, वह आत्मा उतने ही ज्ञान के साथ तन्मय होगी। किसी को अधिक ज्ञान का क्षयोपशम नहीं है और अधिक ज्ञान नहीं हो रहा है तो आत्मा के लिए उस रूप परिणमन नहीं हो पाएगा जैसा वह चाह रहा है। जितना ज्ञान है, आत्मा उस मयपरिणमन कर रहा है। यह क्या हो गया? यह अपने अंतरंग के ज्ञानादि गुणों के साथ, उस आत्मा का परिणमन हो रहा है। ऐसे ही आत्मा के अंदर जो कुछ राग,द्वेष और मोह आदि भाव उत्पन्न होते हैं, इन भावों के साथ भी आत्मा उसी रूप में परिणमन करता है, जैसे भाव उसके अंदर आ जाते हैं। अगर राग हुआ तो पूरा आत्मा रागमयपरिणमन करता है। अगर द्वेष हुआ तो पूरी आत्मा द्वेषमयपरिणमन करता है। ऐसा नहीं कि कहीं एक स्थान की आत्मा में या एक प्रदेश में तो राग रूप परिणमन हो जाए और कहीं पर कुछ द्वेष रूप हो।

आत्मा का राग मय और द्वेष मयपरिणमन

जिस समय जैसा वैभाविक भाव होगा, वह उस समय पर उसी वैभाविक भाव के साथ में पूरा आत्मा एक साथ परिणमन करता है। जब द्वेष होता है या राग होता है तो आपको अपनी आत्मा के भावों का परिणमन अपने शरीर के माध्यम से भी महसूस हो सकता है। आत्मा जब राग करता है तो हर्षित होता है और जब द्वेष करता है तो दु:खी होता है। आप शरीर के किसीएक हिस्से में दु:खी होते हैं या पूरे शरीर में दु:खी होते हैं? अगर आप हर्षित होते हैं तो शरीर के किसी एक हिस्से में हर्षित होते हैं या पूरे शरीर में हर्षित होते हैं? कहा भी जाता है, हर रोम- रोम खिल गया। कैसे? आत्मा के एक- एक प्रदेश में हर्ष का अनुभव स्वतः ही होने लग जाता है।

आत्मा को धर्म क्यों कह दिया?

यहाँ पर कहा जा रहा है कि यह आत्मा जब जिस भाव से परिणमन करता है, वह उस भावमय हो जाता है। वह जिस पर्याय से परिणमन करता है, वह उस पर्यायमय होता है। जिस गुण के साथ परिणमन करता है, वह उस गुणमय हो जाता है। और जो कर्मजन्यरागादि भाव हैं, उनमें से जिस भावरूपपरिणमन करता है तो वह आत्मा उसी रूप हो जाता है।**तम्हाधम्मपरिणदोआदा**इसलिएधर्म से परिणत हुआ आदा (आत्मा) धर्म जानना चाहिए। यहाँ पर आत्मा को धर्म क्यों कह दिया? क्योंकि धर्म तो एक भाव है। वह आत्मा कैसे हो गया? तो उसको समझाने के लिए आचार्य कहते हैं - वह भाव जिस रूप में जैसा होगा, वह आत्मा उसी भाव के साथ वैसा ही हो जाएगा। भाव कौन सा था? पिछली गाथा में बताया गया साम्य भाव क्या था? वह साम्य भाव

आत्मा के चारित्र गुण का परिणाम था। इस प्रकार आत्मा का वह परिणाम, जो चारित्र गुण के परिणमन के साथ था, वह आत्मा का साम्य भाव और वही आत्मा का साम्यभाव धर्म कहा गया था। तो धर्म अलग है क्योंकि वह भाव रूप है और आत्मा अलग है क्योंकि वह भाव को धारण करने वाला है।

भाव और भाव वाला एक कैसे हो गए?

क्योंकि भाव तो अलग है और भाव वाला आत्मा अलग है। आत्मा ने वैसा भाव किया तो हमने आत्मा को उस भाव वाला कह दिया। क्यों कह दिया? इसका उत्तर यहाँ दिया जा रहा है। आत्मा को उस भाव वाला इसलिए कह दिया क्योंकि वह आत्मा उस रूप में ही परिणमन कर गया। इसलिए वह आत्मा उस भाव वाला हो गया।

भाव और भाव वाला के एक हो जाने का उदाहरण

आप इसे एक उदाहरण के माध्यम से समझ सकते हैं। मान लीजिये, कोई स्फटिक मणि है। उसके पास में किसी भी रंग की वस्तु रख दी जाये तो वह स्फटिक मणि भी उसी रंग की दिखने लग जाती है। ऐसा क्यों हो गया? क्योंकि वह उस भाव के साथ में परिणमन कर गई। इसी प्रकार आत्मा भी भावों के साथ में वैसा ही परिणमन कर जाता है। इसलिए उस आत्मा को उसी भाव वाला कहा जाता है। यह दो पृथक चीजों की बात हो गई क्योंकि स्फटिक मणि अलग है और रंग वाली वस्तु अलग है। इसे एक चीज में कैसे घटित करेंगे? इसे भी एक उदाहरण के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे।

आत्मा के ज्ञान शून्य और भाव शून्य का उदाहरण

आत्मा का ज्ञान गुण है। वह ज्ञान किसी की आत्मा के अंदर इतना भी प्रकट नहीं हुआ कि वह स्वयं को भी ढंग से जान सके कि मैं मनुष्य हूँ। कुछ ऐसे भी बच्चे होते हैं जिनका दिमाग जन्म से एक ही level पर बना रहता है। अगर बढ़ता है तो थोड़ा बहुत बढ़ जाता है।समय के साथ उनका जितना मानसिक विकास होना चाहिए था उनका वह मानसिक विकास उतना नहीं हो पाता। जब उनका मानसिक विकास उतना नहीं होता तो इसका मतलब क्या है? उनका जो ज्ञान था वह उतना ही बना रह गया और वह उसी ज्ञान के साथ में परिणमन कर रहे हैं। उनकी उम्र तो बढ़ रही है लेकिन ज्ञान उतना ही पड़ा है, समझ उतनी ही पड़ी है। कुछ ऐसे भी बच्चे होते हैं जो अपने हाथ से अपने शरीर की क्रियाओं को भी नहीं कर पाते हैं क्योंकि उन्हें समझ ही नहीं होती है। वे जीवित तो हैं परन्तु कुछ भी कर नहीं पाते हैं। यह क्या हो गया? यह आत्मा का स्वयं के ही ज्ञान के साथ में ऐसा परिणमन हो गया कि अब उस आत्मा को कहा जाएगा कि यह आत्मा ज्ञान शून्य हो रहा है। ज्ञान के कारण से आत्मा को क्या कहा गया? कि यह आत्मा ज्ञान शून्य हो रहा है। अगर हमने उससे कहा कि कोई

अच्छा भाव करो, कोई अच्छी भावनाएँ अपने मन में लाओ लेकिन उसको कुछ समझ नहीं आ रहा है। तो इसे क्या कहा जायेगा? कि यह आत्मा भाव शून्य हो रहा है। भाव न होने के कारण से इस आत्मा को भाव शून्य कहा जायेगा।

आत्मा को धर्म क्यों कहा गया?

अगर किसी व्यक्ति के भाव पहले बहुत क्लेशित थे, दुखी थे और हमारे समझाने पर उसके भाव बड़े अच्छे हो गए, प्रसन्न हो गए तो इसे क्या कहा जाएगा? यह आत्मा प्रसन्न भाव वाला है। उसके भावों के कारण से ये सब उसकी आत्मा को कहा जा रहा है। अगर वही आत्मा दुखी रहता है, हमेशा संक्लेश में पड़ा रहता है तो इसे दुखी आत्मा कहा जाता। अगर वह संक्लेश भाव वाला है तो भावों के कारण से ही उस आत्मा को उस रूप कह दिया जाता है। इसी तरह से साम्य भावों के कारण से जो कि धर्म भाव है, उस आत्मा को भी धर्म कह दिया जाता है। धर्म क्या है? जो आत्मा साम्य भावरूप धर्म में ढल गया वह आत्मा ही धर्म है। जो आत्मा चारित्र रूप,साम्य भावरूप धर्म में ढल जाता है, वह आत्मा ही धर्म है। अर्थात वह आत्मा और धर्म दोनों अलग-अलग नहीं हैं। उस आत्मा ने धर्म भाव किया तो आत्मा उस धर्म रूप परिणमन हो गया।

जैसे - अगर आत्मा दुःख रूप परिणमन करता है तो उसे दुखी आत्मा, और अगर सुख रूप परिणमन करता है तो उस आत्मा को सुखी आत्मा कहा जाता है। ऐसे ही जब आत्मा धर्म रूप परिणमन करता है तो उस आत्मा को धर्मात्मा कहा जाता है। धर्मात्मा क्यों कहा गया? क्योंकि वह आत्मा धर्म के साथ परिणमन कर रहा है। और जब धर्म के साथ परिणमन नहीं करता है तो वह अधर्मात्मा कहा जाता है।

आत्मा व्यवहार धर्म और निश्चय धर्म वाला है।

यही बात यहाँ कही जा रही है**तम्हाधम्मपरिणदोआदाधम्मोमुणेदव्वो**–धर्म से परिणत हुआ आत्मा ही धर्म जानना चाहिए। आत्मा जैसे ही धर्म से परिणमन कर जाएगा वह आत्मा उसी धर्म वाला हो जाएगा। चूँकि यहाँ पर धर्म जो चारित्ररूपी धर्म था। जिसको हमने पहले दो रूपों में समझा था पहला वीतराग और दूसरा सरागचारित्र। वीतरागचारित्र को हम निश्चय चारित्र भी कह सकते हैं और सरागचारित्र को हम व्यवहार चारित्र भी कह सकते हैं। धर्म की अपेक्षा से कहना चाहें तो वीतरागचारित्र को हम निश्चय धर्म कह सकते हैं और सरागचारित्र को हम व्यवहार धर्म कह सकते हैं। निश्चय एवं व्यवहार,वीतराग एवं सराग ये दो चीजें हमारे सामने आ रही हैं। आत्मा इन दोनों रूप में परिणमन करता है। जब वीतरागचारित्र रूप परिणमन करेगा तो हम कहेंगे आत्मा वीतराग हो गया,वीतराग धर्म रूप हो गया। जब सराग चरित्र रूप परिणमन करेगा तो कहेंगे

आत्मा सराग रूप हो गया। अर्थात जब निश्चय रूप परिणमन किया तो आत्मा निश्चय धर्म वाला हो जाता है और जब व्यवहार धर्म में परिणमन किया तो आत्मा व्यवहार धर्म वाला हो जाता है।

आत्मा का व्यवहार धर्म और निश्चय धर्म मुख्य और गौण के अपेक्षा से

इसी को हम थोड़ा सा मुख्य और गौण की अपेक्षा से भी समझ सकते हैं कि जब आत्मा व्यवहार धर्म में परिणमन करता है तो उसमें व्यवहार की मुख्यता रहती है निश्चय उसमें गौण हो जाता है। मुख्य से तात्पर्य जो सामने आ जाए और गौण से तात्पर्य जो पीछे रह जाए। जैसे -एक सिक्का है, उसके दो पहलू हैं। हमने उसे उछाला और उछालने के बाद में जो सामने आ गया वह मुख्य हो गया और जो उसके पीछे है वह गौण हो गया। ऐसे ही जब आत्मा सराग भाव के साथ में व्यवहार धर्म रूप परिणमन करता है तो उसमें निश्चय गौण हो जाता है। छूट नहीं गया। क्यों गौण हो गया? उस समय उसमें प्रमुखता व्यवहार की हो जाती है। जब आत्मा निश्चय रूप परिणमन करता है तो उसमें व्यवहार छूट जाता है व्यवहार गौण हो जाता है क्योंकि उस समय पर वह निश्चय की प्रमुखता वाले भावों में आ जाता है।

निश्चय चारित्र रूप परिणमन किसका होगा?

यह निश्चय और व्यवहार मुख्य और गौणता के साथ में चलता रहता है और इस तरह से यहाँ पर चारित्र रूप धर्म की बात कही जा रही है। जब चारित्र धर्म की बात आती है तो उस मार्ग में तो आप आते ही नहीं हैं। यह तो उनके लिए कहा जा रहा है जो कभी वीतरागचारित्र रूप भाव में परिणमन कर रहे हो। राग द्वेष मोह को छोड़कर केवल अपने आत्मा के स्व संवेदन निर्विकल्प ज्ञान में लीन हो जाते हैं तो वह उनके लिए निश्चय चारित्र रूप परिणमन हो जाता है। निश्चय चारित्र रूप परिणमन किसका होगा? जिसके पास व्यवहार चारित्र होगा,सरागचारित्र होगा,व्रत, संयम, तप आदि होगा वही उस रूप परिणमन करेंगे। और जब वह उस ध्यान अवस्था से हटे, निश्चय ध्यान चारित्र से हटे तो फिर उस समय उनका परिणमन कैसा हो जाता है? वह व्यवहार चारित्र रूप परिणमन हो जाता है। वह सरागचारित्र रूप परिणमन हो जाता है जिसमें व्रत,संयम, तप आदि की मुख्यता हो जाती है। ऐसे ही यह चारित्र रूप धर्म में आत्मा परिणमन कर रहा है तो आत्मा उसी धर्म वाला कहलाएगा। सरागचारित्र रूप परिणमन करके आत्मा सरागचारित्र वाला होगा और निश्चय चारित्र रुप परिणमन करेगा तो वह वीतरागचारित्र वाला होगा। इसीलिए यहाँ पर कहा जा रहा है आत्मा जिस धर्म से परिणमन करेगा वह वैसा ही हो जाएगा।

आत्मा का सम्यग्दर्शन धर्म रूप में परिणमन

अब आपके मन में जिज्ञासा उत्पन्न होगी कि हमारा भी तो कुछ धर्म होगा कि नहीं होगा? हमारे भीतर चारित्र नहीं है तो क्या हमारी आत्मा कभी धर्म रूप से परिणमन नहीं करेंगी? इस जिज्ञासा को शांत करते हुए आचार्य बताते है - हाँ हमारी आत्मा भी धर्म से परिणमन कर सकती है क्योंकि सम्यग्दर्शन को भी आत्मा का धर्म कहा गया है। जैसा पहले बताया गया था**चारित्तंखलुधम्मो**अगर आप अपनी आत्मा में कुछ नया परिणमन कर सकते हैं तो वह क्या कर सकते हैं? सम्यग्दर्शन रूप परिणमन हो जाए। तो वह सम्यग्दर्शन से जब आत्मा परिणमन करेगी तो उस समय पर उसका अपने आत्म तत्व पर और सब के आत्म तत्व पर इस तरह का श्रद्धान होगा कि वह सबको भी आत्मा के रूप में देखेगा। जीव के रूप में देखेगा और स्वयं को भी जीव के साथ जानेगा और देखेगा। यह क्या हो गया? उसका सम्यग्दर्शन भाव के साथ परिणमन।जिसमें वह जीव का सात तत्वों के साथ जीव का श्रद्धान करता है। वह अभी तक मिथ्यात्व के साथ में स्वयं में क्या देखता था? वह स्वयं को शरीर रूप देखता था एवं अन्य को भी केवल शरीर रूप ही देखता था। लेकिन जब वह सम्यग्दर्शन के साथ परिणमन करेगा तो वह जानेगा कि मेरी आत्मा शरीर नहीं है और जो शरीर है वह मेरा आत्मा नहीं है। ऐसे ही दूसरे को भी देखकर उसकी दृष्टि में आएगा कि इसका भी जो शरीर है, यह इसकी आत्मा नहीं और इसका आत्मा इसका शरीर नहीं है।

सम्यग्दर्शन कैसे होता है?

आपकी अनादि से जो मिथ्या दृष्टि चली रही है, जो मिथ्या भाव चला आ रहा है, इस भाव को बदलने पर ही सम्यक्त्व भाव आएगा। मिथ्यादृष्टि जीव कभी भी अपने शरीर को और अपनी आत्मा को अलग -अलग नहीं जानता और वह इस पर श्रद्धान भी नहीं करता है। सम्यग्दृष्टि जीव स्वयं की आत्मा को अपने शरीर से भिन्न मानकर श्रद्धा रूप में लाता है, जानता है और मानता है और जैसा स्वयं को जानता है वैसा ही दूसरे को भी जानता है। यह उसकी दृष्टि में जो परिवर्तन आता है इसी से उसके अंदर वह धर्म परिणमन हो गया। अगर आपको इतना श्रद्धान हो जाये तो आपकी आत्मा धर्ममय कहलाएगी। कि मेरी आत्मा शरीर नहीं और शरीर मेरा आत्मा नहीं। इतनी श्रद्धा हो जाये तो आपकी आत्मा का सम्यग्दर्शन रूप धर्म के साथ में आपकी आत्मा का परिणमन हो जायेगा।**तम्हाधम्मपरिणदोआदाधम्मोमुणेदव्वो**यह व्याख्या आपके साथ भी जुड़ जाएगी। इस तरह आपके भीतर धर्म रूप परिणमन करने के लिए सम्यग्दर्शन रूप जब आत्मा के भावों का परिणमन होगा तो आपका भी आत्मा धर्म रूप परिणमन कर जाएगा।

सम्यग्दृष्टि का श्रद्धान

अगर चारित्र रूप नहीं कर पा रहा है कोई बात नहीं सबसे पहले सम्यग्दर्शन रूप तो हो जाये और उस सम्यग्दर्शन रूप करेगा तो उसमे सब कुछ सही-सही हो जाएगा। परमार्थभूत देव शास्त्र गुरु का श्रद्धान होगा, जीवादि सात तत्वों का उसके लिए सही- सही श्रद्धान होगा और उसे यह भी श्रद्धान होगा कि इस संसार में इतने संसारी जीव हैं। ये जीव इतने ही रहेंगे। कोई भी दुनिया का ब्रह्मा एक भी नया जीव नहीं बना सकता है। जब-जब ये जीव अपने अंदर ऐसे ही सम्यग्दर्शन का भाव लाएँगे तब इन जीवों का वह संसार टूटेगा। इन्हीं जीवों में से कुछ मोक्ष को प्राप्त होंगे और मोक्ष को जाने वाले जो भी जीव हैं, वे पुनः इस संसार में नहीं आएँगे। ऐसा श्रद्धान जब आत्मा के अंदर एक अलग ढंग से परिणमन कर जाता है तब वह आत्मा सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा कहलाने लग जाता है।

ऐसा करने में हमें क्या कठिनाई हो रही है? चारित्र धारण करने के लिए तो आपको घर छोड़ना पड़ेगा या घर में बहुत कुछ आपको नया- नया करना पड़ेगा।लेकिन अगर सम्यग्दर्शन रूप धर्म को धारण कर लोगे तो उसमें आपको कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। हमें मात्र ज्ञान के साथ में अपनी श्रद्धा एवं आस्था को बदलना पड़ेगा जो हमने मिथ्या बना रखी है, उसे मात्र समीचीन बनाना होगा। जो आत्मा का स्वभाव है उसे देखो।जो आत्मा के अंदर संसार बंध की व्यवस्था है, उसे देखो। बंध की व्यवस्था के साथ- साथ उसके विपरीत मोक्ष भी आत्मा को प्राप्त होता है। मोक्ष किन कारणों से होता है? इन सभी कारणों को जानकर जब हम जीवादि सात तत्वों का सही-सही श्रद्धान लाते हैं, वही हमारी आत्मा के लिए सम्यग्दर्शन रूप धर्म हो जाता है। इसी को आचार्य महाराज यहाँ लिखते हैं-

जो द्रव्य ज्यों परिणमें जिस रूप ढ़ोता, तत्काल तन्मय बना उस रूप होता।
सद्धर्म रूप ढलता जब आतमा ही,औचित्य,धर्ममय हो शिवराहराही।।

इसी के बारे में आचार्य महाराज बता रहे हैं कि यह आत्मा मुख्य -मुख्य रूप से कितने भावों में परिणमन कर सकता है? भाव तो बहुत हैं लेकिन उनकी एक category बना दी जाएगी कि इस category में आने वाले भाव ये कहलाएँगे और इस category में आने वाले भाव ये कहलाएँगे। आत्मा मुख्य रूप से तीन भावों के साथ परिणमन कर रहा है। अब यहाँ पर तीन भावों की category बनाने वाले हैं। उससे पूर्व इस गाथा को पढ़ते हैं।

जीवोपरिणमदिजदासुहेणअसुहेणवासुहोअसुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धोहवदिहिपरिणामसब्भावो ॥ ९ ॥

आत्मा रहा शुभ जभी शुभ में ढ़लेगा,होता तभी अशुभ तत्पन में ढ़लेगा।
शुद्धत्व से परिणमें जब शुद्ध होता,सद्भाव शुद्धपन का तब सिद्ध होता।।

अन्वयार्थ-(**जीवो**) जीव (**परिणामसब्भावो**) परिणाम स्वाभावी होने से (**जदा**) जब (**सुहेणअसुहेणवा**) शुभ या अशुभ भाव रूप (**परिणमदि**) परिणाम करता है (**सुहोअसुहो**) तब शुभ या अशुभ स्वयं ही होता है (**सुद्धेण**) और जब शुद्ध भाव रूप परिणमित होता है (**तदा सुद्धोभवदिहि**) तब शुद्ध होता है।

गाथा का अर्थ

अब यहाँ पर थोड़ा-थोड़ा विस्तार प्रारम्भ हो रहा है। केवल धर्म रूप ही आत्मा परिणमन नहीं करता, अधर्म रूप भी करता है। सब मिलाकर आत्मा के जो भाव होते हैं, वे तीन प्रकार के हो जाते हैं। (**जीवो**) अर्थात जीव, जीव से तात्पर्य जो अपना आत्मा है,वह जीव संसारी आत्मा (**परिणमदि**) परिणमन करता है,(**जदा**) अर्थात जब (**सुहेण**)यानी शुभ से (**असुहेणवा**) अथवा अशुभ से, तो जब शुभ से परिणमन करेगा तो वह आत्मा शुभ हो गया और जब अशुभ से परिणमन किया तो वह आत्मा अशुभ हो गया। फिर एक तीसरी चीज है(**सुद्धेण**) शुद्ध से परिणमन करना। जब वह आत्मा शुद्धता के साथ परिणमन करेगा (**तदा शुद्धो**) तब वही आत्मा शुद्ध आत्मा कहलाएगा। (**हवदिहि परिणाम सब्भावो**) ये परिणाम स्वभाव वाला ही आत्मा होता है। परिणाम माने परिणमन स्वभाव वाला (changes)।

परिणमन और परिणाम में क्या अंतर है?

परिणाम का अर्थ है- आत्मा का भाव और परिणमन का अर्थ है- आत्मा अपने अंदर जिस form में अपने अंदर change ला रहा है। जिस पर्याय के साथ अपने अंदर परिवर्तन ला रहा है, उसको परिणमन कहा जाता है।

आत्मा परिणमन स्वभाव वाला है।

वह जैसा भाव करता है, उसी रूप में परिणमन कर जाता है। शुभ भावों के साथ शुभ रूप, अशुभ भावों के साथ अशुभ रूप और शुद्ध भाव के साथ शुद्ध रूप परिणमन कर जाता है। यानि आत्मा का यह परिणमन तीन प्रकार से होता है। अशुभ रूप, शुभ रूप और शुद्ध रूप। इन तीन भागों में ही हमें पूरे के पूरे आत्मा के परिणमन को विभाजित करना है। कैसे कर पाएँगे? क्योंकि आत्मा का परिणमन तो बहुत कुछ अलग-अलग होता रहता है। कभी आत्मा मिथ्यादृष्टि है, कभी आत्मा सम्यग्दृष्टि है, कभी वीतरागचारित्र वाला है, कभी सरागचारित्र

वाला। फिर वही आत्मा कभी अरिहंत बन गया और अरिहंत दशा में भी उसने समवशरण छोड़ दिया। अगर हम देखें तो आत्मा के परिणमन संसार अवस्था में भी अनेक प्रकार के हैं और जब वह मोक्ष मार्ग पर आ जाता है तब भी अनेक प्रकार के होते हैं। अब इन सब को तीन category के अंदर ही ढ़ालना है।

गुणस्थान क्या होता है?

गुणस्थान का मतलब है - अपने भावों का आकलन करना है। भावों का आकलन करने का मतलब अपने भावों को नापना। इस जीव के जितने भी भाव् होते हैं, जो भाव अपने में नहीं भी है लेकिन किसी अन्य जीव में है तो उन भावों को नापने का thermometer ये गुणस्थान होते हैं। जीवों के अंदर जितने भी भाव हो सकते हैं, उन सभी को नापने का thermometer, ये गुणस्थान होते हैं।

जीव के अंदर कितने भाव होते हैं?

गुणस्थान के अनुसार आचार्यों ने जीव के भावों को चौदह गुणस्थानों में विभाजित किया है। संसारी जीव से लेकर मोक्ष जाने वाले जीव के अंतिम समय तक, मोक्ष जाने से पहले तक संसारी जीव के जो भाव होंगे, उनकी category को चौदह भागों में विभाजित किया गया है। उसके चौदह अलग -अलग उसके खाने बना लो। फिर उसके माध्यम से उन चौदह गुणस्थानों में हर एक जीव को आप अलग -अलग बाँट सकते हो। पूरे संसार में हर जीव के अंदर इससे ज्यादा कोई भी भाव नहीं होंगे। उन भावों को कैसे divideकरना है? जैसे thermometer के ऊपर नंबर डले रहते हैं। एक, दो, तीन, चार, पाँच बुखार हो गया। ऐसे ही समझ लो कि इस thermometer की ऊपर भी एक से लेकर चौदह नंबर डले हुए हैं। आपके भाव कितने-कितने उठते जा रहे हैं? आपके भाव जितने -जितने बढ़ते जाएँगे। भाव बढ़ने का मतलब आपके आत्मा के परिणामों में जितनी-जितनी विशुद्धी बढ़ेगी, उतना- उतना ये thermometer बढ़ता चला जाएगा, गुणस्थान बढ़ता चला जाएगा। यह विशुद्धि कैसे बढ़ती है? जैसे -जैसे कषायों की कमी होती चली जाती है वैसी-वैसी विशुद्धि बढ़ती चली जाती है। विशुद्धि बढ़ेंगी तो गुणस्थान बढ़ेंगे और गुणस्थान बढ़ेंगे तो आपका इस संसार में जो भाव है, वह ऊपर ऊपर का होता चला जाएगा।

चौदह गुण स्थान कौन से हैं?

आचार्यों ने बड़ी कुशलता के साथ में एक से लेकर के चौदह तक के गुणस्थानों को divide किया है। पहला मिथ्यात्व गुणस्थान, दूसरा सासादनगुणस्थान, तीसरा मिश्र गुणस्थान, चौथा गुणस्थान अविरत सम्यग्दृष्टि, पाँचवाँ संयमासंयम, छठवाँ प्रमत्त संयत, सातवाँ अप्रमत्त संयत, आठवाँअपूर्वकरण, नौवाँ अनिवृत्तिकरण, दसवाँ सूक्ष्मसाम्पराय, ग्यारहवाँ उपशांतमोह, बारहवाँ क्षीणमोह, तेरहवाँ सयोग केवली, चौदहवाँ अयोगकेवली। इस तरह ये चौदह गुणस्थान हैं।

शुभ, अशुभ और शुद्ध भाव के अनुसार गुण स्थान

एक से लेकर तीन गुणस्थानों में जीव के जो भाव हैं, वे सभी अशुभ भावों में गिने जाएँगे। उनकी गणना अशुभ भावों में होगी। उन अशुभ भावों के साथ जो जीव परिणमन कर रहे हैं, वे सभी अशुभ आत्मा है।चौथा गुणस्थान अविरत सम्यग्दृष्टि, पाँचवाँ संयमासंयम, छठवाँ प्रमत्त संयत, इन तीन गुणस्थानों में रहने वाले जीव शुभ भाव वाले होंगे। सातवाँ गुणस्थान के दो भाग हो जायेंगे। एक में शुभ भाव वाला होगा और एक में शुद्ध भाव वाला होगा। इसके बाद इन गुणस्थान के ऊपर आठवाँ,नौंवा,दसवाँ,ग्यारवाँ और बारहवाँ, इन छः गुणस्थानों में आत्मा शुद्ध भाव के साथ परिणमन करने वाला हो जायेगा। अब इसके आगे तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में उस आत्मा को, जो शुद्ध रूप में परिणमन किया है, उस शुद्ध का उसे फल मिलेगा। शुद्ध के फलस्वरूप उस आत्मा को केवलज्ञान की प्राप्ति होगी। इस तरह तेरहवाँ और चौदहवाँ गुणस्थान शुद्ध के फलस्वरूप केवल ज्ञान स्वरूप है।

उपयोग के अनुसार गुण स्थान

अब इसी को आत्मा के उपयोग शब्द के साथ में व्याख्यायित किया जाता है। आत्मा का जो परिणाम है, उसी को उपयोग कहा जाता है। आत्मा को क्या बोलते हैं? उपयोग स्वभाव वाला है। उपयोग परिणाम वाला है। अब इन भागों के साथ में उपयोग शब्द लगाओ। एक बन जाएगा अशुभोपयोग। एक हो जाएगा शुभोपयोग और एक हो जाएगा शुद्धोपयोग।

शुभोपयोग, अशुभोपयोग और शुद्धोपयोग के अनुसार गुण स्थान का विभाजन

अशुभोपयोग कब तक रहेगा? एक से लेकर तीसरे गुणस्थान तक। शुभोपयोग कहाँ सेप्रारंभ होगा? चौथे से लेकर छठवें गुणस्थान तक तो शुभोपयोग है ही लेकिन सातवें का भी कुछ अंश शुभोपयोग और कुछ अंश शुद्धोपयोग है। सातवें गुणस्थान तक भी हम शुभोपयोग कह सकते हैं। और फिर सातवें से बारहवें गुणस्थान तक शुद्धोयोग और बारहवें के बाद तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में शुद्धोपयोग का फल केवलज्ञान को प्राप्त कर लेना। यही चौदह गुणस्थानों में इन तीन भाव और इन भावों का फल दिखा दिया जाता है।

अब थोड़ा इस विषय को और समझते हैं। पहले,दूसरे,तीसरे गुणस्थान में जो अशुभोपयोग है तो इस अशुभोपयोग की थोड़ी- थोड़ी हल्की-हल्की समझना। यानि ऊपर-ऊपर अशुभोपयोग कैसा होगा? क्योंकि अशुभोपयोग में जब कमी आएगी तभी तो वह शुभोपयोग बनेगा। अशुभोपयोग ऊपर -ऊपर घटता हुआ होगा। अर्थात पहले से दूसरे में जो अशुभोपयोग होगा, वह कम होगा।दूसरे से तीसरे में और कम हो जाता है।

चौथे में अशुभोपयोग की quality टूट जाती है और शुभोपयोग आ जाता है। अब ये शुभोपयोग ऊपर-ऊपर बढ़ता चला जाता है। शुभोपयोग हमेशा ऊपर-ऊपर के गुणस्थानों में बढ़ते चले जाते है। चौथे से पाँचवेगुणस्थान में शुभोपयोग और अच्छी quality का होगा। पाँचवे से छठवें में शुभोपयोग और अच्छी quality का होगा। छठवें से सातवें गुणस्थान का शुभोपयोग और भी अच्छी quality का होगा। इस तरह शुभोपयोग की सीमा यहाँ तक बन जाती है।

शुद्धोपयोग कहाँ से शुरू होता है?

अब इसके आगे सातवें से शुद्धोपयोग शुरू हो जाता है। सातवें का शुद्धोपयोग कैसा है? यह शुद्धोपयोग की शुरुआत है। आठवें गुणस्थान में शुद्धोपयोग बढ़ेगा। फिर नौवें में, दसवें में, ग्यारहवें में, बारहवें में,शुद्धोपयोग बढ़ता चला जाता है। उस शुद्धोपयोग की जो अंतिम सीमा आई, उससे उसने तेरहवें गुणस्थान प्राप्त कर लिया। अर्थात केवलज्ञान को प्राप्त कर लेता है। चौदहवें गुणस्थान में भी वह केवलज्ञानी है। इसके बीच में क्या अंतर है? इसे आगे बताया जायेगा। उस चौदहवें गुणस्थान के बाद उस जीव को मोक्ष हो जाता है। मोक्ष से पहले सभी जीवों के गुणस्थान एक से लेकर के चौदह में, इन तीन प्रकार के उपयोगों के साथ चलते हैं। इन्हीं को हम तीन प्रकार के भाव कहते हैं या तीन प्रकार के भावों साथ चलते हैं। अगर कोई आपसे पूछे कि चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग होता है तो आप क्या कहेंगे? नहीं होता है। कहेगा कि कहाँ लिखा है तो आप कहना कि प्रवचनसार की जो आचार्य जयसेन महाराज ने टीका की है, उसमें इस बात का पूरा का पूरा खुलासाकिया है।

तारतम्य का क्या अर्थ है?

अब यहाँ पर एक शब्द आता है -'तारतम्य' तरतम से ही तारतम्य बनता है।इसकी बहुत अच्छी व्याख्या कर रहा हूँ जो कभी आपने सुनी नहीं होगी। तरतम शब्द के साथ में तरतम्य शब्द बनता है। आपने हिंदी के कुछ शब्द पढ़े हो तो उसमें ये प्रत्यय लगते हैं। संस्कृत में तर और तम प्रत्यय होते हैं। जब किसी की अपेक्षा के साथ में जब कोई चीज और अच्छी होती है तो उसमें तर लगता है और जब कोई सुपर हो जाती है तो वह तम लग जाता है। अगर आप इसे अपनी इंग्लिश के हिसाब से समझें तो उसमें तीन डिग्रियाँ होती हैं। पहली FIRST DEGREE,दूसरी DEGREE COMPARATIVE और तीसरी DEGREE SUPERLATIVE DEGREE कहलाती है। जैसे किसी चीज को हमने कहा उच्च-उच्चतर-उच्चतम या good - better - best। अर्थात चीज वही है लेकिन वह पहले से कुछ अच्छी हो रही है और फिर और अच्छी हो गई। इसी को संस्कृत में**'तर'**बोलते हैं। **'तर'**दो चीजों के बीच में तुलना के लिए आता है और**'तम'** best के रूप में आता

है। तो इसी तरतम शब्द से तारतम्य शब्द बना है। माने उसी भाव में कुछ थोड़ा और कमतीपना आ गया, अब और कमतीपना आ गया तो ये उसका अशुभपयोग का तरतम भाव कहलायेगा। वह अशुभपयोग का तरतम भाव घटते रूप में होगा और शुभोपयोग का तरतम भाव बढ़ते रूप में होगा और शुद्धोपयोग का तरतम भाव भी बढ़ते हुए रूप में होगा। इसे घटते हुए रूप में लगाना है या बढ़ते हुए रूप में लगाना। ये हमें अपने भाव के अनुसार लगाना पड़ेगा। जैसे good - better- bestहोता है वैसे ही bad- worse - worst होता है। bad- worse - worst, ये तीनोंअशुभोपयोग के साथ लगेंगे क्योंकि वह बुरा है। शुभोपयोग के साथ तो good - better- best, ऐसे ही शुद्धोपयोग के साथ में भी good - better- best लगेगा।

तारतम्य के अर्थ के बारे में भ्रान्ति

कुछ लोग क्या करते हैं? इस तारतम्य शब्द का अर्थ अपने मन से लगा लेते हैं। वो क्या करते हैं? वे कहते हैं तारतम्य का मतलब है कि कहीं पर कोई मुख्यता हो और उसी की वहीं पर गौणता भी हो। इसको तारतम्य कहा जाता है। ये उन लोगों की बात है, जो स्वाध्याय के अर्थों को अपने ढंग से लगाते हैं। वो कहते हैं कि जहाँ पर शुभोपयोग होता है, वहीं पर शुद्धोपयोग भी होता है। तारतम्य शब्द का मतलब उन्होंने मुख्य और गौण की विवक्षा में लगा लिया। मुख्य तो शुभोपयोग है लेकिन गौण रूप से शुद्धोपयोग भी रहता है। जबकि मुख्य और गौण अगर हम लगाएँगे तो फिर क्या होगा? फिर तो अशुभोपयोग में भी हम लगा लेंगे कि अशुभोपयोग मुख्य रूप से अशुभोपयोग है और गौण रूप से वहाँ पर भी शुद्धोपयोग है या शुभोपयोग है। इस तरह तो सारी व्यवस्था ही बिगड़ जाएगी।

आचार्य कहते हैं – यह अर्थ लगाना कदापि उचित नहीं है।

लेकिन लोगों को चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग दिखाने की इतनी जिद है कि वे शब्दों का अर्थ अपने तरह से तोड़ मरोड़ कर इस तरह से लगाते हैं कि वह चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग सिद्ध करना चाहते हैं। अगर कोई पंडित जी प्रवचन में आपको बतायें कि चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग होता है तो आप उन पंडित जी से कहना - पंडित जी थोड़ा सा शास्त्र के अनुरूप बोलो। अपने पंथ के अनुरूप मत बोलो। अपनी धारणा के अनुरूप मत बोलो। जो आचार्यों ने लिखा है उसके अनुसार ही आप बोलो। अगर चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग को भी गौण रूप से मानोगे तो पहले दूसरे गुणस्थान में भी हमें शुभोपयोग को मानना पड़ेगा जो कि अन्यथा भाव हो जाएगा। इसलिए ये जो तरतम भाव है यह इस बात का सूचक है कि पहले-पहले अशुभोपयोग कम, फिर बाद में शुभोपयोग बढ़ता हुआ और फिर शुद्धोपयोग बढ़ता हुआ। इसको बोलते हैं तरतम भाव। आगे की अपेक्षा से पिछले वाला भाव कम और उससे भी पहले वाले भाव की अपेक्षा से वही भाव ज्यादा हो जाता है।

तम और तर भाव

जैसे मान लो पाँचवागुणस्थान है तो पाँचवें गुणस्थान का शुभोपयोग छठवें गुणस्थान की अपेक्षा से तो कम है और चौथे गुणस्थान की अपेक्षा से अधिक है। इसी का नाम है एक की अपेक्षा से तो तर हो गया और वह दूसरे की अपेक्षा से तम हो गया। चौथे गुणस्थान की अपेक्षा से तो तर हो गया और छठवें गुणस्थान की अपेक्षा से भी वह तर हो गया। तम तो और आगे बनेगा। सातवें गुणस्थान का तम बनेगा। एक ही भाव में तरपना भी आ रहा है और तमपना भी आ रहा है। तम किसकी अपेक्षा से हो जाएगा? उसी को हम तीसरे गुणस्थान की अपेक्षा से लेंगे तो वह और अधिक तम हो जायेगा। लेकिन उसको हम अशुभोपयोग के साथ नहीं लेंगे। चौथा,पाँचवाँ,छठा इन गुणस्थानों में तरतम भाव का मतलब है कि एक भाव से दूसरा भाव बढ़ता चला जा रहा है और अगले भाव की अपेक्षा से वह भाव कम होता चला जा रहा है। छठवें गुणस्थान की अपेक्षा से पाँचवाँ कम कहलायेगा और चौथे गुणस्थान की अपेक्षा से पाँचवाँ वाला ज्यादा कहलाएगा। इसी का नाम तरतम भाव समझना चाहिए। तो ऐसे इन भावो का जब आंकलन कर लिया जाता है तब हमें चौदह गुणस्थानों में इन भावों की व्यवस्था समझ में आ जाती है और उसी से ज्ञान होने लग जाता है कि अशुभोपयोग इस जीव के अंदर तब तक रहता है जब तक यह जीव मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानों में रहता है। जब वह सम्यग्दृष्टि हो जाएगा तो उसका उपयोग शुभोपयोग हो जाएगा। ये शुभोपयोग का भाव और शुद्धोपयोग का भाव - यहाँ से धर्म शुरू हो जाता है।

धर्म से परिणत आत्मा कहाँ से होगा?

चौथे गुणस्थान से। क्योंकि ये अविरत सम्यग्दृष्टि भी हुआ तो सम्यग्दर्शन इसके अंदर है इसलिए ये आत्मा धर्म से परिणत हो गया। लेकिन पहले,दूसरे, तीसरे गुणस्थान तक वह अधर्म से परिणत कहलाएगा। अब धर्म के ही आगे दो भेद कियेजाएँगे एक धर्म शुभोपयोग रूप और एक धर्म शुद्धोपयोग रूप। वह धर्म भी कहाँ तक चलेगा। जो धर्म भाव चरित्र रूप भाव है वह बारहवें गुणस्थान तक चलेगा और उस धर्म भाव का जो फल मिलेगा वह केवलज्ञान होगा। तो इस तरह से धर्म की शुरूआत चौथे गुणस्थान से हो जाती है और वह आत्मा धर्म से परिणत हो गया, ऐसा कहने में आ जाता है। इसलिए सम्यग्दर्शन के साथ भी आत्मा धर्म से परिणत होता है और जब वही आत्मा सम्यक चारित्र को ग्रहण कर लेता है तो भी धर्म से परिणत ही कहलाएगा। लेकिन दोनों के धर्म में बहुत अंतर होगा। आगे आगे धर्म और बढ़ता हुआ होगा और गाढ़ा - गाढ़ा होगा। और जब वही गाढ़ा - गाढ़ा होते -होते बिलकुल मथ जाएगा, एक तरह का जैसे हम बोलते हैं कि दूध से मक्खन निकल आना और मक्खन से फिर घी निकल आना। जैसे फिर उस घी का परिणमन हो जाता है वैसे ही इस आत्मा का परिणमन हो जाता है। जैसे घी एक बार शुद्ध हो गया तो फिर वह अशुद्ध नहीं होता है। वस्तुतः जो एक बार घी बन गया वह पुनः फिर दूध नहीं बनता है। इसी तरह से एक बार जो आत्मा शुद्ध आत्मा बन जाता

है, सिद्ध बन जाता है वह पुनः फिर संसार को प्राप्त नहीं होता है। तो यह जो दूध का परिणमन है, इसी से दही बनना है, इसी से मक्खन बनाना है और इसी से घी बनना है।

अशुभोपयोग के परिणाम छूटकर शुभोपयोग में होना सबसे बड़ी उपलब्धि

इसीलिए कहते हैं - जो मिथ्या परिणमन कर रहा है पहले उसको सम्यक परिणमन कराओ। अगर उसे सम्यक परिणमन हो गया तो उसे सम्यग्दर्शन भी हो गया। इसके बाद में चारित्र के माध्यम से उसे मथा जाता है और मथते-मथते जब उसमें मक्खन घी आदि जब अंतिम स्थिति में पहुँच जाता है तो वह पूर्ण रूप से शुद्धता को प्राप्त हो जाता है। ऐसे ही इस जीवात्मा का परिणमन होता है। तो कहाँ पर अपने को लगाना है? कि हमारा आत्मा कम से कम इतना तो उन्नति प्राप्त कर ले कि वह अशुभोपयोग को छोड़कर के शुभोपयोग में आ जाए। हमें इतना पुरुषार्थ तो शुरू कर देना चाहिए। प्रवचनसार पढ़ते-पढ़ते हो सकता है कि आपके अशुभोपयोग के परिणाम छूटकर शुभोपयोग में हो जाए। अगर ऐसा होता है तो बहुत बड़ी उपलब्धि समझना। यही आत्मा की सबसे बड़ी उपलब्धि कहलाती है। बाकी तो सब संसार की उपलब्धियाँ हैं।

आत्मा रहा शुभ जभी शुभ में ढ़लेगा,होता तभी अशुभ तत्पन में ढ़लेगा।
शुद्धत्व से परिणमें जब शुद्ध होता,सदभावशुद्धपन का तब सिद्ध होता।।

शुभतर और शुभतम

चौथे गुणस्थान का उपयोग शुभ है, पाँचवें गुणस्थान का शुभतर और छटवेंगुणस्थान का शुभतम हो गया। सातवें गुण स्थान का उपयोग और अधिक शुभ होने से शुभतम ही कहलाएगा। इसी प्रकार से जब अशुभ उपयोग को बताया जाता है तो पहले स्थान का अशुभ योग अशुभतम कहलायेगा क्योंकि वह तीव्र है।फिर दूसरे गुणस्थान का थोड़ा कम हो गया तो अशुभतर और तीसरे गुणस्थान का केवल अशुभ उपयोग कहलायेगा। इस प्रकार से हम इसमें तरतम व्यवस्था को देख सकते हैं। और जो उत्कृष्टता होती है उसके भी अनेक प्रकार होते हैं। इसलिए आचार्यों ने जो व्यवस्था बताई है, उस व्यवस्था के अनुसार अशुभ उपयोगके गुणस्थान, शुभ उपयोग के गुणस्थान और शुद्ध उपयोग के गुणस्थान, ये अलग अलग विभाजित हो जाते हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए आगे जो कुछ भी आप पढ़ेंगे, उसकी भूमिका इस रूप में याद रखना है।

प्रवचन०६ - पदार्थकास्वरुप (गाथा०१०-०११)

णत्थिविणापरिणामंअत्थोअत्थंविणेहपरिणामो॥
दव्वगुणपज्जयत्थोअत्थोअत्थित्तणिव्वत्तो ॥ १०॥

भाई ! न अर्थ परिणाम बिना कभी हो, औ अर्थ के बिन नहीं परिणाम भी हो।
पर्याय-द्रव्य गुण में स्थित अर्थ होता, अस्तित्व रूप गुण मण्डित अर्थ होता।।

अन्वयार्थ-(**इह**) इस लोक में (**विणापरिणामं**) परिणाम के बिना (**अत्थोणत्थि**) पदार्थ नहीं है (**अत्थंविणेह**) पदार्थ के बिना (**परिणामो**) परिणाम नहीं है (**अत्थो**) पदार्थ (**दव्वगुणपज्जयत्थो**) द्रव्य-गुण पर्याय में रहने वाला और (**अत्थित्तणिव्वत्तो**) अस्तित्व से बना हुआ है।

हमने पिछली गाथा में पढ़ा है कि**आत्मा का परिणमन होता है**। अतः जैसे भाव होंगे, **जैसे परिणाम होंगे, उस तरह से आत्मा परिणमन कर जाता है**। अशुभ योग के साथ अशुभ परिणमन होता है, शुभ उपयोग के साथ शुभ परिणमन होता है और शुद्ध के साथ शुद्ध रूप परिणमन होता है।

परिणमन प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव

इस गाथा में आचार्य यह बता रहे हैं कि ये**परिणमन स्वभाव केवल आत्मा का ही नहीं होता अपितु प्रत्येक द्रव्य का होता है।**यह परिणमन आत्मा में कोई विशेषता आने से नहीं हुआ अपितु परिणमन**प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव है। जो भी द्रव्य है, वह इस परिणमन के बिना कभी भी अपना अस्तित्व नहीं रख सकता है**। अतः किसी भी प्रकार द्रव्य का जो अस्तित्व है, वह इसी परिणमन स्वभाव के कारण से होता है। यदि आपको ऐसा लगे कि ये परिणमन कैसे हो सकता है? अर्थात अशुद्ध आत्मा में परिणमन क्या इतना हो सकता है कि वह अशुद्ध से पूर्ण रूप से शुद्ध हो जाए और आगे भी यदि उसका शुद्ध परिणमन ही रहेगा तो फिर उस शुद्ध आत्मा का परिणाम भी क्या होगा? यानी उसमें भी कुछ परिणमन होगा कि नहीं होगा? तो इसमे कोई आश्चर्य नहीं करना। इसी बात को समझाने के लिए यहाँ आचार्य एक व्यवस्था बताते हैं कि परिणमन प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव है।चाहे वह अशुद्ध द्रव्य हो या शुद्ध।**शुद्ध द्रव्य भी अपने आप में परिणमन करता है।**ऐसा नहीं है कि यदि सिद्ध भगवान शुद्ध रूप में बैठे हैं तो उनकी आत्मा में कोई परिणमन नहीं हो रहा है। वहाँ भी परिणमन हो रहा है।

यहाँ परिणमन का अर्थ है कि कुछ ऐसे परिवर्तन होते हैं,वो पर्याय रूप से उनकी शुद्ध आत्मा में भी होते हैं। लेकिन वह परिणमन ऐसा परिणमन नहीं होता जैसे संसारी जीवों के होता है। जो आत्मा शुद्ध रूप में परिणमन कर चुका है, **वह अपने शुद्ध गुणों और शुद्ध पर्यायों के साथ परिणमन करेगा।** अतः उसकी दशा शुद्ध दशा से कभी भी भिन्न नहीं होगी लेकिन शुद्धता में ही उनका परिणमन चलेगा। क्योंकि परिणमन आत्मा का स्वभाव है और वह स्वभाव क्यों बना हुआ है? वही यहाँ बताया जा रहा है कि कोई भी पदार्थ हो, कोई भी वस्तु हो, वह**परिणमन स्वभाव वाली है।** णत्थि अर्थात नहीं है। अर्थ अर्थात पदार्थ। कोई भी जो पदार्थ है**(ANY SUBSTANCE**), उसको अर्थ से संबोधित किया गया है। परिणामं का अर्थ है परिणाम। अर्थात**उस पदार्थ का जो भी परिणमन या भाव हो रहा है, वह उसकी पर्याय अथवा परिणाम है**। इसका अर्थ है कि जो द्रव्य जिस रूप में परिणत कर रहा है, वही उसकी पर्याय है।

पर्याय के बिना पदार्थ नहीं होता

कल आपके लिए उदाहरण दिया था। आपकी आत्मा में कौन सी पर्याय है। अभी आपकी संसारी आत्मा में मनुष्य पर्याय है। मनुष्य पर्याय छूटेगी तो कौन सी पर्याय आ जाएगी? वह नहीं पता है। विश्वास रखो, आप लोग प्रवचनसार पढ़ रहे हो यानी मनुष्य पर्याय यदि छूटेगी तो नियम से देव पर्याय ही मिलेगी।क्योंकि प्रवचनसार पढ़ते पढ़ते आप लोग सम्यग्दृष्टि हो जाओगे और सम्यग्दृष्टि जीवों को देव पर्याय की ही प्राप्ति होती है। अन्य जो भी पर्याय हैं, नारकी,पशु आदि, ये भी पर्याय हैं। अतः**पर्याय का मतलब हो गया परिणमन।** कोई भी द्रव्य है, आत्मा है, वह आत्मा पर्याय के बिना कभी भी रहता नहीं। वही यहाँ कहा जा रहा है। आत्मा तो हो गया एक अर्थ और उसका जो परिणाम, उसकी जो पर्याय है, वह पर्याय कभी भी बिना अर्थ के नहीं होगी। पर्याय कहीं अलग रख दी और अर्थ**अर्थात पदार्थ कहीं अलग रखा है, ऐसा नहीं होगा। परिणाम के बिना पदार्थ नहीं**होता। मतलब पर्याय के बिना पदार्थ नहीं होता है।**पदार्थ की पहचान पर्याय से होगी।** पर्याय उस पदार्थ से भिन्न नहीं होती है इसलिए पर्याय के बिना पदार्थ नहीं होता है। ये गाथा का इतना अर्थ हुआ।

पदार्थ के बिना पर्याय नहीं होती

फिर आगे कहते है -**अत्थोअत्थंविणेहपरिणामो।** पदार्थ के बिना परिणाम नहीं होता अर्थात पर्याय नहीं होती। पहले बताया है कि पर्याय के बिना पदार्थ नहीं होता। फिर आगे कहते हैं कि पदार्थ के बिना पर्याय नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य पर्याय के बिना कोई आत्मा नहीं होता यानी आप उसके लिए यह कहो कि इसमें यह मनुष्य पर्याय नहीं है तो आत्मा नहीं है, ऐसा तो नहीं कह सकते। मनुष्य पर्याय नहीं है तो कोई दूसरी पर्याय होगी। क्योंकि पर्याय के बिना आत्मा नहीं होगा। संसार दशा में आत्मा की चार पर्याय होती हैं। मनुष्य पर्याय,

देव पर्याय, नारकी पर्याय, पशु पर्याय। अर्थात बिना पर्याय के कभी भी वह आत्मा नहीं होगा। क्या संसार में ऐसा कोई आत्मा दिखता है जो इन चारों पर्यायों में न हो और आत्मा हो? यहाँ संसारी जीव की बात है। अतः इससे यह सिद्ध हो गया कि पर्याय के बिना कोई भी आत्मा नहीं हो सकता है। कोई भी संसारी आत्मा पर्याय के बिना नहीं हो सकता। मतलब संसारी आत्मा होगा तो उसकी कोई न कोई पर्याय जरूर होगी और पर्याय के बिना आत्मा नहीं होगी। अतः आत्मा न कह कर के अगर हम समूचे द्रव्यों के साथ इस सिद्धांत को जोड़ेंगे तो पर्याय के बिना पदार्थ नहीं और पदार्थ के बिना पर्याय नहीं होती। प्रत्येक द्रव्य पुद्गल की पर्याय है। ये सब पुस्तकें, कपड़े, जो कुछ भी हमें भवन आदि दिखाई देते हैं, ये सब क्या हैं? ये सब पुद्गल की पर्याय हैं। तो**इन पर्याय के बिना**पुद्गल**का अस्तित्व नहीं और**पुद्गल**के बिना यह पर्याय नहीं**। वही यहाँ कहा जा रहा है कि परिणाम के बिना अर्थ नहीं और अर्थ के बिना परिणाम नहीं।

अर्थ – द्रव्य, गुण और पर्याय

फिर आगे कहते हैं**दव्वगुणपज्जयत्थोअत्थोअत्थित्तणिवत्तो।**जो अर्थ है, समूचा पदार्थ है, वह तीन चीजों में बना हुआ है।**यह तीन चीजों में स्थित है। द्रव्य, गुण और पर्याय। इन तीनों में जो स्थित है, उसी का नाम अर्थ है।**यहाँ एक बहुत अच्छी और विशेष बात यह है कि पदार्थ या अर्थ जिसे हम कह रहे हैं, वह अर्थ तीन चीजों का समूह है - द्रव्य, गुण और पर्याय।**दुनिया का कोई भी पदार्थ द्रव्य, गुण और पर्याय, इन तीन चीजों में स्थित होता है।**जो इन तीन चीजों में स्थित होगा वही अर्थ कहलायेगा और वह अर्थ ही हमारे ज्ञान का विषय बनेगा। हम जिस किसी भी वस्तु को जानते हैं, देखते हैं, वह सब चीजें इन तीनों रूप होती हैं। द्रव्य, गुण और पर्याय। एक भी कम हो जाएगा तो वो न द्रव्य बचेगा और न पर्याय बचेगी। गुण कम हो गया तो द्रव्य नहीं, पर्याय नहीं। पर्याय के बिना द्रव्य नहीं, गुण भी नहीं ओर द्रव्य के बिना गुण नहीं, पर्याय नहीं। द्रव्य गुण और पर्यायों का आधार होता है। द्रव्य सबसे पहली चीज है। जो द्रव्य होता है, वो गुणों के माध्यम से बनता है। अनेक जो द्रव्य के अंदर गुण हैं, वे गुणो का समूह ही वस्तुतः द्रव्य है। उस गुण का जैसा परिणमन हो रहा होगा या द्रव्य का जैसा परिणमन होगा, वही उसकी पर्याय कहलाती है। तीन चीजें हर पदार्थ में आपको दिखाई देंगी।

द्रव्य, गुण और पर्याय का उदाहरण

सोना सबने देखा होगा। आपके पास में गिट्टी रूप में या किसी ठोस पदार्थ के रूप में जो सोना रखा है, वो आपका द्रव्य ही है। उसके अंदर कुछ गुण होंगे। जैसे कि वह सोना पीला है। जो पीला है, वह उसका गुण है। तो आपने सोने का कौन सा गुण देखा है? पीला। तो पीला उस सोने का क्या हो गया? गुण हो गया। और वह जो रखा है, वो किसी ना किसी रूप में तो रखा ही होगा। कुंडल के रूप में रखा हो अथवा वो कंगना के

रूप में रखा हो या वो किसी चौकोर आकार के रूप में रखा हो, जैसे biscuit आदि के रूप में रखा हो।वो किसी ना किसी रूप में रखा होगा तो वही रूप उसकी पर्याय हो गई। अतः द्रव्य हो गया स्वर्ण, गुण हो गया उसका पीलापन। वैसे तो द्रव्य में बहुत सारे गुण हो सकते हैं लेकिन यहाँ गुणों की पहचान समझने के लिए उदाहरण के लिए एक ही गुण के माध्यम से समझाया जा रहा है। क्या कभी ऐसा भी हो सकता है कि उस सोने का पीलापन अलग निकाल कर के रख दिया जाए ओर सोना अलग रह जाए या उसका पूरा द्रव्य अलग, पीलापन अलग और उसका आकार अलग रख दिया जाए। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि द्रव्य, गुण ओर पर्याय सब स्वभाव से ही एक साथ रहने वाली हैं। यह तो मात्र आपको समझाने के लिए सोने का उदाहरण दिया है। आप किसी अन्य चीज के उदाहरण के माध्यम से इस द्रव्य, गुण और पर्याय को घटित कर सकते हो।

द्रव्य, गुण और पर्याय का एक और उदाहरण

जैसे लकड़ी को आपने जला दिया तो कोयला बन गया और कोयले को भी आपने पीस दिया तो वह राख बन गई। अर्थात जो पुद्गल द्रव्य था, उसका परिणमन तो हो रहा है लेकिन द्रव्य अपने गुण और पर्यायों को नहीं छोड़ रहा है। यानी उस पुद्गल द्रव्य में जो स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण आदि गुण हैं, वो उस लकड़ी के साथ भी थे ओर जब वह कोयला बन गया तब भी वोपुद्गल है और जब वह राख बन जाएगा तब भी वह पुद्गल ही रहेगा।**पर्याय बदलेगी, उसके गुण बदल जाएँगे लेकिन द्रव्य तो वही रहेगा। पुद्गल द्रव्य था और वह भी आगे पुद्गल ही रहेगा**।

आत्मा की पर्याय – स्वभाव पर्याय और विभाव पर्याय

प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव इसी रूप में रहता है – द्रव्य,गुण और पर्याय। इन तीनों में जो स्थित है, उस को अर्थ कहते हैं यानी पदार्थ कहते हैं। अब आप समझ लो कि शरीर भी एक पदार्थ है और आत्मा भी एक पदार्थ है। आत्मा की वह पर्याय होते हुए भी आत्मा की अपनी पर्याय नहीं है।**अपनी पर्याय का मतलब जिसे हम स्वभाव पर्याय कहेंगे, वो आत्मा की अपनी पर्याय होगी। जो दूसरे के साथ बन रही है, वो उसकी विभाव पर्याय।**तो शरीर आत्मा की कैसी पर्याय है? विभाव पर्याय।

इस विभाव पर्याय के साथ में भी यह आत्मा जुड़ा हुआ है। जब वह अपनी इस विभाव पर्याय को छोड़ेगा तो उस समय पर वह आत्मा कैसा होगा? स्वभाव पर्याय वाला होगा। अपने स्वाभाविक गुणों वाला होगा और अपने स्वभावभूत द्रव्य के साथ होगा। तो वो कैसा होगा? वह आत्मा बिलकुल शुद्ध द्रव्य होगा। शुद्ध स्वर्ण की तरह।शुद्ध द्रव्य की तरह कब होगा? जब वह सिद्ध आत्मा के रूप में होगा तब वह आत्मा शुद्ध द्रव्य होगा और

उसके गुण भी सब शुद्ध होंगे और उसकी पर्याय भी शुद्ध होगी। अभी आत्मा कैसा है? अशुद्ध है। अतः वो द्रव्य भी अशुद्ध है,उसके गुण भी अशुद्ध हैं और उसकी पर्याय भी अशुद्ध है। समझ आ रहा है?

भ्रान्ति – आत्मा का जो द्रव्य है वो तो शुद्ध है, मात्र पर्याय ही केवल अशुद्ध है

क्या ऐसा हो जाएगा? पर्याय कहाँ से निकलेगी? द्रव्य से निकलेगी। जैसा द्रव्य होगा, वैसी पर्याय निकलेगी। संसारी आत्मा अशुद्ध आत्मा है तो उस अशुद्ध आत्मा की पर्याय कैसी होगी? अशुद्ध होगी। अतः पर्याय अशुद्ध है। इसका मतलब क्या है? द्रव्य भी अशुद्ध है, गुण भी अशुद्ध है। यदि आपसे कोई कहे कि आपकी आत्मा तो बिलकुल शुद्ध थी, शुद्ध है और शुद्ध रहेगी, मात्र पर्याय ही केवल अशुद्ध है। फिर आप क्या कहोगे? या तो सिद्धांत को बदलना पड़ेगा या फिर जो ऐसा कह रहा है, उसकी बात को कहना पड़ेगा कि भाई ! तुम गलत बोल रहे हो। दो में से एक बात तो बोलनी ही पड़ेगी। अतः जैसा द्रव्य है, वैसा ही गुण है और वैसी ही पर्याय है। शुद्ध द्रव्य के शुद्ध गुण और शुद्ध पर्याय हैं।

भ्रान्ति के निवारण के लिए उदाहरण

अब जब सोना अशुद्ध अवस्था में है, पाषाण के अंदर है, कालिमा से सहित है, न उसमें सोनेपन का पीलापन दिखेगा न सोने का कोई द्रव्य दिखाई देगा। हाँ, उसमें सोने जैसी कोई पर्याय अवश्य दिखाई देगी। कब? जब वह अशुद्ध रूप में होगा तब। तो अशुद्ध अवस्था में उस सोने के अंदर भी हमें अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ दिखाई देंगी। कालिमा से सहित होगा। उसका न वह चोखापन दिखेगा जो पीले रूप में होगा, न उसका हमें स्पर्श करने से ऐसा लगेगा कि यह सोना है और न हमें उसकी कोई भी चीजें बनाने से ऐसा लगेगा कि यह सोना है।**अशुद्ध द्रव्य की पर्याय अशुद्ध होती है। अशुद्ध द्रव्य के गुण भी अशुद्ध रूप परिणमन करते हैं। शुद्ध द्रव्य की पर्याय शुद्ध होती है और उसके गुण भी शुद्ध रूप परिणमन करते हैं।**

भ्रान्ति के निवारण के लिए एक और उदाहरण

जैसे पानी जब तक शुद्ध है, साफ है, उसमें आपको बिलकुल साफ और शुद्ध ही तरंगे दिखाई देंगी। अगर हम उस पानी में कुछ गंदलापन ले आएँ। जैसे कि उसमें कुछ लाल मिला दिया या काला मिला दिया तो हमें उस पानी में उसी प्रकार की तरंगे दिखाई देंगी। पानी का गुण भी वैसा ही हो गया और उसकी जो पर्याय है, वो हमें पानी की बिलकुल वैसी ही दिखाई देगी। जब हमने उसको शुद्ध कर दिया तो वह बिलकुल शुद्ध द्रव्य, शुद्ध गुण और शुद्ध पर्याय दिखाई देगी। आ रहा है समझ में? ऐसा तो नहीं कि पानी ऊपर ऊपर से तो गंदला हो जाता है और भीतर से शुद्ध रहता है? अगर कोई आपसे ऐसा कहेगा तो क्या करोगे? आप उससे बोल सकोगे

कि तुम्हें अभी द्रव्य, गुण और पर्याय का सिद्धांत मालूम नहीं। इतनी हिम्मत कर पाओगे? यदि नहीं कह सकते तो आपके पढ़ने का क्या लाभ? क्योंकि ज्ञान तो वही है जो दृढ़ता के साथ अपना निर्णय रखें और दृढ़ता के साथ ही हर चीज को कह सके और प्रस्तुत कर सके। यदि आपके ज्ञान में दृढ़ता नहीं आएगी तो उसका मतलब है कि आपका द्रव्य गुण पर्याय पर अभी सही विश्वास नहीं हुआ। आपको उसके स्वभाव का सही ज्ञान नहीं हुआ।

तीर्थंकर भगवान पदार्थ के बारे में क्या कहते हैं?

तो यहाँ यही बताया जा रहा है कि द्रव्य गुण और पर्याय में जो स्थित है वह अर्थ है। अर्थात वही समूचा पदार्थ है। और वह**अत्थित्तणिवत्तो**अर्थात अपने अस्तित्व से बना हुआ है।**प्रत्येक पदार्थ अपने अपने अस्तित्व से है, कोई उसको बनाने वाला नहीं है**। भगवान तीर्थंकर यह नहीं कहते हैं कि हमने द्रव्य ऐसा बना दिया इसलिए उसमें द्रव्य, गुण और पर्याय ऐसी दिखाई दे रहे हैं।**तीर्थंकर भगवान में और अन्य भगवान में क्या अंतर है**? वो क्या कहेंगे? **हमने कुछ नहीं बनाया**। प्रत्येक द्रव्य ऐसा ही बना हुआ है।प्रत्येक द्रव्य का परिणमन इसी रूप में चल रहा है। प्रत्येक द्रव्य अपने गुणों के साथ, अपनी पर्यायों के साथ हमेशा बना रहता है।कोई भी द्रव्य के गुणों को हम नष्ट नहीं कर सकते हैं। उसकी पर्यायों को तो हम नष्ट कर सकते हैं लेकिन गुणों को नष्ट नहीं कर सकते। लेकिन एक पर्याय को नष्ट करने के बाद दूसरी पर्याय तो उसमें अवश्य रहेगी। पर्याय के बिना उस द्रव्य का अस्तित्व हो जाए, ऐसा कभी नहीं होगा। किसी न किसी रूप में वह पर्याय रहेगी। शुद्ध जल था, हम उसको गरम कर सकते हैं। गर्म कर दिया तो भाप बन गई। ठंडा कर दिया तो बर्फ बन गई। कुछ ना कुछ रूप में तो वह जल का अस्तित्व अपना बना रहेगा। उसके जो परमाणु हैं, वो किसी न किसी रूप में बने रहेंगे। उनको नष्ट नहीं कर सकते। ऐसा ही जो अपना आत्मा है, वह आत्मा कभी भी नष्ट नहीं होता क्योंकि उसका अपना अस्तित्व है।**अत्थित्तणिवत्तो**अर्थात अस्तित्व से वह रचा हुआ है, बना हुआ है। जो चीज अपने अस्तित्व से बनी है, वह किस रूप होती है? वह द्रव्य गुण और पर्याय रूप होती है। अतः भगवान ने क्या किया? **भगवान ने सब पदार्थों के स्वरूप को केवल देखा और देख कर के हमें बता दिया।**

देखते तो हम और आप भी हैं लेकिन क्या कभी भी द्रव्य और पर्याय के रूप में किसी पदार्थ को देख पाते हैं? यह देखने के लिए भी कुछ पैनी नजर चाहिए। कुछ अलग से ज्ञान चाहिए।**उस ज्ञान का नाम केवलज्ञान होता है जिस केवलज्ञान में द्रव्य, गुण और पर्याय सब कुछ दिखाई देते है।**हम लोगों को तो क्या दिखाई देगा? केवल पर्याय दिखाई देगी। गुण हमें कहाँ दिखाई देते हैं? द्रव्य के लिए तो हम कह देते हैं कि द्रव्य है। परन्तु गुण तो कभी दिखाई देते ही नहीं। जो कुछ भी है, वह एक पर्याय रूप में दिखाई देता हैं। कोई भी पदार्थ है, वह अपने इन द्रव्य, गुण और पर्यायों के साथ परिणमन कर रहा है।भगवान ने उस पदार्थ को बनाया नहीं। केवल जो पदार्थ जैसा संसार में है, उसको उसी रूप में देखा और हमें बता दिया। ये भगवान का काम है। सुन

रहे हो आप लोग? भगवान का काम क्या है? बनाना अथवा केवल जानना और देखना? जो जैसा है, उसको देखना और जानना। सही जानना और सही देखना।

आत्मा में द्रव्य, गुण और पर्याय का परिणमन

हमने कब सोचा कि हमारी आत्मा भी अनेक गुणों का आधार है? हमें कब पता पड़ा कि हमारी आत्मा की ये पर्याय है? जो नष्ट हो जाएगी और फिर दूसरी पर्याय मिल जाएगी। आत्मा अपने गुणों के साथ वैसा ही बना रहेगा। यह हमें कभी अपनी आँखों से देखने में नहीं आ सकता। यह तो जब कोई सर्वज्ञ देखेंगे ओर बताएँगे तो हमारी समझ में आएगा। इसलिए सर्वज्ञ भगवान की सिद्धि हो जाती है कि उन्होंने पदार्थ को जिस सही ढंग से देख कर हमें बताया है, वह पदार्थ हमें वैसा ही अनुभव में आता है। क्या सुन रहे हो? अनुभव करो कि हर पदार्थ द्रव्य, गुण और पर्याय वाला है।**आत्मा की कितनी पर्याय निकलती रहती है? गर्भ में भी वही आत्मा था। जन्म लिया तो भी वही आत्मा है। बड़ा हुआ तो भी वही आत्मा है।और बूढ़ा हो रहा है तब भी वही आत्मा है**। वही है न? कोई अलग अलग तो नहीं बदल जाता है? फिर भी बदलता सा तो दिखाई देता है। पहले बिलकुल छोटा सा था। फिर बड़ा हो गया। फिर और बड़ा हो गया। उसकी वह पर्याय बदलती रहती है। लेकिन उस आत्मा का जो द्रव्य है और उस आत्मा का जो गुण है, वो कभी भी नहीं बदलता। गर्भ में भी वही आत्मा के ज्ञान आदि गुण थे। जन्म के समय पर भी आत्मा के अंदर वही ज्ञान आदि गुण हैं और वही ज्ञान आदि गुण आगे बड़े होकर के भी हैं। लेकिन बस कमती, बढ़ती होते हुए दिखाई देंगे।**ज्ञान उस आत्मा से कभी भी अलग नहीं हो सकता है। क्योंकि अलग हो जाएगा तो उसका संवेदन ही नहीं होगा।**आत्मा का संवेदन स्वयं को किस के माध्यम से होता है? ज्ञान के ही माध्यम से होता है। इसलिए आत्मा, उसका ज्ञान गुण और उसकी जो पर्याय हैं, इन सब में एक साथ परिणमन चलता रहता है और आत्मा इसी के साथ परिणमन करता रहता है। ये परिणमन केवल ऊपर ऊपर नहीं है। ये परिणमन भीतर से ही चल रहा है। किसके साथ चल रहा है? आत्म द्रव्य के साथ चल रहा है। जैसी आत्मा आयु लेकर के आता है, उसी के अनुसार शरीर चलता है। शरीर में गिरावट, उठाव जो कुछ भी आता है, वह उम्र के अनुसार आता चला जाता है। यही उस आत्मा के परिणमन स्वभाव की सबसे बड़ी पहचान है कि आत्मा अपना द्रव्य भी बनाए हुए है और वही द्रव्य अनेक तरह से गुणों के साथ परिणमन भी कर रहा है।**अनेक पर्यायों को छोड़ भी रहा है और ग्रहण भी कर रहा है**। एक पर्याय को छोड़ेगा तो दूसरी पर्याय प्राप्त कर लेगा। बचपन की पर्याय छोड़ दी तो युवावस्था की पर्याय आ गई। युवावस्था की पर्याय भी धीरे धीरे छूट गई तो बुढ़ापे की पर्याय आएगी। बुढ़ापे की पर्याय भी धीरे धीरे छूटेगी तब क्या आएगी? फिर मृत्यु की पर्याय है ही। और वो मृत्यु के माध्यम से पूरा शरीर कभी एक साथ छूट जाएगा। इसके पश्चात नई पर्याय कुछ न कुछ पैदा हो जाएगी। समझ आ रहा है?

सिद्ध भगवान की आत्मा में परिणमन

लेकिन अस्तित्व आत्मा का कभी भी नष्ट नहीं होगा। क्योंकि वह किस रूप है? द्रव्य, गुण और पर्याय रूप है। अब उस परिणमन को हम अपने पुरुषार्थ से, जो अशुद्ध रूप में चल रहा है, उसको हम शुद्ध रूप में ढाल सकते हैं। शुद्ध परिणमन जो सिद्ध आत्मा का हो रहा है, **वह भी एक**परिणमन**है और संसारी आत्माओं का जो**परिणमन**हो रहा है वह भी एक**परिणमन**है।**सिद्ध आत्माओं के अपने ही अंदर अपने ही स्वानुभूत जो गुण होंगे, बस वही उनके गुण उसी व्यवस्था में परिणमन करते रहेंगे। अर्थात उनके अंदर केवल बस प्रति समय एक समयवर्ती पर्याय निकलती रहेगी और उनका परिणमन ज्यों का त्यों, वैसा का वैसा ही बना रहेगा। द्रव्य उनका शुद्ध था, शुद्ध बना रहेगा। गुण भी शुद्ध बने रहेंगे। उनकी पर्याय जो हमें दिखती नहीं है, **उसे अर्थ पर्याय कहते हैं। वह अर्थ पर्याय एक समय वाली होती**है। उस पर्याय के साथ उनका परिणमन निरंतर चलता रहता है। ऐसा नहीं कि एक जड़ समान हो गए, जिसमें कुछ भी नहीं हो रहा है। ऐसा नहीं है। उनमें भी परिणमन हो रहा है। लेकिन वो कैसा होगा? वो अपनी ही मर्यादा में होगा।चूंकि वहाँ पर कोई भी दूसरा द्रव्य नहीं है इसीलिए अन्यथा परिणमन नहीं होगा। स्वभावभूतपरिणमन होगा। समझ में आ रहा है? कुछ लोग पूछते है कि सिद्ध भगवान क्या करते हैं? हर समय उनके अंदर नया नया आनंद है। नया नया ज्ञान है। नई नई पर्याय उत्पन्न होती है। तो वह अपने हर समय में अपने आनंद में स्थित रहते हैं। उन्हें भटकने की जरूरत ही नहीं है। द्रव्य जब शुद्ध हो गया तो वह कैसा होता है? अपने आप में बिलकुल पूर्ण हो जाता है। सोना शुद्ध हो गया तो चमक गया। दर्पण शुद्ध हो गया तो चमक गया। ऐसे ही आत्मा शुद्ध हो गई तब क्या होगी? ऐसी चमकेगी, ऐसी चमकेगी कि तीन लोक के सब पदार्थ उसके अंदर चमकने लग जाते हैं, झलकने लग जाते हैं। विश्वास हो रहा है।

अन्य मत में द्रव्य, गुण और पर्याय।

अगर आत्मा भी इस तरीके से अपने विश्वास में आ जाए और थोड़ी सी झलकने लग जाए तो समझना है कि हमको अपने आत्म तत्व का श्रद्धानहो रहा है। है ना? तो वही श्रद्धान यहाँ पर बताने के लिए कहा जा रहा है। अन्य मत वाले भी होते हैं।सांख्य मत वाले हैं,बौद्ध मत वाले हैं। ये भी पदार्थ को मानते हैं लेकिन द्रव्य ओर पर्याय रूप नहीं मानते हैं।सांख्य मत वाले होते हैं। वो भी पदार्थ को मानते हैं लेकिन वो भी ऐसा कहते हैं कि येजितना भी परिणमन है, वो सब ऊपर ऊपर का रहता है। द्रव्य तो कूटस्थ होता है, द्रव्य में परिणमन नहीं मानते हैं। और एक बौद्ध मत होता है जो कहता है कि हर समय पर द्रव्य भी नया नया हो जाता है।क्षणिक मतको मानने वाले होते हैं कि प्रति समय पर पर्याय नई बन रही है। पर्याय ही नई नहीं बल्कि द्रव्य ही समूचा नष्ट हो गया और समूचा नया द्रव्य उत्पन्न हो गया। उनका यह कहना रहता है।

लेकिन आचार्य कहते हैं द्रव्य कभी भी नष्ट नहीं होता। उससे जुड़ी जो उसकी पर्याय है, बस वही नष्ट होती है और वही उत्पन्न होती है। नया द्रव्य उत्पन्न नहीं हो जाता है। द्रव्य तो वही रहता है। उसका परिणमन पिछले वाले परिणमन के साथ चलता है। अशुभ से शुभ हो सकता है। ऐसा नहीं है कि शुभ आत्मा कोई नया ही उत्पन्न होगा। जो अशुभ गुण वाले हैं, वह अशुभ गुण वाले ही बने रहेंगे या जो शुभ गुण वाले हैं, वह शुभ गुण वाले ही बने रहेंगे। ऐसा नहीं है।**जो आत्मा अशुभोपयोग के साथ है, वही पुरुषार्थ करके शुभोपयोगी हो जाता है और वही पुरुषार्थ से शुद्धोपयोगी भी हो जाता है।**जैसा वह परिणाम करेगा, भाव करेगा, वह उसी रूप में ढलता चला जाता है।

धम्मेणपरिणदप्पाअप्पाजदिसुद्धसंपजोगजुदो।
पावदिणिव्वाणसुहंसुहोवजुत्तो व सग्गसुहं॥ ११॥

शुद्धोपयोग पथ पे मुनि हो खड़ा हो, चारित्र रूप निजधर्मन में ढ़ला हो।
पाता विमोक्ष सुख, पैदिवि योग पाता, जो धर्म रूप शुभ ही उपयोग पाता।।

अन्वयार्थ-(**धम्मेणपरिणदप्पा**) धर्म से परिणमित स्वरूप वाला (**अप्पा**) आत्मा (**जदि**)। यदि (**सुद्धसंपजोगजुदो**) शुद्ध उपयोग में युक्त हो तो (**णिव्वाणसुहं**) मोक्ष सुख को (**पावदि**) प्राप्त करता है (**सुहोवजुत्तो व**) और यदि शुभोपयोग वाला हो तो (**सग्गसुहं**) स्वर्ग के सुख को प्राप्त करता है।

पिछली गाथा में तो द्रव्य, गुण और पर्याय की बात थी। थोड़ा सा आपको ऐसा लग रहा था कि जैसे की बहुत कुछ नीरस जैसा चल रहा हो। जो अपने काम का हो, अपने भावो में समझ में आये, वो विषय पुनः आ गया। लेकिन ध्यान रखिए कि वो भी जानना जरूरी है। क्योंकि जब तक आप द्रव्य, गुण और पर्याय के साथ में पदार्थ को नहीं जानेंगे, आत्मा को नहीं जानेंगे तब तक आपको ऐसा ही समझ में आएगा कि आत्मा तो मात्र एक अदृश्य शक्ति की तरह रहती है, तब तक ये जीवन रहता है और जब वह शक्ति उसमें से निकल जाती है तो जीवन समाप्त हो जाता है। समझ में आ रहा है? लोग ऐसा ही मानते हैं और जब तक ऐसा मानेंगे तब तक वह मिथ्या दृष्टि बने रहेंगे। क्योंकि मिथ्याश्रद्धान, मिथ्याबुद्धि चल रही है। तो वह शक्ति जो है, अपने आप में उसके गुणों की शक्ति है। वह शक्ति अपने अंदर द्रव्य, गुण और पर्याय, तीनों को समाहित किये है। ये जब अपनी श्रद्धा का विषय बनता है तब आगे समझ में आता है।

गाथा का अर्थ

धम्मेणपरिणप्पाधर्म से परिणत हुआ आत्मा। धर्म से परिणत स्वरूप वाला या धर्म से परिणत हुआ। अप्पा अर्थात आत्मा। आत्मा शब्द का प्रयोग हम वहाँ पर भी करते हैं जहाँ पर हम किसी वस्तु के स्वरूप को बताने वाले होते हैं। जैसे यदि हम कहे कि यह धनात्मा है तो यहाँ धनात्मा का मतलब - धन स्वरूप वाला है।**गुणात्मा**अर्थात गुण स्वरूप वाला है।हमने कहा ये कंगाल आत्मा है। मतलब कंगाल स्वरूप वाला है। हम उसकी आत्मा को कंगाल नहीं कर रहे हैं। उसका स्वरूप बता रहे हैं कि वह कैसा है? कंगाल है।अतः कई बार आत्मा शब्द का जो प्रयोग होता है वह स्वरूप के साथ होता है। वह उस स्वरूप है।वही यहाँ पर कहा जा रहा है कि आत्मा कैसा है? परिणत स्वरूप है या धर्म से परिणत स्वरूप वाला।**अप्पा**अर्थात आत्मा, जदि अर्थात यदि,**सुद्धसंपजोगजुदो**अर्थात अगर वह शुद्ध समप्योग से युक्त है,पावदि अर्थात प्राप्त करता है। अर्थात उसका उपयोग यदि शुद्ध है तो वह**णिव्वाणसुहं**अर्थात निर्वाण के सुख को प्राप्त करता है। अतः यहाँ तक यह अर्थ हो गया कि धर्म से परिणत हुआ आत्मा यदि शुद्ध समप्योग से युक्त है तो निर्वाण सुख को प्राप्त करता है। यदि वही शुभोपयोग से युक्त है,तो वह**सग्गसुहं**अर्थात स्वर्ग सुख को प्राप्त करता है। अतः यहाँ पर दो मुख्य बात बताई है। एक निर्वाण सुख की प्राप्ति के लिए और एक स्वर्ग सुख की प्राप्ति के लिए। स्वर्ग सुख की प्राप्ति किससे करता है? **जो शुभोपयोग से युक्त होता है, वह स्वर्ग सुख प्राप्त करता है। और जो शुद्धोपयोग से युक्त होता है तो वह निर्वाण सुख प्राप्त करता है और वह आत्मा धर्म से परिणत स्वरूप होता है**। देखो ! ये गाथा बहुत विशेष है। गाथा के अर्थ को पहले समझो।

शुभोपयोग की भ्रान्ति

कुछ लोग क्या बोलते हैं किधर्म तो केवल शुद्धोपयोग ही है। उनके अनुसार शुभोपयोग कोई धर्म नहीं है। सुन रहे हो आप लोग? ये बहुत बड़े बड़े पंडित हो गए दुनिया मे और आज भी यही पट्टी पढ़ाई जाती है कि शुभोपयोग धर्म नहीं है। धर्म तो क्या है? शुद्धोपयोग ही है। इस गाथा को समझो कि यहाँ धर्म से परिणत स्वरूप आत्मा। क्या कहा जा रहा है। धर्म से परिणत हुआ जो आत्मा है उसी की स्थिति बताई जा रही है। तो वो आत्मा कैसा है? धर्म से परिणत हुआ है। देखो, लोग न प्राकृत जानते हैं और न संस्कृत जानते हैं। एक बार कोई पंडित अगर गलती कर जाता है तो उसी गलती को आगे सब ही करते रहते हैं। इसलिए आपको अलग से बताता हूँ कि इसको समझने की कोशिश करो। इसी गाथा से इतना बड़ा अर्थ निकल कर आता है कि जो लोग कहते हैं कि शुभोपयोग नहीं शुद्धोपयोग ही धर्म है। जो लोग ऐसा मानते हैं, उनको समझाने के लिए कि**धर्म से परिणत स्वरूप आत्मा यदि। यदि शब्द दिया है। आत्मा पहले किससे परिणमन कर रहा है? धर्म से।**समझ आ रहा है? **और उसी की स्थिति बताई जा रही है**इस गाथा में कि वही धर्म से परिणत हुआ आत्मा यदि शुद्धोपयोग से युक्त होता है तो निर्वाण सुख की प्राप्ति करता है और यदि शुभोपयोग से युक्त होता है तो स्वर्ग की प्राप्त करता है। आत्मा वही है, जिसे पहले कहा था। आचार्य कुंदकुंद देव कोई भी बात बहुत

गहरे अर्थों में कहते हैं। जिसे हमने पहले भी कहा था, जब वीतरागचारित्र और सरागचारित्र की बात आई थी। उस गाथा में भी यही बताया था। **देवासुरमणुयरायविहवेहिं**।वहाँ भी आचार्य दोनों की ही अपेक्षा बात कर रहे थे कि आत्मा निर्वाण सुख को प्राप्त करता है लेकिन वह देव आदि के वैभवों के साथ करता है।**अर्थात वहाँ पर भी उनकी दृष्टि में क्या है? एक शुद्धोपयोग रूप धर्म है और एक शुभोपयोग रूप धर्म है।**जो शुभोपयोग रूप धर्म है, वह देव आदि के वैभव को देने वाला है। स्वर्ग आदि के सुख को देने वाला है। और जो शुद्धोपयोग रूप धर्म है, वह आत्मा के लिए निर्वाण सुख को देने वाला है। केवलज्ञान प्राप्त कराने वाला है। अर्थात वो धर्म को ही दोनों रूपों में लेकर चल रहे हैं।

शुभोपयोग और शुद्धोपयोग

वीतरागचारित्र रूप भी धर्म है और सरागचारित्र रूप भी धर्म है। केवल वीतरागवीतराग धर्म कहने वाले केवल वीतराग धर्म को मानते हैं। सराग धर्म को धर्म ही नहीं मानते हैं।जबकि आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी यहाँ दोनों बातें साथ में लेकर चल रहे हैं। पिछली गाथाओं को देखो और इस गाथा को भी देखो तो यहाँ पर भीवीतरागचारित्र कहो या शुद्धोपयोग कहो या निश्चय धर्म कहो या निश्चय रत्नत्रय कहो, ये सब एक ही बात है।इसी प्रकार से सरागचारित्र कहो, शुभोपयोग कहो, व्यवहार रत्नत्रय कहो या व्यवहार धर्म कहो, यह एक ही बात है।ये दोनों बातें एक साथ चलती रहती हैं। मुख्य और गौण के माध्यम से इन दोनों में परिणमन होता रहता है।योग्यता के अनुसार अथवा भूमिका के अनुसार, जहाँ जैसी भी भूमिका होगी।ये ग्रंथ साधुओं के लिए ही मुख्य रूप से होते हैं। क्योंकि उनकी भूमिका में दोनों बातें आती रहती है। शुद्धोपयोग भी ओर शुभोपयोग भी। जब वह कोई भी प्रवृत्ति करते हैं, कोई धर्म आराधना करते हैं, उपदेश दे रहे होते हैं, स्वाध्याय करते हैं या अन्य कुछ करते हैं, उस समय उनका शुभोपयोग रूप धर्म होता है।**जिस समय सब प्रवृत्तियाँ छोड़कर केवल निर्विकल्प आत्म ध्यान में लीन होते हैं तो वह उनका शुद्धोपयोग रूप धर्म होता है।**अतः ये मुख्य रूप से दोनों ही उनके अंदर घटित होती है। इसीलिए कल बताया था कि सातवाँ गुणस्थानशुभोपयोग के साथ भी होता है और सातवाँ गुणस्थानशुद्धोपयोग के साथ भी होता है और छठवाँ गुणस्थान होगा तो वोशुभोपयोग ही होगा। समझ आ रहा है आप को? इसलिए जब तक छठवें गुणस्थान तक की भूमिका है अर्थात चौथा, पाँचवाँ और छठा तब तक तो शुभोपयोग है और**जब सातवें गुणस्थान की भूमिका आ जाएगी तो उसमें जब प्रवृत्ति की स्थिति होगी तो शुभोपयोग और जब बिल्कुल ध्यानात्मक स्थिति होगी तो शुद्धोपयोग होता है।**उसके आगे के सब गुणस्थान के बारे में बताया था कि बारहवें गुणस्थान तक वह शुद्धोपयोग की पूर्णता होती है और फिर उसके बाद में उस शुद्धोपयोग का फल, जो केवलज्ञान के रूप में मिलता है, वह तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में उसका फल पाता है।

शुभोपयोग और शुद्धोपयोग – दोनों चारित्र धर्म हैं। भ्रान्ति और निवारण

इस व्यवस्था के अनुसार अगर आप देखेंगे तो अपने आप आचार्य कुन्दकुन्द देव के भावों से सिद्ध होता है कि शुभ और शुद्ध परिणाम, दोनों ही धर्म रूप हैं। दोनों ही चारित्र की संज्ञा पाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि शुभोपयोग के साथ चारित्र नहीं होता। चारित्र तो बस शुद्धोपयोग है।धर्म तो मात्र वीतरागता ही है। शुभोपयोग का नाम चारित्र नहीं मानते हैं। समझ में आ रहा है? जब आप इन ग्रंथों को पढ़ेंगे, तबस्वयं अमृतचन्द्र जी महाराज कीएक टीका है। जो सबसे प्राचीन और पुरानी टीका मानी जाती है। उसमें भी वो लिखते हैं –**चारित्र के संपर्क का सद्भाव होने से यह शुभोपयोग और शुद्धोपयोग दोनों धर्म हैं।**यह उनकी भाषा है। अर्थात शुभोपयोग में भी चारित्र का संपर्क है या चारित्र है और शुद्धोपयोग में भी चारित्र। यदि ऐसा नहीं होगा तब तो बहुत परेशानी हो जाएगी। क्योंकि मुनिराज जब तक ध्यान में बैठे हैं तब तक तो चारित्रवान हैं और जैसे ही ध्यान से बाहर आये अथवा बोलने लगे हैं या स्वाध्याय करने लगे अथवा विहार करने लगे हैं या फिर वंदना करने लगे हैं तब चारित्र ही छूट गया। अर्थात उपयोग में आ गए तो उनको चारित्र वाला ही नहीं कह सकते हैं। अर्थात अब चारित्र ही नहीं रहा। फिर तो कितनी बड़ी विडम्बना हो जाएगी। अतःआचार्य कहते हैं – ऐसा नहीं होता है। शुभोपयोग के साथ भी चारित्र होता है और शुद्धोपयोग के साथ भी चारित्र होता है। जब शुभोपयोग के साथ जो चारित्र होगा वो क्या कहलाएगा? सरागचारित्र। औरशुद्धोपयोग के साथ होगा तो क्या कहलायेगा? वीतरागचारित्र।अब तो तुम तो रट लो बस। दिल्ली के लोग ज्ञानी बन जाएँगे तो दुनिया के लोग अपने आप ज्ञानी बन जाएँगे। ये बातें और ये फर्क जब आपकी समझ में आ जायेगा तो फिर आगे कहीं किसी प्रकार की कोई समस्या दिखाई नहीं देगी।

बाहरवेंगुणस्थान के शुद्धोपयोग से निर्वाण सुख

अब देखो ! शुद्धोपयोग से क्या कहा जा रहा है? निर्वाण सुख की प्राप्ति होती है। अर्थात वह कौन सा शुद्धोपयोग है जो हमारे लिए निर्वाण सुख देगा। निर्वाण सुख तो ठीक है, बाद में मिलेगा। पहले तो केवलज्ञान होगा।**तो शुद्धोपयोग का फल पहले केवलज्ञान होना चाहिए।**केवलज्ञान हो गया तोसमझ लो कि निर्वाण हो गया। आधा निर्वाण तो हो ही गया। तो यहाँ पर निर्वाण सुख या अतींद्रिय सुख अथवा अनंत सुख, ये सब हमें किससे मिलेगा? **शुद्धोपयोग से मिलेगा। परन्तु कौन से शुद्धोपयोग से मिलेगा? अब यदि सातवें गुणस्थान से भी शुद्धोपयोग प्रारम्भ हो जाता है तो क्या सातवें गुणस्थान के शुद्धोपयोग से निर्वाण मिल सकता है? नहीं मिलेगा।**क्योंकि सातवें गुणस्थान में जिसका मरण होगा वह नियम से स्वर्ग में देव बनेगा। अतः सातवेगुणस्थान का शुद्धोपयोग भी है, आठवें गुणस्थान का शुद्दोपयोग भी है परन्तु ये अधूरे शुद्धोपयोग वाले हैं। यहाँ आचार्य जिस शुद्धोपयोग की बात कर रहे हैं, वो कौन सा शुद्धोपयोग है? बारहवें गुणस्थान का। अंतिम पर जो शुद्धोपयोग है, वहीं केवलज्ञान के सुख को प्राप्त कराने वाला है। वही शुद्धोपयोगअतीन्द्रिय सुख

को प्राप्त कराने वाला है। अतः उसका यह अर्थ निकलेगा कि मात्र बारहवें गुणस्थान का शुद्धोपयोग ही निर्वाण सुख देगा। ग्यारहवें का भी नहीं। क्योंकि ग्यारहवें गुणस्थान में भी मरण हो जाता है और वहाँ पर भी आयु पूर्ण हो जाती है तो तुरंत ही अगली पर्याय में वह देव बन जाता है। और वहाँ पर उसको शुद्धोपयोग का फल ना मिल करके तो उसे क्या मिलता है? स्वर्ग सुख का फल मिलता है।

आचार्य कुन्दकुन्द देव की दृष्टि इतनी गहरी है कि हम अगर उनके हिसाब से समझें तो**जब तक वह बारहवें गुणस्थान का शुद्धोपयोग नहीं होता तब तक वह उनकी दृष्टि में शुभोपयोग जैसा ही है क्योंकि वह स्वर्ग सुख दिला रहा है।**अब ग्यारहवें गुणस्थान में मरण होता है तो क्या मिलता है? स्वर्ग मिलता है। शुभोपयोग हो गया। अब समझ लो। अब ध्यान में, श्रेणी में भी शुभोपयोग मानना पड़ेगा। यदि आचार्य कुंदकुंद देव की दृष्टि से देखो। यह विवक्षा हैं। हमें समझना है कि शुद्धोपयोग वहाँ पर मुख्य है ओर शुभोपयोगवहा पर गौण है। समझ में आ रहा है? लेकिन फल तो उसका स्वर्ग सुख है। और जो शुद्धोपयोग शुरू हो रहा है, वह सातवें गुणस्थान से शुरू हो रहा है। उससे पहले तो उसकी शुरुआत ही नहीं है। उससे पहले क्या है? वह केवल शुभोपयोग ही है। और उस शुभोपयोग के साथ में किसी के लिए भी कभी मरण होगा तो नियम से स्वर्ग सुख ही मिलेगा।आठवें गुणस्थान वाला, नोवेंगुणस्थान वाला और दसवें गुणस्थान वाला दोनों प्रकार का होता है। उपशम श्रेणी वाला भी होता है और क्षपक श्रेणी वाला भी होता है। तो अगर वोक्षपक श्रेणी वाला होगा तब तो उसका शुद्धोपयोगकेवलज्ञान के लिए कारण बन जाएगा लेकिन उपशम श्रेणी वाला होगा तो नियम से वह पुनः गिरेगा ओर शुभोपयोग में आ जाएगा।इसलिए अभी यह ध्यान रखने की जरूरत है कि वास्तव में वीतरागचारित्र जैसा कल बताया था, वह कब घटित होता है? जब सराग दशा नहीं रहती। क्योंकि दसवें गुणस्थान तक तो सराग दशा है। और जहाँ तक सराग दशा का भाव है तब तक भी उसको शुभोपयोग कहा जा सकता है। समझ में आ रहा है?

<u>भ्रान्ति – शुद्धोपयोग चौथे गुण स्थान में होता है</u>

शुद्धोपयोग इतना हल्का नहीं है जितना लोगों ने बना रखा है। लोग तो चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग की बात करते हैं। समझ आ रहा है? यदि इस शुद्धोपयोग से यदि निर्वाण मिल जाएगा तो फिर क्या होगा? फिर तो घर में ही निर्वाण हो जाएगा। मुनि बनने की जरूरत ही क्या पड़ेगी। आचार्य कहते हैं – आत्मा तो तभी देखेगी जब आप बिलकुल अपने जो इंद्रिय ज्ञान है, उससे छूट जायेंगे और अतीन्द्रिय ज्ञान में परिणमन करेंगे। तभी आपको आत्मा प्रत्यक्ष दिखेगी। उससे पहले किसी को आत्मा नहीं दिखती है। और जो कहता है कि आत्मा दिखती है तोसमझना मूर्ख बना रहा है। समझ में आ रहा है? क्योंकि आत्मा सूक्ष्म द्रव्य है। सूक्ष्म तत्व है। वह अगर घर में ही दिखने लगेगी तो फिर उसको देखने के लिए फिर केवलज्ञान की जरूरत ही क्या पड़ेगी। आत्मा तो ऐसा अमूर्त पदार्थ है कि वह तो तभी दिखेगा जब केवलज्ञान होगा। उससे पहले तो बस आत्मा का

केवल हमें अनुभव अपने स्वयं संवेदन से जो होता है, वह भी उतना ही होगा जितना हम अपनी कषायों से जुड़कर अनुभव कर सकते हैं। क्योंकि आत्मा कषायों से रहित हो नहीं हो गया तो वह तो इतना ही अनुभव होगा कि बस मैं आत्मा हूँ।वह अनुभव भी न कह करके, उसे श्रद्धा और ज्ञान ही कहेंगे। जो हमें यह श्रद्धा हो जाता है कि हाँ मैं आत्मा हूँ, केवल शरीर नहीं हूँ। उसी को आप कहे कि आत्मा दिख रहा है, ये सब बहकाने वाली बातें है। आ रहा है समझ में?

<u>आत्मा को केवलज्ञानी के अलावा और कोई नहीं देख सकता है।</u>

मति और श्रुतज्ञान में कभी आत्मा नहीं दिखती है। अवधि ज्ञान में भी नहीं दिखती है। मनःपर्यय ज्ञान में भी नहीं दिखती है।**केवलज्ञान के अलावा किसी ज्ञान में आत्मा नहीं दिखती है।**आ रहा है समझ में? ध्यान लगा रहे हैं तो हम आत्मा का श्रद्धान कर रहे हैं। आत्मा देख रहे हैं तो आँखों से देख रहे हो या मन से देख रहे हो? किससे देख रहे हो? मन से तो दिख ही नहीं सकती आत्मा। क्योंकि मन तो मूर्तिक द्रव्य है। आपके पास मति ज्ञान है, श्रुत ज्ञान है परन्तु इन ज्ञानों का उपयोग आत्मा को देखने के लिए ही नहीं है। केवलज्ञान के अलावा और कोई ज्ञान आत्मा को देख ही नहीं सकता। अतः ये सब बातें केवल अपना group बढ़ाने के लिए होती हैं और कुछ नहीं हैं।**सिद्धांतों से इनका कोई लेना देना नहीं है।**अतः इस बात को समझो कि आत्मा का जो शुद्धोपयोग भाव है, वो आचार्य कुन्दकुन्द देव की दृष्टि में दसवें गुणस्थान के बाद बनने वाला बारहवें गुणस्थान का भाव है। तभी वह निर्वाण सुख को दे रहा है। अन्यथा वह स्वर्ग सुख का कारण बन जाता है। तो ये कहलाती है - एक गहरी विवक्षा सिद्धांत की और अध्यात्म की।

<u>शुद्धोपयोग का प्रारम्भ सातवें गुण स्थान और अंत बारहवें गुणस्थान</u>

मुख्य व गौण पक्षमें जब हम देखते हैं तो आचार्यों ने सातवें गुणस्थान से शुद्धोपयोग प्रारंभ तो किया है लेकिन उसका अंत बारहवें गुणस्थान पर ही किया है। तो बारहवें गुणस्थान पर हीशुद्ध उपयोग की पूर्णता है। वही पूर्णता की विवक्षा मेंयहाँ पर कहा गया है कि वह निर्वाण सुख को देने वाला है। समझ में आ रहा है? और जो पूर्ण नहीं है, वह स्वर्ग सुख देने वाला है। तो जोनीचे वाला शुद्धोपयोग है, उसको भी हम शुभोपयोग कह सकते हैं।आचार्य कुंदकुंद देव की दृष्टि से। ऐसा कहने में कोई बाधा नहीं आती है। ग्यारहवें तक ही मरण होता है। वहीं तक ही नीचे श्रेणी से गिरना होता है। बारहवें वाले को तो नियम से केवलज्ञान की प्राप्ति एक अन्तरमुहर्त में होती ही है क्योंकि वोक्षीणमोहगुणस्थान है।जैसे ही वह जीव मोह नष्ट कर लेगा, तुरंत ही ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय, चारों कर्मों का नाश उसी गुणस्थान के अंदर होकर, वोकेवलज्ञान की प्राप्ति कर लेगा।तो स्वर्ग सुख किसका फल है? शुभोपयोग का।सातवें गुणस्थान में जो किंचित शुद्धोपयोग होगा, वह हमारे लिए मरण होते हीशुभोपयोग में बदल जायेगा। मरण के समय पर वह इस तरीके से परिणाम होगा कि वह आत्मा काध्यान रूप परिणाम छूट कर, वह अन्य परिणाम रूप हो जाएगा। और उसी समय पर वह

शुभोपयोग के फल से स्वर्ग सुख की प्राप्ति करेगा। समझ आ रहा है? अतः वर्तमान में शुभोपयोग भी बहुत बड़ा धर्म है। शुभोपयोग को यहाँ पर धर्म इसी गाथा के माध्यम से कहा गया है।इस गाथा को बार बार पढ़ो, बार बार इसका अर्थ समझो और बार बार इसका स्मरण करो। तब आपको समझ में आएगा कि इसमें कितना बड़ा भाव लिखा हुआ है। अतः शुभोपयोग भी धर्म है, इस बात को स्वीकार करना और शुद्धोपयोग भी धर्म है, यह भी स्वीकार करना। एक धर्म हमें निर्वाण सुख को देता है तो एक धर्म हमें स्वर्ग सुख को देता है। इसीलिए बहुत अच्छी गाथा है।

प्रवचन०७ – अशुभोपयोगकाफल,निर्वाणकास्वरूप (गाथा०१२-०१३)

असुहोदयेणआदाकुणरोतिरियोभवीयणेरइयो।
दुक्खसहस्सेहिं सदा अभिंधुदोभवदिअच्चंतं ॥ १२ ॥

आत्मा मनो अशुभ ही उपयोग ढ़ोता, तिर्यंचनारककुमानवहोय रोता।
लाखों प्रकार दुःख से फलतः घिरेगा, होता दुःखी सुचिर औ भव में फिरेगा।।

अन्वयार्थ-(**असुहोदयेण**) अशुभ उदय से (**आदा**) आत्मा (**कुणरो**) कुमनुष्य (**तिरियो**) तिर्यंच (**णेरइयो**) और नारकी (**भवीय**) होकर (**दुक्खसहस्सेहिं**) हजारों दुःखों से (**सदा अभिंधुदो**) सदा पीड़ित होता हुआ (**अच्चंतंभवदि**) अत्यन्त भ्रमण करता है।

उपयोग आत्मा का स्वभाव है। उस उपयोग के माध्यम से जो आत्मा में शुद्धता और अशुद्धता का निरूपण किया जाता है, उसके लिए भी जो कारणभूतवस्तुएँ हैं, वो भी इस ग्रंथ में बताई जाएँगी। जो उन उपयोगों का फल मिलता है, वो भी इस ग्रंथ में बताया जाएगा। अभी फल बताया जा रहा है। कल आपने सुना होगा शुद्धोपयोग का फल निर्वाण होता है ओर शुभोपयोग का फल स्वर्ग सुख होता है। आज बताते हैं कि अशुभोपयोग का फल क्या होता है?

पहले हमें आचार्य देव फल बता रहे हैं - तीनों उपयोगों का। अक्सर क्या होता है कि पहले हमें कोई भी बात बताई जाती है तो पहले हमें उसका लक्षण बताया जाता है। बाद में उसका फल बताया जाता है। लेकिन यहां पर**आचार्य कुंदकुंद देव पहले फल बता रहे हैं और लक्षण बाद में बताएँगे**। क्यों बता रहे हैं फल? पहले फल बता रहे हैं क्योंकि फल देखकर के ही व्यक्ति प्रवृत्ति करता है कि हमें किससे क्या मिलेगा? अतः यहां आप कह रहे हो कि तीन प्रकार के उपयोग हैं तो हमें यह भी बताओ कि शुद्धोपयोग के फल से क्या मिलेगा? शुभोपयोग के फल से क्या मिलेगा? अशुभोपयोग के फल से क्या मिलेगा? पहले जब फल हमारी समझ में आ जाएगा तब हम सोचेंगे कि हाँ हमें भी अपने उपयोग को divert करना चाहिए। यानी बदलना चाहिए। अतः यही उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए यहां पर सबसे पहले यह फल बताया जा रहा है कि असुहोदयेण, अशुभ के उदय से। आदा अर्थात आत्मा। क्या होता है? **कुणरो**, कुणरो का मतलब कु-मनुष्य होता है। यानि जो बुरा होता है उसके साथ में अधिकतर कु शब्द का प्रयोग किया जाता है। तो इसी प्रकार से यहाँ पर नर शब्द के साथ में कु का प्रयोग किया। जो बुरा मनुष्य होता है, किसी भी प्रकार से दुखी, दरिद्र और परेशान रहने वाला, ये कुनर कहलाता है।**तिरियो**अर्थात तिर्यंच बनता है। भवीय, होकर।**णेरडयो**अर्थात नारकी भी हो

जाता है।**दुक्खसहस्सेहिं सदा**अर्थात हजारों दुखों के साथ सदा**अभिंधुदो**अर्थात पीड़ित रहता है।**अच्चंतं**अर्थात अत्यंत रूप से वह इस प्रकार से पीड़ित रहता है ओर इन इनगतियों में भवदि अर्थात भ्रमण करता रहता है। यह किसका फल है? यह अशुभोपयोग का फल है। एक बहुत अच्छी बात यही जानने योग्य है कि जब आचार्य कुन्दकुन्द देव ने कल हमको शुद्धोपयोग और शुभोपयोग का फल बताया था तो वहां पर उन दोनों उपयोग के साथ में धर्म शब्द का प्रयोग किया था।**धम्मेणपरिणदप्पाअप्पा**अर्थात धर्म से परिणत स्वरूप अप्पा अर्थात आत्मा।

अशुभोपयोग का फल

शुद्धोपयोग और शुभोपयोग, दोनों को धर्म कहा और यहां अशुभोपयोग के लिए तो एक अलग गाथा कही गई है। उसे अलग से देकर उसका फल बताया है। इसकी टीका में भी सभी आचार्य कहते हैं कि शुद्धोपयोग और शुभोपयोग के साथ तो चारित्र का संपर्क होता है लेकिन**अशुभोपयोग के साथ किसी भी रूप में चारित्र होताही नहीं**। अतः अशुभोपयोग के साथ में न चरित्र होगा, न उसके पास में सम्यग्दर्शन होगा, न सम्यग्ज्ञान होगा। इसलिए उस अशुभोपयोग के फल से वह, अशुभ जो पर्याय हैं, दुःख रूप जो पर्याय है, इन पर्यायों में ही जाता है और इस फल को वह वहाँ पर प्राप्त करता है।

अशुभोपयोग धर्म नहीं है

इसलिए ये जानने योग्य है कि शुभोपयोग को तो धर्म कहा जाता है लेकिन**अशुभोपयोग को धर्म कदापि नहीं कहा जाता**। शुद्धोपयोग भी धर्म है, शुभोपयोग भी धर्म है लेकिन अशुभोपयोग बिल्कुल भी धर्म नहीं है। अशुभोपयोग के साथ तो अधर्म ही जुड़ेगा। उसमें धर्म का संपर्क नहीं है। उसमें किंचित मात्र भी चारित्र का संपर्क नहीं है। ऐसे उस अशुभोपयोग का यह फल बताया है।

शुभोपयोग के फल से निर्वाण सुख नहीं

जब टीका ग्रंथों को हम पढ़ते हैं तो आचार्य अमृतचंद महाराज हुए हैं, जिन्होंने सबसे अच्छी और सबसे बड़ी टीका, सबसे प्रथम टीका लिखी है। वो भी इसी बात को कहते हैं। लेकिन उनकी कही हुई बात को लोग थोड़ा समझ नहीं पाते। वो इस प्रकार से बोलते हैं कि शुद्धोपयोग के फल से तो आत्मा को निर्वाण सुख मिलता है लेकिन शुभोपयोग के फल से आत्मा को निर्वाण सुख नहीं मिलता। यह बात तो कुंदकुंद देव भी कह रहे हैं।**अतः वो लिखते हैं कि कुछ विरुद्ध कार्यकारी, यह शुभोपयोग सिद्ध हो जाता है।**कैसे सिद्ध हो गया है कि शुभोपयोगकथंचित् विरुद्ध कार्यकारी है? क्योंकि इसने हमें क्या दे दिया? स्वर्ग सुख दे दिया। हमें चाहिए

क्या था? मोक्ष चाहिए था।**मोक्ष सुख में और स्वर्ग सुख में अंतर है कि नहीं? इतना अंतर हैं कि दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं**। मोक्ष सुख में क्या होता है? ये आगे अगली गाथा में बताया जाएगा।

शुभोपयोग के फल से स्वर्ग सुख

स्वर्ग सुख में क्या होता है, ये तो आप जानते हो। जब तक इंद्रियों से सहित, शरीर से सहित रहेगा तब तक वह स्वर्गीय सुखों को प्राप्त करने के लिए भी अपने अंदर आकुलता बनाए रखेगा और**उन स्वर्ग सुखों में रहते हुए भी वह संसार दशा का ही अनुभव करेगा। मुक्त दशा का अनुभव नहीं हो जाएगा**। इसलिए याद रखना कि स्वर्गीय सुख कभी भी मोक्ष सुख से तुलना करने योग्य नहीं है।**वह तो संसार ही है। चाहे कितना ही अच्छा स्वर्ग सुख हो।**भले ही वह सर्वार्थसिद्धि के देव हो ,जो नियम से सम्यकदृष्टि होते हैं। लेकिन फिर भी वह उस स्वर्गीय सुख के अनुसार ही रहेगा और उसी के अनुसार उनका अभी भी यह संसार है, ऐसा ही कहा जाएगा। स्वर्ग सुखों को प्राप्त करा देता है इसलिए वोकथंचित् विरुद्ध कार्यकारी हो गया।

शुभोपयोग से कथंचित् विरुद्ध कार्यकारी

वहां पर एक शब्द दिया है - कथंचित्**।**ये हम बात बता रहे हैं आपको आचार्य अमृतचंद महाराज जी की टीका से। ओर यह बात इस ग्रंथ में भी पेज नंबर चौदह पर हिंदी में लिखी हुई है। यहाँ आचार्य अमृतचंद जी महाराज भी यही बताते हैं कि शुभोपयोग के फल से हमें कथंचित् कुछ विरुद्ध कार्य मिल गया। सर्वथा विरुद्ध नहीं है। अर्थात स्वर्ग मिला तो वह स्वर्ग नियम से संसार का ही कारण हो जाए, ऐसा कोई जरूरी नहीं है। क्योंकि वहां पर रहने के बाद में उस सम्यग्दर्शन के साथ जब वही जीव पुनः मनुष्य पर्याय को प्राप्त करता है तो वह नियम से मोक्ष पुरुषार्थ करता है।**इसलिए वह स्वर्ग में जाना उसके लिए एक लंबा रास्ता हो गया। मंजिल पर पहुँच नहीं पाया है।**अब रास्ता लंबा हो गया तो हम उसको ये ही कहेंगे कि भाई देर लग गई, लम्बा रास्ता हो गया। लेकिन हम उसमें दोनों बातें जोड़ सकते हैं।**कथंचित् वह रास्ते पर ही है और कथंचित् अभी वह मंजिल पर नहीं पहुँचा है।**जैसे कि जब आप रास्ते में चल रहे हो और कोई आपको Long Cut मिल जाए, Short Cut नहीं मिला। कभी कभीshort cut के चक्कर में भी long cut हो जाता है तो क्या होता है? आपका उद्देश्य तो रहता है कि हमें मंजिल की ओर जाना है। हमें वही जाना है लेकिन समय थोड़ा ज्यादा लग जाता है। यहाँ स्वर्ग जाना भी उसी प्रकार बताया है। जो सम्यक दृष्टि जीव होते हैं, धर्म की आराधना करते हैं, उन्हें अभी**इस पंचम काल में मोक्ष नहीं मिलता तो वह स्वर्ग में जाते हैं।**लेकिन स्वर्ग में जा कर थोड़ा सा उनका मोक्ष जाने के time में और gap हो गया लेकिन जाएगा तो उसी रास्ते पर। इसलिए आचार्य कहते है कि कथंचित् विरुद्ध कार्य हो गया। विरुद्ध कार्य क्या हो गया? जाना तो मोक्ष था। तपस्या तो मोक्ष के लिए कर रहा था और पहुंच गया स्वर्ग में।**पाना तो अतिन्द्रिय सुख था और मिला इंद्रिय सुख**। इसलिए क्या हो

गया? विरुद्ध कार्य हो गया अथवा विपरीत कार्य हो गया। लेकिन कथंचित् हुआ। क्यों हुआ? क्योंकि वहां पर भी अभी उसका रास्ता बना हुआ है। वो वहां से लौटकर पुनः मनुष्य बनेगा और फिर मनुष्य भव में वह पुरुषार्थ करके वह पुनः मोक्ष पुरुषार्थ के माध्यम से मोक्ष को प्राप्त होगा। इसलिए वह कथंचित् विरुद्ध है।

शुभोपयोगकथंचित् धर्म है

एक दिन और आपको बताया था - कथंचित् शब्द की परिभाषा। शुभोपयोग धर्म है अथवा नही है? सरागचारित्र धर्म है अथवा नहीं है? तो हमें समझना पड़ेगा कि कथंचित् वह धर्म है। ओर वो इसलिए है क्योंकि उसका फल भी हमें कथंचित् थोड़ा सा long term से, long route से वही मिलने वाला है, जिस फल की हम इच्छा करते हैं। अतः यही दृष्टि रखकर के आचार्य कहते हैं कि हमेशा अगर हम शुद्धोपयोग में नहीं रह पाते हैं या शुद्धोपयोग हमें प्राप्त नहीं होता है तो कोई बात नहीं। शुभोपयोग के माध्यम से धर्म करते रहो। शुभोपयोग में कैसा धर्म होता है? जो आप कर रहे हो। क्या सुन रहे हो? **शुभोपयोग धर्म का मतलब क्या होता है? सम्यग्दर्शन के साथ में सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र की आराधना करना, ये शुभोपयोग रूप धर्म है।**और वह सम्यग्दर्शन के साथ में जो ये दोनों चीजों की आराधना होगी तो उसमें हमारा उपयोग एकदम अपनी आत्मा में नहीं दिखेगा लेकिन वह धर्म के साथ जुड़ा रहेगा।

शुद्धोपयोग में क्या होता है?

हम केवल अपनी आत्मा का ध्यान करते हैं। शुद्धोपयोग का मतलब है - निर्विकल्प शुद्ध वीतरागता। अपनी आत्मा में अपना उपयोग लगाना, अपनी आत्मा का ध्यान करना ओर मात्र शुद्ध आत्मा का ध्यान करते करते अपने उपयोग को शुद्ध बनाना। यह क्या कहलाएगा? ये शुद्धोपयोग कहलायेगा।

गृहस्थी शुभोपयोगी लेकिन शुद्धोपयोगी नहीं

शुभोपयोग क्या कहलायेगा? आप कहोगे कि आँख तो बंद कर लेते हैं महाराज ! लेकिन मन कहीं ओर चला जाता है। आपने कहा उसको अपनी शुद्ध आत्मा में लगाना है परन्तु वहां तो वह टिकता ही नहीं है। शुद्ध आत्मा तो कहीं दिखती नहीं है। न आत्मा में निर्विकल्पता आती है ओर न ही मन की स्थिरता बनती है। कुछ भी समझ नहीं आता है कि हम कितनी देर आँख बंद करके बैठे रहे। कुछ भी समझ ही नहीं आता है। सुन रहे हो? तो आपको समझ इसलिए भी नहीं आता क्योंकि यह तो आप समझ चुके हो कि गृहस्थों को कभी भी शुद्धोपयोगनही होता। ये तो पक्का हो गया न? भूल गए क्या? कल की बात, परसों की बात। शुद्धोपयोग कहाँ से शुरु होता है? कौन से गुणस्थान से? सातवें गुणस्थान से। और गृहस्थों के कौन सा गुणस्थान हो

सकता हैं? **गृहस्थोंके पांच गुण स्थान तक हो सकते हैं।**पहला ,दूसरा ओर तीसरा तो ठीक है, अशुभोपयोग के साथ है लेकिन शुभोपयोग के साथ अगर गृहस्थ का गुणस्थान होगा और**यदि सम्यग्दृष्टि बन जाएगा तो चौथे पर होगा। अगर वह व्रतों को धारण कर लेगा तो उसका गुणस्थान पांचवां हो जाएगा**। केवल पांच गुणस्थान तक ही गृहस्थ की यात्रा होती है। इसलिए शुभोपयोगी गृहस्थ हो सकता है लेकिन शुद्धोपयोगी गृहस्थ नहीं हो सकता।

श्रावक का शुभोपयोगी धर्म

अतः यहाँ कहा जा रहा है कि जब आप के लिए ध्यान शुद्धोपयोग के साथ में होने वाला ही नहीं तो आपको फिर क्या करना पड़ेगा? महाराज आपसे भले ही कहें कि आप अपना निर्विकल्प आत्मा का ध्यान करने बैठो लेकिन आप ध्यान तो कर नहीं पाओगे। फिर क्या करोगे? अब कोई ध्यान तो लग नहीं रहा है। तब आप क्या कहोगे कि महाराज हम तो अपने काम पर जा रहे हैं। अपनी job पर जा रहे हैं। अपने business में या अपनी दुकान पर बैठेंगे। तो महाराज क्या कहेंगे? भैया ! थोड़ा रुक।अगर तुझे अपनी शुद्ध आत्मा का ध्यान नहीं हो रहा हैतो वो हमें भी मालूम है कि नहीं होगा। तो क्या करना? तो बाहर आँख खोल कर के पंच परमेष्ठी की भक्ति कर। ये तो कर सकते हैं न आप? आँख खोलने की जरूरत नहीं है।भगवान की प्रतिमा दिखेगी, अरिहंत और सिद्ध का ज्ञान होगा। आचार्य ,उपाध्याय और साधु के दर्शन कर, उनको आहार दान इत्यादि कर।यह सब तो कर लेगा? हाँ महाराज ये तो सब कर सकता हूँ। परन्तु सबसे कठिन काम तो वही है। आँख बंद करके बैठा दो, तो वही अपने से नही होगा। अतः कोई भी होगा, वह यह व्यवहार धर्म करने लग जाएगा। अतः ये सब शुभोपयोग रूप हो जाता है। और इस शुभोपयोग को कर के वो क्या करेगा? इस शुभोपयोग के माध्यम से उसे इतना तो हो जाएगा कि जो अशुभोपयोग के फल से उसको नरक, तिर्यंच, जो ये सब बनना था, यह सब कुछ भी नहीं बनेगा। क्या बनेगा? स्वर्ग सुख को प्राप्त करेगा। देव बनेगा। इसमे तो कोई हानी नहीं है ना? अब उससे ज्यादा योग्यता ही नहीं है। घाटा तो तब हो जब योग्यता हो। जितना पैसा होगा उतना ही तो business कर पाओगे। उसी प्रकार**जितनी मन की स्थिरता होगी, जितनी अंदर अपने कषायों की कमी होगी, उतना ही तो पुण्य आएगा। और उतना ही तो उपयोग लगेगा।**तो वही उपयोग शुभोपयोग कहलाता है। जो पंच परमेष्ठी की भक्ति रूप उपयोग है वोशुभोपयोग है जो उपयोग दान आदि में लगा होगा या जो उपयोग पूजा आदि कार्यों में लगा हुआ होगा, वोशुभोपयोग होगा। कोई भी तीर्थ यात्रा आदि के निमित्त से भी अगर भ्रमण कर रहे हैं वो भी शुभोपयोगहोगा।स्वाध्याय कर रहे हैं ओर भले ही आप समयसार जी का स्वाध्याय कर रहे हैं अथवा प्रवचनसार ग्रंथ का, वोशुभोपयोग ही रहेगा। हम**कितनी भी निर्विकल्प शुद्ध आत्मा की चर्चा करें, उससे हमारा उपयोग शुद्धोपयोगनही हो जाएगा। उपयोग तो शुभोपयोग ही रहेगा।**

इसलिए आचार्य कहते हैं यह कथंचित् सही काम भी कर रहा है और कथंचित्उल्टा काम भी कर रहा है। सही काम क्या कर रहा है? कम से कम पंच परमेष्ठी की भक्ति में लगा हुआ है। स्वाध्याय करने के लिए बैठ गया है, तत्व का उपदेश सुन रहा है अथवा तत्व को समझ रहा है।ये सही काम हो रहा है कि नहीं हो रहा है? लेकिन उल्टा क्या हो रहा है कि अभी भी ये बाहरी क्रियाओं में लगा हुआ है। अब ये अपनी आत्मा का ध्यान नहीं कर रहा, इसलिए उल्टा है। ये आचार्यों कीविवक्षाये समझो। इसलिए वहां पर कथंचित् शब्द लिखा हुआ है।**कथंचित् अर्थात किसी अपेक्षा से।**स्यादवाद की शैली में जब हम कोई बात करते हैं तो वहां पर हमें कथंचित् शब्द का उपयोग करना होता है।**जब कोई चीज नितांत एकांत रूप से गलत होती है तब वहाँ पर सर्वथा शब्द का उपयोग होता है**। यह तो बिल्कुल ही गलत है कि सर्वथा एकांत रूप से ये अशुभ ही है तो इसका फल हमेंनियम से ये कुनर, तिर्यंच,नरक आदि सब मिलेगा। यह एकांत रूप से उसका फल होगा। अतः वहीं आचार्य यहाँ कहते हैं कि आपको यह ध्यान रखना है कि शुभोपयोग के माध्यम से भी आपका धर्म होता है। आपकी आत्मा धर्म से परिणत हो सकती है।

शुभोपयोग कब होगा?

सम्यग्दर्शन के साथ जो उपयोग होगा, वह शुभोपयोग होगा।और सम्यग्दर्शन कैसे होगा? कब होगा? कैसे के लिए तो ये उत्तर है किआप तत्व का श्रद्धान करें, देव शास्त्र गुरु का परमार्थ के साथ श्रद्धानकरें, तत्व का निरंतर अभ्यास करें, जिनवाणीमे कही हर बात को ही अपने हृदय में लाएँ।ये आपके लिए सम्यगदर्शन के लिए कारणभूत चीजें हैं। और कब होगा? तो ऐसा करते करतेजब आपकी आत्मा से मिथ्यात्व का और अनंतानुबंधीकषायों का उदय नहीं हो, बिल्कुल उनका उदय से अभाव हो जाए तब वह आपकी आत्मा की जो परिणति होगी, वो कहलाएगी - शुभोपयोग की परिणति। एक भीतरी चीजें हैं और एक बाहरी चीजें हैं।बाहरी चीजें हमेशा कारण बनती है हमारे भीतरी परिणामों को संभालने के लिए। बाहरी चीजों के माध्यम से हम अपने भीतर के परिणामों में अन्तर लाते हैं। दर्शन, पूजन, स्वाध्याय, दान, इन सब के माध्यम से क्या होता है? तो इनसे श्रद्धा भी समीचीन बनती है और कषायों में कमी होती चली जाती है।

जिन बिम्ब दर्शन सम्यग्दर्शन के लिए कारण है

जैसे जैसेकषायों में कमी होती चली जाएगी, अनन्तानुबन्धीकषाय, मिथ्यात्व आदि के परिणाम मन्द होते चले जाएंगे। तोएक स्थिति ऐसी विशुद्धि की बन सकती है जब इन अनन्तानुबन्धी आदि जो कषाय हैं, इनका उदय हमारी आत्मा में न हो।अर्थात इनका फल हमारी आत्मा अनुभव न करें और हम अपने परिणामों में सम्यग्दर्शन का परिणाम लेकर आ जाए। इसका अर्थ यह हुआ कि संयम भाव को रोकने वाला कौन है? बाहर कोई नहीं है। सब कुछ भीतर ही है। और भीतर कौन रोकता है? हमारे ही अंदर जो मिथ्यात्व कर्म का उदय और

अन्नतानुबंधीकषायों का उदय चलता है, यही हमारे अंदर सम्यक्त्व परिणाम नहीं होने देता है। और जैसे ही हम इन पर विजय प्राप्त करेंगे, अपने आप हमारी आत्मा सम्यग्दर्शन के साथ शुभोपयोग में परिणत हो जाएगी।जिस आत्मा के अंदर ये परिणाम उत्पन्न हो, उसके लिए जो वस्तु कारण बनती है वो यही सब बाहरी वस्तु होती है।इनके सहयोग से हम अपनी आत्मा के परिणामों को विशुद्ध बनाते हैं और उस विशुद्धि के माध्यम से हमारे अंदर इन कषायों का उदयमन्द हो जाता है तो हमें सम्यक्त्व भाव की प्राप्ति हो जाती है। समझ आ रहा है? बाहर से भी है और भीतर से भी है।आप यदि बाहर की वस्तु को गलत कह रहे हैं तो कभी आप भीतर की वस्तु को प्राप्त नहीं कर पाओगे। क्योंकि जो वस्तु कारण है उस कारण से वो कार्य होगा।और कारण को यदि आप गलत बताओगे तो कार्य की कभी प्राप्ति नही होगी। कारण क्या है? तो आचार्य कहते हैं किजिन बिम्ब दर्शन सम्यग्दर्शन के लिए एक कारण है। क्या कहा? जिन बिम्ब दर्शन।अरिहंत भगवान का दर्शन नहीं कहा। अरिहंत भगवान का दर्शन सम्यग्दर्शन में कारण नहीं है। जो पहली बार किसी भी आत्मा के अंदर सम्यग्दर्शन होगा, वह सम्यग्दर्शन उसको जिन बिम्ब दर्शन से ही होगा।

क्या सुन रहे हो? कितनी विशेष बात है। जिनेन्द्र भगवान का साक्षात होना तो अलग बात हो गई। लेकिन उनकी प्रतिमा जिन्हें सामान्य लोग कहते हैं, ये तो प्रतिमा जी हैं, ये तो पाषाण की बनी हुई हैं अथवा ये तो आपने अष्टधातु की बना दी हैं। इनके दर्शन से क्या होगा? किसको समझ में आएगा कि इनके दर्शन से क्या होगा? सुन रहे हो? आज की पीढ़ी को समझ में आने वाला नहीं कि इनके दर्शन से क्या होगा। ऐसे ऐसे लोग हमको मिल जाते हैं कभी कभी कि हमने उनसे कहा आप भगवान के दर्शन करने क्यों नहीं आते हो? जवाब मिलता है कि हाँ, नही आते। क्यों नहीं आते? क्या होता है भगवान के दर्शन से? ऐसे उत्तर मिल जाते हैं हमें औऱ तब हमें समझ में आता है कि अभी बहुत ज्यादा मिथ्यात्व और कषाय का उदय आत्मा में चल रहा है। अभी समझाने से कोई फायदा नहीं है। यह एक परिणति है। अगर मुख से यह निकल रहा है तो इसका मतलब है कि अभी बहुत कषाय का उदय चल रहा है। अभी उसकी कषायमन्द होने दो। अभी उसे ज्यादा pressurise मत करो कि भगवान के दर्शन करो। अभी तो उसका कुछ interest बन जाए। किसी ना किसी तरीके से। बस उतना ही बहुत है। और interest कुछ ऐसा बन जाए कि अगर वो भगवान के पास नहीं जा पा रहा है तो कोई बात नहीं।**बहुत बार ऐसा भी हो जाता है कि भगवान के पास direct जाने के लिए जो पुण्य चाहिए, वो नहीं होता है। उस समय यदि गुरु के माध्यम से व्यक्ति जुड़ जाए तो वह गुरु के माध्यम से जुड़ कर के कभी प्रभु के पास तक भी पहुंच जाता है। व्यक्ति गुरु से जुड़ सकता है**, उनकी बात तो सुन सकता है, उनके पास आ सकता है। लेकिन अभी उसके मन में यह नहीं आ रहा है कि भगवान के पास जाने से क्या होगा? चलो कोई बात नहीं। अपने पास आते आते कभी न कभी भाव होंगे कि महाराज को आहार दान कर दे। चलो अच्छी बात है। फिर कभी महाराज के पास बैठोगे, स्वाध्याय सुनोगे। स्वाध्याय यदि नहीं भी सुनना चाहेंगे तो कभी ना कभी ऐसी बात सुनने में आ ही जाएगी। और जिस दिन सुनने में आ गई, उसी दिन हो सकता है कि समझदारी की कोई भावना आ जाए। अरे ! भगवान के दर्शन करने से और उनके

बिम्ब अर्थात प्रतिमा के दर्शन करने से भी सम्यग्दर्शन हो जाता है। इतना शुभोपयोग का भाव उत्पन्न हो जाता है। यह परिणाम अपने अंदर विश्वास के रूप में आ जाना ही बहुत बड़ी बात है। और यह भी कब आएगा? जब आपकी कषाय थोड़ी हल्की हो।

तीव्र कषाय में तो ये धर्म का उपदेश कोई भी काम नहीं करता। मन्दकषाय होने पर ही धर्म का उपदेश काम करता है। तीव्र कषाय में तो फिर वही स्थिति बनती है "कै ऊँघे, कैलड़मरे, कै उठ घर को जाएँ"। ऊँघे का मतलब है कि जब अपने अंदर तत्व सुनने का interest नहीं होता है तो क्या होता है? उवासी आती है, आलस आता है। बार बार नींद की झपकी भी ले लेता है। और जब तत्व सुनने का interest रहता है तो भले ही कुछ समझ में नहीं आ रहा है, लेकिन कान बिलकुल खोल करके बैठता है। हाँ ये भी परिणति हमें बताती है कि हमारे अंदर जो धीरे धीरेinterest आता है, वह interest भी जैसे जैसेकषाय कम होगी वैसे वैसे ही आएगा। अब भीतर की जो कषाय है वो कभी हम हाथ डाल के तो साफ कर नहीं सकते हैं। वो साफ कैसे होगी? वो तो अपने परिणामों की विशुद्धि से ही होगी। हमें भगवान के दर्शन करने में कुछ आए या न आए लेकिन हमें अपने परिणाम विशुद्ध करना तो कैसे करना? उनके सामने खड़े हो जाना। कुछ आये या ना आये, अपने अंदर ऐसे भाव उत्पन्न करना कि हे भगवान !**आज मैं धन्य हो गया जो आज आपके दर्शन हुए। आज मेरा जीवन सफल हो गया जो आज इन आंखों से आपका दर्शन कर पाया**। यह परिणाम भी आना अपने आप में विशुद्धि के परिणाम हैं और इन्हीं से आपको जिन बिम्ब दर्शन का लाभ मिलेगा। इसलिए आचार्य कहते हैं कि जिन बिम्ब का दर्शन करो, गुरु का उपदेश सुनो।

सम्यग्दर्शन के लिए कारणभूतवस्तुएं

तीन बातें बताई हैं।**एक जाति स्मरण**जो जब कभी किसी को हो, न हो, कोई जरूरी नहीं है। अतः जो करने लायक factor है वो यही है।**जिन बिम्ब दर्शन और उपदेश श्रवण**।**ये दोनों ही मनुष्य पर्याय में सम्यग्दर्शन के लिए कारण है**। और इन दोनों कारणों का अब जितना सेवन करेंगे या उनको अपने सामने रख देंगे, उतना ही आप के परिणाम अच्छे बने रहेंगे। अब कोई हमसे यह प्रश्न करे कि दर्शन से क्या होता है? तो उसको यह समझाएं कि सम्यग्दर्शन होता है। अब उसको जब यह ही नहीं मालूम कि दर्शन से क्या होता है तो कैसे समझ आएगा कि सम्यग्दर्शन क्या होता है? तो फिर एक नई उलझन पैदा करो। तो दर्शन से क्या होता है? अपनी कषाय मंद पड़ती हैं। अतः अगर सुनना चाहे कोई तो**इतनासमझा सकते हो कि दर्शन से अपनी कषाय मंद पड़ती हैं। हमारे अंदर बहुत अच्छी purity के भाव उत्पन्न होते हैं। भगवान को देख करके हमारा मन भी बिलकुल भगवान की तरह शांत और स्वस्थ होने लग जाता है।** अगर आप feel करो तो आपके दर्शन से भी आपको इस तरीके की feeling आ सकती है। और जब इस तरह की feeling आएगी तो वही जिन बिम्ब दर्शन आपके लिए सम्यग्दर्शन का कारण बनेगा। यानी आपका जो विश्वास है, जो इधर उधर भाग रहा

है या जो विश्वास आपको भगवान के ऊपर नहीं हो रहा है, वह विश्वास भी आपको धीरे धीरे होने लगेगा।**ये सम्यग्दर्शन है। यहीं से शुभोपयोग शुरू होता है।**तो गृहस्थ क्या कर सकता है? इस तरह से शुभोपयोग को अपने अंदर उत्पन्न कर सकता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान।

जब इस तरह की बात हो तब आगे कुछ व्रतों की बात की जाए, **कुछ प्रतिमाओं को ग्रहण करने की बात की जाए**। वह तो उस गृहस्थ के लिए चारित्र की बात हो गई। तब उसका गुणस्थान चौथे से कौन सा हो जाएगा? पाँचवा।**इतना दृढभूत हो जाए वो कि जिनेंद्र भगवान के अलावा और कोई भी हमारे लिए संसार को काटने की सामर्थ्य नहीं रखता**। ये तत्व का उपदेश दुनिया में सबसे ज्यादा दुर्लभ है और यही हमारे लिए उपयोगी है। ऐसा जब विश्वास भीतर से पैदा होता है तभी वह अपने अंदर सम्यक्त्व का भाव पैदा कर पाता है। और यह नहीं है तो उसी का नाम अशुभोपयोग है। अभी आप लोगों के अंदर हो सकता है कि अभी आप सुन तो रहे हैं लेकिन जरूरी नहीं है कि अभी आपके अंदर शुभोपयोग हो। क्योंकि शुभोपयोग की शर्त क्या है? चौथा गुणस्थान। चौथा गुणस्थान अर्थात सम्यगदर्शन। आप तो पहली बार पढने बैठे हैं प्रवचनसार। हमें तो पता ही नहीं सम्यग्दर्शन क्या है ओर कैसे होगा? तो होगा इसी तरीके से। उपदेश सुनो और भगवान का दर्शन करो। इस माध्यम से ही हमारे अंदर यह सम्यगदर्शन का भाव आएगा।

इन चीजों से बच जाओगे तो? जो ये लिखा है, कुनर। कुनर का मतलब, अब इसमें सब आ गया। किसी भी तरह से मनुष्य पर्याय तो मिली लेकिन हम दुःखी हो गए। किसी भी तरीके से दुःखी हुए। अपने परिवार से, अपने व्यापार से, किसी भी अपने पुत्रों से, भाइयों से अथवा किसी भी तरीके का दुखी जीवन अपना रहेगा तो उसका भी मूल कारण क्या होता है? अपने अंदर शुभोपयोग नहीं होना। अशुभोपयोग के माध्यम से ही ये हमको कुत्सित फल मिलते हैं। नारकी भी वही बनते हैं, तिर्यंच भी वही बनते हैं जिनके अंदर सम्यगदर्शन नहीं होता। और जिनके अंदर सम्यगदर्शन हो जाता है, वह जीव नियम से देव बनता है। वह व्रत भले ही न ले पाए लेकिन वह जीव नियम से इन कुत्सित पर्यायों में नहीं जाता है।

अब देखो आगे कहते हैं - यह आपने तीनों उपयोगों के फल सुन लिए। शुद्धोपयोग का फल जो निर्वाण सुख कहा था, अब हम उसकी चर्चा करेंगे कि वह निर्वाण सुख क्या होता है? मोक्ष सुख क्या होता है? जिसका आप हमें लालच दे रहे हो। थोड़ी उसकी कुछ बातें तो बता दो। इतनी देर से, इतने दिनों से निर्वाण सुख, मोक्ष सुख। अब शुद्धोपयोगनही हो रहा तो कोई बात नही परन्तु उसको बताओ तो कि मोक्ष सुख कैसा होता है?

अदिसयमादसमुत्थंविसयादीदंअणोवममणंतं।
अव्वुच्छिण्णं च सुहंसुद्धवजोगप्पसिद्धाणं ॥१३॥

शुद्धोपयोग वश साधु सुसिद्ध होते, स्वात्मोत्थसातिशय शाश्वत सौख्य जोते।
जाती कही न जिसकी महिमा कभी भी, ऐसा अपूर्व सुख भूपर ना कहीं भी।।

अन्वयार्थ -(**सुद्धवजोगप्पसिद्धाणं**) शुद्धोपयोग से निष्पन्न हुए आत्माओं का (**सुहं**) सुख (**अदिसयं**) अतिशय (**आदसमुत्थं**) आत्मोत्पन्न (**विसयादीदं**) विषयातीत (**अणोवमं**) अनुपम (**अणंतं**) अनन्त (**अव्वुच्छिण्णं च**) और अविच्छिन्न है।

<u>निर्वाण सुख अतिशय स्वरुप हैं</u>

आदिसयका अर्थ होता है अतिशय। शुद्धोपयोग से प्राप्त होने वाला निर्वाण सुख कैसा है? अतिशय स्वरूप हैं।**अतिशय का अर्थ कोई चमत्कार करने वाला नही अपितु जो सबसे उत्कृष्ट हो।**जिसके नीचे और कोई भी वस्तु आए तो वह उससे नीचे ही रहे। वो ऊपर न जा पाए। उसको अतिशय रूप कहते हैं। सुनो ,ये शब्द भी जो है, वो आपने आजकल अपने हिसाब से और अपने मतलब के अनुरूप कर लिया है। उसके अर्थ में जो भाव था, उस भाव को गिरा कर, आप उसका उपयोग करने लगे। किसी स्थान पर कोई अतिशय हो रहा है, उससे बढ़कर कहीं दूसरा हो गया। उससे भी बढ़कर कहीं दूसरा हो गया। तो वह अतिशय भी अलग-अलग तरीके से होता है। लेकिन वस्तुतः**अतिशय उसको बोलते हैं जिस से बढ़कर के कुछ और नहीं हो।**उसको अतिशय कहते हैं। ऐसा सुख जिस से बढ़कर के कोई और दूसरा सुख न हो। जैसे इंद्रियों का सुख है और वह इंद्रियों का सुख भी सब तरीके से अगर मिला भी लिया जाए तो भी वह कभी भी इस सुख की तुलना नहीं कर सकता है। चक्रवर्ती ओर तीर्थंकरों से बढ़कर इन्द्रिय सुख किसी को नहीं मिलता है। छियानबे हजार रानियों का एक साथ उपभोग करने वाले चक्रवर्ती से बढ़कर किसी को क्या सुख मिलेगा? लेकिन फिर भी चक्रवर्ती को भी उस इन्द्रिय सुख से कभी तृप्ति नहीं होती है। क्या सुनते हो? कितना सुख चाहिए? और फिर भी उस सुख की तुलना करते हुए आचार्य कहते हैं - ये कोई सुख नहीं है।**यह सुख भी दुःख ही है**। अर्थात**उस सुख की तुलना हम कभी भी आत्मा के सुख से नहीं कर सकते हैं**। इसलिए कहा जाता है कि ये**जो निर्वाण का सुख है, वह अतिशय स्वरुप है**। अर्थात सबसे बढ़कर (उत्कृष्ट) है।supreme bliss अर्थात ऐसा जिससे बढ़ कर कुछ दूसरा न हो।

<u>निर्वाण सुख की दूसरी विशेषता - आदसमुत्थं</u>

अर्थात यह सुख कहाँ से उत्पन्न होता है? इसका source क्या है? तो आचार्य क्या कहते हैं? इसका**source** शरीर नहीं है। इसका source मन नहीं है। इसका source हमारी पांच इंद्रिया नहीं है। इसका source

क्या है? आत्मा हैं। आत्मा से ही यह फुव्वारा निकलता है। आत्मा से ही ये सुख फूटता है और आत्मा से ही यह सुख उत्पन्न होता है। इसलिए यह सुख कहा जाता है। आदसमुत्थं अर्थात आत्मा से उत्पन्न हुआ।**अभी तक जो भी संसारी जीवों के सुख उपभोग में आते हैं, उत्पन्न होते हैं, वो सब कहाँ से उत्पन्न होते हैं? वो सब मन से होते हैं, मन की इच्छाओं से होते हैं और इंद्रियो से उत्पन्न होते हैं ओर इंद्रियो की तृप्ति से होते हैं**। लेकिन यह सुख आत्मा से उत्पन्न होगा। इसीलिए यहाँ कहा आदसमुत्थं।

निर्वाण सुख की तीसरी विशेषता – विसयादीदं

फिर आचार्य कहते है कि तीसरी विशेषता इस सुख की क्या है? विसयादीदं।विषयों से अतीत है। यानि**पांच इन्द्रिय के जो विषय होते हैं, उन पांच इन्द्रिय के विषयों से वह परे हैं, रहित है**। क्या सुन रहे हो? इसमें ऐसा लालच नहीं करना पड़ेगा कि हमें ये दिख जाए तो सुख मिलेगा। हमें ये खाने को मिल जाए तो सुख मिलेगा। हमें यह सुनने को मिल जाए तो सुख मिलेगा। यह स्पर्श करने को मिल जाए तो सुख मिलेगा। यह इन्द्रियों के विषयों से अतीत है। पांच इन्द्रियों के विषयों से यह रहित है। इसमें इन्द्रियविषयो का कोई काम नहीं है। यह इस आत्मिक सुख की विशेषता है। अर्थात आत्मा से उत्पन्न होने वाला और विषयों से अतित, ये दोनों चीजें अपने आप में समझने योग्य हैं। जब आत्मा से उत्पन्न होगा तो उसको बाहरी किसी पदार्थ की कोई जरूरत नहीं पड़ेगी। आपको तो सुख कब होता है? जब आप के लिए कोई टीका लगा दें, कोई अच्छी माला पहना दे अथवा अच्छा अच्छा आपको कोई आभूषण पहनने को मिल जाए या अच्छा अच्छा खाने को मिल जाए ओर अच्छा अच्छा देखने को मिल जाए तो सुख होता है। लेकिन यह सब सुख कैसा है? ये वैषयिक सुख कहलाता है। इन्द्रिय के विषयों से उत्पन्न होने वाला सुख होता है। लेकिन निर्वाण सुख कैसा है? ये विषयों से अतीत है। इनसे रहित है।

निर्वाण सुख की चौथी विशेषता – अणोवमं

अणोवमंअर्थात अनुपम, जिसकी उपमा हम किसी भी सुख से नहीं दे सकते हैं। जब हम किसी उत्कृष्ट चीज को बताते हैं ,तो हम उसकी किसी से तुलना करते हैं, कि भाई ये ऐसा है। लेकिन इसकी हम किसी से तुलना नहीं कर सकते हैं। दुनिया में कोई भी ऐसी दिखने वाली चीज नहीं है, जिससे हम कह सकें कि भाई ऐसा आत्मा का सुख होता है। इसकी तुलना किससे कर दें? अमृत से कर दें तो भी नहीं चलेगा। किसी भी तरीके की कोई भी पदार्थों से कर दें तो भी नहीं चलेगा। कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं जिससे इसकी तुलना की जा सके। इसलिए इसको अनुपम कहा जाता है। किसी के द्वारा ये उपमा देकर के भी समझाया नहीं जा सकता है। फिर क्या कहते हैं?

निर्वाण सुख की पांचवी विशेषता – अणंतं

यह सुख कैसा है? अनंत है। अनंत का मतलब कभी भी इस सुख को पाने के बाद, ये पोस्टर लिखा हुआ नहीं मिलेगा - The End हर चीज के बाद में**The End** होता है कि नहीं होता है? कोई भी चीज हो। वह आपकी picture हो अथवा कोई आपके भोजन की सामग्री हो अथवा आप स्वयं हो। आपको भी तो आखिर कभी न कभी आपको अपने मुंह पर लिख के जाना पड़ेगा - The End। नहीं लिखोगे? नहीं भी लिखोगे तो भी लिख जाएगा। वो तो**The End** होना ही है। यह सब चीजें end होंगी। इन सब का अंत होगा। लेकिन इस आत्मिक सुख का कभी भी अंत नहीं होता। इसलिए यह अविनाशी सुख कहलाता है। जिसका कभी भी विनाश न हो। जिसमें कभी भी कोई बाधा उत्पन्न ना हो।

निर्वाण सुख की छठी विशेषता – अव्वुच्छिण्णं

अव्वुच्छिण्णं अर्थात विच्छिन्न नहीं होगा। एक बार मिल गया तो कहीं कुछ break लग जाए, बीच में कहीं interval हो जाए, ऐसा भी नहीं होगा। एक बार मिला तो अनंत काल तक ऐसा का ऐसा ही वह सुख बना रहता है। उसमें कोई भी गिरावट नहीं होती और कोई भी disturbance नहीं होती। किसी भी तरीके की उसमें कोई भी हिनाधिकता भी नहीं होती। कोई उसका कुछ करने का भी, कोई कारण नहीं होता है, कि मैं तेरे सुख को मिटा देता हूँ या मैंने तेरे साथ ऐसा कर दिया। कुछ नहीं होगा। कोई कुछ कर ही नहीं सकता। सुन रहे हो न आप लोग? अब इसके अलावा और क्या कहा जाए?

इतनी ही बड़ी बड़ी विशेषताएं बताने के बावजूद भी आपका मन न ललचाए तो अब क्या कर सकते हैं? फिर तो वही बात है कि जिस गड्ढे में आपको अच्छा लग रहा है उसी में आप अमृत समझ रहे हैं। आपको लग रहा है कि बस यही है सब कुछ। विश्वास तो हो आप लोगो को इन बातों पर? हाँ, विश्वास होना भी बड़ी बात है। यदि अपने मन को परखना चाहते हो तो घर पर जाकर अपने मन से पूछना कि हे मन ! क्या तू ऐसे सुख की इच्छा करता है? अगर कुछ जवाब negative भी आये तो कुछ चिंता नहीं करना। हमें न भी बताओ तो कोई बात नहीं। लेकिन अपने मन में तो decide कर लेना कि मन क्या चाह रहा है? शुभोपयोग की पहचान यही है। क्या हैं? सम्यकदृष्टि जीव ऐसे सुख की ही इच्छा करता है जैसे कि पूछते ,हैं ना आप लोग कि हम सम्यकदृष्टि है अथवा नहीं, ये कैसे पता पड़ेगा? कोई व्यक्ति सम्यग्दृष्टि है या नहीं? तो दूसरे की चिंतामत करो। अपनी चिंता करो। और**इसीलिए आचार्य महाराज शुभोपयोग के फलों का वर्णन करने के बाद तुरंत यहां जो लिख रहे हैं – निर्वाण सुख, वह इसलिए लिख रहे हैं कि इस सुख की जो भावना करेगा या इस सुख के ऊपर जिसका विश्वास होगा, वही जीव सम्यकदृष्टि होगा।**इसीलिए हम आपसे पूछ नहीं रहे। आपको

कह रहे है कि आप अपने मन से पूछना। ईमानदारी से पूछना। एकांत में मन को बैठा कर पूछना कि मन तू क्या चाहता है? सुन रहे हो? कुछ लोग कहेंगे कि समय कहाँ है हमारे पास महाराज? **जब तुम्हारे पास ही समय नहीं है तो सम्यग्दर्शन तुम्हारे अंदर टपक पड़े, उसको भी कहाँ समय है? वह कोई free की वस्तु नहीं कि जो अपने आप आपके अंदर आ जाए**। अतः अपने मन में विश्वास करो और अपने मन में इस सुख की इच्छा करो कि हमें इंद्रियों का सुख नहीं चाहिए। क्या चाहिए? इंद्रियों से रहित अतिन्द्रिय सुख चाहिए। पांच इन्द्रिय के विषयों का सुख नहीं चाहिए। हमें पांच इन्द्रिय के विषयों से जो अतीत सुख है, वह सुख चाहिए। ऐसा सुख नहीं चाहिए जो बुढ़ापे में कुछ काम न आए और रोग पैदा कर दे और अंत में हम उस सुख के लिए तड़प तड़प कर मर जाए। उस सुख से जिससे कभी भी कोई तृप्ति ही न हो, ऐसा सुख नहीं चाहिए। हमें तो ऐसा सुख चाहिए जो एक बार उत्पन्न हो जाए तो फिर कभी नष्ट ही न हो। समझदारी की बात तो यही है। समझ में आ रहा है? अब यह बात अलग है कि आप लोगों का conscious level इतना नहीं है।**लेकिन फिर भी एक समझदार आदमी को अगर इस तरह के सुख की भावना की बात बताई जाएगी तो ऐसा नहीं है कि वो उसको स्वीकार न करें**। अगर उसका conscious level अच्छे स्तर का होगा तो।अगर उसका conscious level गिरा हुआ होगा तो वह जो कर रहा है, उसी में मस्त रहेगा। एक समझदार आदमी, विचारशील व्यक्ति हमेशा उत्कृष्ट चीज की इच्छा करता है। जैसे आप कहते हैं न कि अपने घर में वस्तु लाऊँगा तो quality की लाऊंगा। उसमें कोई compromise नहीं करूँगा। कोई भी चीज लाऊंगा। चाहे car लाऊंगा तो भी compromise नहीं करूँगा। जो world के अंदर, कितनी भी expensiveजो संसार में चाहे कितनी भी expensive हो। कुछ भी हो, कहीं भी हो। उसका model हमारे पास आएगा। quality में कोई compromise नहीं। tv set लाऊंगा तो quality में कभी compromise नहीं करूँगा महाराज। उसमे कैसे compromise हो जाये? quality और बढ़ाओ। जैसे हम इन्द्रियविषयो की quality में compromise नहीं करते, ऐसे ही हमें ऐसे उत्कृष्ट सुख की इच्छा करनी चाहिए कि जिसके नीचे compromise करने से हमारा मन संतुष्ट ही न हो। नहीं, इसके नीचे कुछ नहीं। अपने को चाहिए तो ऐसा ही eternal bliss चाहिए। जो हमेशा कभी भी किसी भी स्थिति में, किसी भी तरीके से, किसी के द्वारा नष्ट न हो और न disturb हो।

ऐसा भी अगर अपने दिमाग में कोई भाव आ जाता है तो वह भी हमारे लिए सम्यग्दर्शन का कारण हो जाता है। घर पर जाकर सोच लेना। कल भी सोच लेना और जब सोचने में पक्का मन बन जाए तो हमें आ कर के बता देना कि हां महाराज ! हमने सोच लिया। हमने निर्णय कर लिया कि हमें ऐसा ही सुख चाहिए। करना कुछ नहीं आपको। बस ये वाला विश्वास बना लो। न घर छोड़ने को कह रहा हूँ, न कपड़े उतारने को कह रहा हूँ। कुछ नहीं करना है आपको। खाओ पियो, मस्त रहो। कोई दिक्कत नहीं। चलो और छूट ले लो। सुन रहे हो? लेकिन एक विश्वास कर लो कि हाँ ये भी एक चीज है। अभी तक हमने इस वस्तु को समझा ही नहीं। यह वस्तु हमारी कभी Knowledge में आई नहीं। हमारे अंदर कभी उसका विश्वास बैठा ही नहीं। तो एक विश्वास

कर लो कि इसके अलावा भी कुछ होता है जो हम कर रहे हैं। इसी को कहते हैं - निर्वाण सुख के ऊपर विश्वास होना। और जब निर्वाण के सुख के ऊपर विश्वास होगा फिर आपका निर्वाण पर भी विश्वास हो जाएगा। क्योंकि निर्वाण का सुख कहाँ मिलेगा? निर्वाण में मिलेगा। मोक्ष सुख कहाँ मिलेगा? मोक्ष में मिलेगा। और जब मोक्ष सुख पर विश्वास हो गया तो फिर मोक्ष पर विश्वास हो जाएगा। और जब मोक्ष में विश्वास होगा तो फिर कभी ना कभी तो आप आकर पूछेंगे महाराज ! लालच तो दे दिया। अब ये तो बताओ कि ये मिलेगा कैसे? और फिर जब उसको प्राप्त करने के लिए आप कुछ ऐसा करने लगोगे तब आपके लिए वह निर्जरा और संवर, ये दोनों तत्व सामने आ जाएँगे।**निर्जरा भी होगी और संवर भी होगा। और जब ये दोनों चीजें होने लगेंगी तो आस्रव और बंध, जो संसार का कारण था, वह रुक जाएँगे।**सुन रहे हो आप लोग? फिर आपका आत्मा कर्मों से हल्का होगा। फिर वह अजीव तत्व जो आपकी आत्मा में जुड़ा हुआ है, वह भी हल्का होकर के अलग होगा। और फिर आपका केवल शुद्ध जीव तत्व आपको प्राप्त हो जाएगा। वही पुनः आपके लिए मोक्ष तत्व की उपलब्धि का कारण हो जाएगा। हो गए न सात तत्व। सीधे नहीं चलो तो उलटे ही चलो। अब क्या कर सकते हैं? उलटे ही लोग दुनिया में और अनादिकालीन से उल्टी ही बुद्धि चल रही है तो आचार्य महाराज भी उल्टा चला रहे हैं। हाँ। कही भी देख लेना कि शास्त्र में सबसे पहले सात तत्व का वर्णन आएगा तो पहले जीव तत्व का वर्णन करेंगे। फिर अजीव का करेंगे। फिर आस्रव, फिर बंध तत्व का। फिर निर्जरा और मोक्ष का। और ये प्रवचनसार हैं जिसमे आचार्य महाराज ने सबसे पहले मोक्ष तत्व का वर्णन शुरु कर दिया। और मोक्ष तत्व का वर्णन करने का मतलब भी यही है कि अगर आपकी बुद्धि सीधी नहीं चलती हैं तो कोई बात नहीं उल्टा चले। उल्टा सीधा, सब एक समान। समझ आ रहा हैं? ये धर्म का सबसे बड़ा विज्ञान हैं।**उल्टा सीधा एक सामान, यहीं धर्म का सम्यग्ज्ञान, सम्यक विज्ञान। कैसे भी चले**बस आपकी बुद्धि के अंदर आ जाए।चाहे ऊपर से नीचे आ जाओ या चाहे नीचे से ऊपर आ जाओ। कोई बात नहीं लेकिन हमारे अंदर श्रद्धा की परिणति सात तत्वों पर आनी चाहिए। इसलिए इस श्रद्धा को बनाए रखने के लिए यहां मोक्ष के सुख से शुरुआत की गई है और उसका प्रयोजन यह है कि जब यह जीव सुख को चाहने लगेगा तो उसके कारणों को भी अपनाने लगेगा। ठीक है।

शुद्धोपयोग वश साधु सुसिद्ध होते, स्वात्मोत्थसातिशय शाश्वत सौख्य जोते।
जाती कही न जिसकी महिमा कभी भी, ऐसा अपूर्व सुख भूपर ना कहीं भी।।

निर्वाण सुख की छह विशेषताये एक गाथा के अंदर लिखी हुई हैं।**आदिसय, आदसमुत्थं, विसयादीदं, अणोवमं, अणंतं, अव्वुच्छिण्णं।**ऐसा सुख किसको मिलता हैं? सुद्धवजोगप्पसिद्धाणंयानिशुद्धोपयोग से जो सिद्ध हो गये हैं।

प्रवचन०८ – शुद्धोपयोगसेपरिणतआत्माकास्वरूप (गाथा०१४–०१५)

सुविदिदपत्थसुत्तोसंजमतवसंजदोविगदरागो।।
समणोसमसुहदुक्खोभणिदोसुद्धोवओगोत्ति॥ १४ ॥

शास्त्रज्ञ हो, श्रमण हो, समधी, तपस्वी, हो वीतराग व्रत संयम में यशस्वी।
जो दुःख में व सुख में समता रखेगा, शुद्धोपयोग वह ही निज में लखेगा।।

अन्वयार्थ (**सुविदिदपत्थसुत्तो**) जिन्होंने पदार्थों को और सूत्रों को भली भाँति जान लिया है, (**संजमतवसंजदो**) जो संयम और तपयुक्त है, (**विगदरागो**) जो वीतराग अर्थात् राग रहित है। (**समसुहदुक्खो**) और जिन्हें सुख दुःख समान है (**समणो**) ऐसे श्रमण को (मुनिवर को) (**सुद्धोवओगोत्तिभणिदो**) शुद्धोपयोगी कहा गया हैं।

शुद्धोपयोगी का पहला विशेषण – सुविदिदपत्थसुत्तो।

पहले विश्लेषण में**सुविदिदपत्थसुत्तो**सुविदित अर्थात जिन्होंने अच्छे तरीके से (विदित) अर्थात जान लिया है। क्या जान लिया है? **पत्थसुत्तोपदार्थों को और सूत्रों को**। जो पदार्थ जिस तरह से अवस्थित हैं, उनको उसी रूप में अच्छी तरह से जान लिया है। अच्छी तरह से जानने से तात्पर्य? **प्रमाण और नयों के माध्यम से, सभी प्रकार के हेतुओं के माध्यम से उन पदार्थों को अच्छे ढंग से जान लिया। साथ ही साथ जिन्होंने सूत्रों को भी जान लिया है**। जो गणधरादिपरमेष्ठी के द्वारा कहे जाते हैं, वे सभी सूत्र कहलाते हैं। उन्होंने उन सूत्रों में निहित अर्थ को भी अच्छे ढंग से जान लिया अर्थात जिन्होंने द्वादशांगजिनवाणी के मर्म को जान लिया है या जो सूत्रों के अर्थों को जानकर पूर्ण श्रुत के ज्ञानी हो गए है। यह उनकी पहली विशेषता बताई गई है। आगे आचार्य श्री कहते हैं**संजमतवसंजदो।**जो संयम और तप से संयुक्त हो।

संयम क्या होता है?

आचार्य श्री कहते हैं –**संयम बारह प्रकार का होता है।**जो मुख्य रूप से व्यवहार संयम के रूप में स्वीकार किया जाता है।**छह प्रकार का इंद्रिय संयम और छह प्रकार का प्राणी संयम**को बारह प्रकार का संयम कहते हैं। छह प्रकार का प्राणी संयम क्या होता है? इसे बताते हुए आचार्य श्री कहते हैं – जो इन्द्रियों वाले जीव हैं,

उनकी हिंसा नहीं होना ही प्राणी संयम है। एक इन्द्रिय से पंचेंद्रिय जीवों की हिंसा नहीं होना ही प्राणी संयम है।**जब छह प्रकार के जीवों की चर्चा होती है तो उसमें पांच स्थावरकायिक और एक त्रसकायिक जीवों को गिना जाता है।पांच स्थावरकायिक एवं त्रस जीवों की हिंसा न होना यह प्राणी संयम कहलाता है**। पांच प्रकार की स्थावर जीवों की हिंसा नहीं होना, जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु,औरवनस्पति। त्रसकायिक में दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय, सभी जीव आ जाते हैं। इस प्रकार छह काय के जीवों की रक्षा करना प्राणी संयम कहलाता है। छः प्रकार का ही इन्द्रिय संयम होता है।**पांच इन्द्रिय और एक मन। इन छः का संयमित होने का नाम छह प्रकार का इन्द्रिय संयम कहलाता है**। यहाँ यह बताया है जो इन बारह प्रकार के इन्द्रियसंयमों के माध्यम से अपनी इन्द्रियों को संयत करके स्थित हो जाते हैं, वहीं श्रमण शुद्धोपयोग के योग्य होते हैं। शुद्धोपयोग हमेशा श्रमण को ही होता है। इस गाथा में जो**समणो**लिखा हुआ है, यह सभी विशेषताएं श्रमण के लिए ही बताई जा रही हैं। पहले भी आपको बताया था कि शुद्धोपयोग के अधिकारी मुनि महाराज होते हैं। यहाँ श्रमणों की और विशेषताएं बताई जा रही है कि**सभी श्रमण शुद्धोपयोगी नहीं होते हैं**। जिनका सम्यग्ज्ञान बहुत दृढ़ हो, जिन्हें पदार्थों और सूत्रों का अच्छी तरह से ज्ञान हो, जिनमें ये सभी विशेषताएं होगी वही श्रमण होंगे। इसी शब्द का अर्थ आचार्य प्रभाचंद्र महाराज जी की इस टीका में लिखा है कि वे एक तरह से श्रुत केवली होते हैं। श्रुत केवली के लिए यहाँ पर शुद्धोपयोग का अधिकारी बताया गया है। इस तरह बारह प्रकार के संयम और बारह प्रकार के तप से जो संयुक्त रहते हैं वही शुद्धोपयोग के अधिकारी होते हैं।

शुद्धोपयोगी का दूसरा विशेषण – विगदरागो।

इसके आगे आचार्य कहते हैं-**विगदरागो।**जिनका राग बीत चुका हो, नष्ट हो चुका हो या जिनके अंदर से राग पूर्णतः निकल गया हो। वस्तुतः देखा जाए तो जब राग निकल जाता है तभी वह आत्मा शुद्ध होता है और तभी उसके उपयोग की शुद्धि होने से उसे शुद्धोपयोगी कहा जाता है। पहले भी आपको बताया गया था कि**शुद्धोपयोग का मतलब उपयोग का पूर्णतः शुद्ध हो जाना होता है**। इसे उपयोग कहो अथवा आत्मा कहो एक ही बात है क्योंकि**आत्मा का ही अनन्य परिणाम उपयोग कहलाता है।**उपयोग की शुद्धता होने का मतलब आत्मा की शुद्धता होना है और आत्मा की शुद्धता होने का मतलब उसमें रागादि भावों का अभाव हो जाना है। वह कब होगा? आचार्य श्री लिखते हैं जब रागादि को उत्पन्न करने वाले कर्मों का उस आत्मा में अभाव हो जाएगा।

राग कौन से गुण स्थान तक रहता है?

पहले भी आपको बताया था दसवें गुणस्थान तक राग रहता है। ग्यारहवें गुणस्थान में रागादिकषायें दबी हुई होती हैं इसलिए वहाँ तक भी देखा जाये तो आचार्य कुन्दकुन्द की दृष्टि में आत्मा की शुद्धता नहीं आ रही

है।**राग सेरहित होना और राग का सर्वथा अभाव होना, ये दोनों एक बात हैं**। राग का सर्वथा अभाव बारहवें गुणस्थान में होता है क्योंकि वहाँ न उदय है और न सत्व है। राग का क्षय होकर सर्वथा आत्मा से हट जाना, जब इस प्रकार की उपलब्धि आत्मा कोहोती है तब वह जीव बारहवेगुणस्थान में पहुँच जाता है। जिसे क्षीण मोह गुणस्थान कहते हैं। जहाँ पर मोह पूर्णतः नष्ट हो जाता है, वहाँ पर वह आत्मा राग से रहित हुआ।

<u>शुद्धोपयोगबारहवें गुणस्थानमें?</u>

मुझे ऐसा लगता है कि**आचार्य कुन्दकुन्द देव का भाव यह है कि शुद्धोपयोगबारहवें गुणस्थानमें होता है**। सुन रहे हो? एक नई चीज आप लोगों को बता रहा हूँ। आचार्य कुन्दकुन्द देव की गाथाओं से यह सिद्ध होता है कि वे शुद्धोपयोग को बारहवें गुणस्थान में मान रहे हैं। यहाँ पर भी वह कह रहे है -**विगदरागो।**जब तक श्रमण में राग का सदभाव है तब तक उसे शुद्धोपयोग नहीं होगा। हमें आचार्यों की टीकाएँ पढ़ते समय उनके मूल अभिप्राय को भी समझना चाहिए। अगर यहाँ आचार्य श्री के मूल अभिप्राय को देखें तो पहले भी आपको बताया था कि राग से रहित होने, मोह से रहित होने का मतलब -उनका पूर्ण अभाव हो जाना है।

इसीलिए आचार्य श्री ने पिछली गाथा में भी कहा था -

धम्मेणपरिणदप्पाअप्पाजदिसुद्धसंपजोगजुदो।
पावदिणिव्वाणसुहंसुहोवजुत्तो व सग्गसुहं॥

उस शुद्धोपयोग से निर्वाण होता है।उससे पहले केवलज्ञान भी होता है तो वहशुद्धोपयोगसे ही होता है। इसलिए आचार्य कुन्दकुन्द की दृष्टि में यही आ रहा है किशुद्धोपयोगवही है जो केवलज्ञान का कारण हो।**जो अतीन्द्रिय सुख का कारण बने, वहीशुद्धोपयोगहै। जब तक इन्द्रिय सुख है तब तक वहशुद्धोपयोगनहीं है।**ग्यारहवें गुणस्थान से भी यह जीव मरण करके स्वर्ग सुख को प्राप्त कर लेता है तो भी वह इन्द्रिय सुख बन जाता है। इसीलिए आचार्य कुन्दकुन्द देव की दृष्टि में अभीशुद्धोपयोगनहीं है। यह एक बहुत नया विषय आपको समझा रहा हूँ। पिछली गाथाओं का अगर हम समायोजन करें तोशुद्धोपयोगका अर्थ यहाँ पर इस ढंग से चल रहा है कि पूर्वा पर विरोध न आए। इसलिए पूर्वा पर गाथाओं के भावों को देखें।

प्रारम्भ से ही आचार्य कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं यही बात कह रहे हैं। सातवी गाथा में उन्होंने कहा था -

"चारित्तंखलुधम्मोधम्मो जो सो समोत्तिणिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणोपरिणामोअप्पणोधसमो"

"चारित्तंखलुधम्मो" यहाँ वह कह रहे हैं कि आत्मा का साम्य परिणाम ही चारित्र है, वही आत्मा का धर्म है। यहाँ पर धर्म शब्द सेशुद्धोपयोगको ही मुख्य रूप से धर्म कह रहे हैं। उनका धर्म से तात्पर्य - आत्मा का चारित्र भाव और चारित्र का मतलब - आत्मा का साम्य भाव। और वो साम्य भाव कैसे होता है? **'मोहक्खोहविहीणो'**सभी प्रकार के मोह और क्षोभ से रहित होने पर जो आत्मा में समभाव उत्पन्न होता है, उसी को उन्होंने आत्मा का चारित्र कहा है। उसी समभाव को यहाँ पर भी कहा जा रहा है।

शुद्धोपयोगी का तीसरा विशेषण - समसुहदुक्खो

'विगदरागो' के पश्चात एक विशेषण यहाँ पर एक और विशेषण- समसुहदुक्खो आ रहा है। आचार्य श्री कहते हैं - वह श्रमण सुख और दुःख में समभाव रखने वाला हो। यहाँ सुख-दुःख का मतलब हल्का वाला सुख-दुःख नहीं समझ लेना। अर्थात दुःख आया तो भी शांत हो कर के बैठ गए। सुख आया तो भी शांत होकर बैठ गए। वह 'समसुहदुक्खो' यहाँ पर नहीं बताया जा रहा है।**यहाँ पर उस सुख-दुःख को समभाव कहा जाएगा कि वह इतना सम हो जाये कि उसे सुख और दुःख का वेदन ही न हो**। समभाव भी कई तरह से घटित होता है। एक समभाव वह होता है जो हम सामायिक पाठ में पढ़ते हैं, प्रार्थना करते हैं, समय आने पर अपनी मानसिकता में उस समभाव को लाने का प्रयास करते हैं। क्या पढ़ते हैं?

दुःखे-सुखेवैरिणि-बन्धुवर्गे, योगे-वियोगेभवने-वनेवा।
निराकृताशेष-ममत्व बुद्धेः, समंमनोमेऽस्तुसदापि नाथ।।

हम भगवान से प्रार्थना करते हैं -हे भगवान ! मेरे मन में हमेशा सुख-दुःख में समता भाव बना रहे।जिसकी वह साधना कर रहा है यह भी एक समभाव है। यहाँ पर जो कहा जा रहा है, वह साधना नहीं उपलब्धि है। दो वस्तु अलग-अलग होती हैं।**हम जिस वस्तु को उपलब्ध करना चाहते हैं उसी की हम साधना करते हैं**। हमें समभाव की उपलब्धि करना है तो हमें सर्वप्रथम समभाव की साधना करनी होगी। जब हम साधना करेंगे तो हमें उसकी भावना करनी होगी। जो हम भावना के साथ साधना कर रहे हैं वो तो हमारी प्रारंभिक स्थिति की वस्तु हो गई। जब हमारे अंदर वह वस्तु उपलब्ध हो जाए तो हमें सुख-दुःख किसी भी प्रकार के कर्म के फल से कोई फर्क नहीं पड़े, आत्मा में उस कर्म के फल का संवेदन ही न हो, आत्मा अपने ज्ञान स्वभाव में लीन बना रहे, वह उसकी उपलब्धि रूप समभाव कहलाता है।

सामान्यतः लोग सुख-दुःख में समभाव रखने को समता समझ लेते हैं। यह समता एक बहुत सूक्ष्म समता है। जब तक सुख है तभी तक हम कहते हैं - हे भगवन! सुख दुःख में समभाव हो जाए। वह भाव बना भी रह जाता है। वस्तुतः देखा जाए उसका नाम सम नहीं है। यहाँ जो आचार्य श्री 'समसुहदुक्खो' कह रहे हैं और जो हम

भावना करते हैं, इन दोनों में बहुत अंतर है। जब हम भावना करते हैं तो इसका आशय है कि हम अभी साधना करने का मन बना रहे हैं। कई बार तो दुःख का प्रभाव इतना तीव्र हो जाता है, हम भूल जाते हैं कि हम दुःखी है या नहीं। अगर हम श्रमण को बुखार आ जाए, जुखाम हो जाए, पेट में दर्द हो जाए या कोई परेशानी हो जाए तो दुःख का संवेदन अवश्य होगा। उनके अनुभव में भी आ रहा है, चेहरे पर भी आ रहा है, भीतर ही भीतर उस पीड़ा का एहसास भी होता रहेगा। अब यदि ऐसा हुआ तो क्या वह सुख-दुःख में समभाव होगा? इतना अवश्य हो सकता है जैसे आप चिल्लाते हो, वह वैसे नहीं चिल्लाएँगे। आप जैसे तहलका मचा देते हो, वैसे नहीं मचाएँगे। वह शांत होकर सह लेंगे। क्योंकि किसी से कुछ कहना उचित नहीं है, इसलिए कुछ नहीं कहेंगे। उन्हें दुःख का संवेदन तो है। उस दुःख में भी किसी भी प्रकार से विषमता का भाव न आना। अगर हम उस दुःख को दूर करने का भी भाव करते हैं उसे भी आचार्य श्री उसको आर्त ध्यान कहते हैं। ऐसा कौन सा इलाज, कौन सा तरीका करूँ? जिससे बुखार दूर हो जाए।इसमें समता का भाव चला जाता है। समता का भाव क्यों चला गया? तो आचार्य कहते हैं - हमारा उपयोग उस बुखार को दूर करने में लग गया। हमारे मन में उस बुखार को दूर करने के उपाय आ रहे हैं। कोई वैद्य आ जाए, किसी को दिखा दिया जाए, ये सभी परिणाम आर्त ध्यान के परिणाम हैं। समता रखने का आशय है कि हमारे मन में किंचित मात्र भी इस बुखार को दूर करने की लिए विषम भाव नहीं आए। सामायिक के समय जो प्रार्थना की जाती है - हे भगवन! सुख-दुःख में समभाव रहे। यह भी साधना है। इसके आगे और भी है।

जो हमसे बैर रखे, जो हमारा बंधु है, हम उन सभी से समता रखें। बंधु वर्ग से राग हो जाता है। जो हमसे बैर रखते हैं, उनसे द्वेष होने लग जाता है। जो अपने विपरीत चले, उससे घृणा होने लग जाती है। जो अनुकूल चले, उससे राग हो जाता है। उसी से बोलते हैं, उसी को अपने पास में बैठने का भाव करते हैं, उसी से अपने सुख-दुःख की बात बताएँगे।**दुःखे-सुखेवैरिणि-बन्धुवर्गे -**यह प्रारम्भ का समभाव है। इसे जिस स्थिति में होना चाहिए, वह भी प्रारंभ नहीं हो पा रहा है।**योगे-वियोगेभवने-वनेवा -**कोई संयोग या वियोग हो जाए तो भी फर्क न पड़े। कोई सामने हो अथवा न हो, कोई फर्क न पड़े। दिनभर चाहे कोई श्रावक सामने आए अथवा नहीं आए फिर भी कोई फर्क न पड़े। जो साथ में है, वह भी चला जाए, अगर कुछ नया मिल जाए फिर भी कुछ फर्क न पड़े। तभी योग और वियोग में समभाव होगा। लेकिन यह एक दृष्टि बनी रहे कि हमें इसमें परिणत होना है। परिणत होने का मतलब - उस रूप होना है। हमें समभाव मय होना है। तभी वह साधना करते करते उस समभाव को उपलब्ध होता है।**'भवनेवनेवा'**भवन में रुकना हो जाए। जंगल में रुकना हो, कहीं भी रुकना हो।इससे कोई फर्क न पड़े। चाहे मच्छर हो, बिच्छू हो अथवा साँप हो। कुछ भी हो कोई फर्क न पड़े। क्या करोगे? जब तक कुछ नहीं हो रहा है तब तक हाथ जोड़कर भगवान से प्रार्थना कर सकते हैं। उस नहीं होने का कारण भी आचार्य बहुत अच्छा लिख रहे हैं-**'निराकृताशेष-ममत्व बुद्धेः'**हमारी ममत्व बुद्धि जिस-जिस वस्तु से जुड़ी होगी, वहीं हमारे अंदर राग द्वेष की परिणति से जुड़ जाएगी। हम जिस-जिस वस्तु से अपना ममत्व भाव हटाएँगे, उस के विषय में हम समभाव से परिणत होते चले जाएँगे। अगर शरीर से ममत्व

होगा तो आप विपरीत परिस्थिति में नहीं रह पाओगे। गर्मी में, सर्दी में, मच्छरों के काटने से अगर हमारे ऊपर कोई फर्क न पड़े। अगर इतनी बुद्धि का निराकरण हो जाए कि हे भगवन ! **'निराकृताशेष-ममत्व बुद्धेः, समंमनोमेऽस्तुसदापि नाथ'**समभाव लाना बहुत कठिन है।

यह तो प्रारम्भ का समभाव है, जिसकी हम प्रार्थना करते हैं। लेकिन एक स्थिति ऐसी भी बन जाती है जब साताअसातावेदनीय कर्म का अनुभव आत्मा नहीं करता है। आत्मा केवल उन कर्मों को जानता रहता है किन्तु उनका अनुभव नहीं करता है। वह मात्र अपने ज्ञान स्वभाव का करता है। उसी को यहाँ**समसुहदुक्खो**कहा गया है। वह कौन करेगा? ज्ञान स्वभाव का अनुभव आप भी करते हैं। अगर ज्ञायक भाव की, ज्ञान स्वभाव की अनुभूति आपको होगी फिर उस समय सुख-दुःख का संवेदन नहीं होगा। शरीर इन्द्रिय मन का आभास भी हमें नहीं होगा। उस समय ज्ञान स्वभाव की अनुभूति होती है। क्योंकि ज्ञान स्वभाव एवं इन्द्रिय स्वभाव, ये दोनों विपरीत हैं। जब तक हमें अपनी इंद्रियों का संवेदन है तब तक हमें अपने ज्ञान स्वभाव का संवेदन नहीं होगा। स्व संवेदन, जिसे हम निर्विकल्प ज्ञान रूप आत्मा का संवेदन कहते हैं, वह संवेदन तभी होता है जब सभी इंद्रियां इस प्रकार से संयमित हो जाए कि उसमें अपने मन का उपयोग न जाए। तभी वह**समसुहदुक्खोभणिदो**कहा गया है। अथार्थ**सुद्धोवओगो।**वह शुद्धोपयोग कहा गया है। उस शुद्धोपयोग को ही यहाँ पर शुद्धोपयोगी श्रमणकहा गया है। अभी तक तो मुनि महाराज का नंबर ही शुद्धोपयोग में नहीं है। जब कि कुछ गृहस्थ शुद्धोपयोग में अपनी जिद्द लगाए रहते हैं कि हमें चौथे गुणस्थान में शुद्धोपयोग हो जाए।

<u>शंका- जब सुकौशल मुनि कोसियारखा रहा था और उनका अपने शरीर से ममत्व भाव हट चुका था तब क्या उन्हें शुद्धोपयोग नहीं हुआ?</u>

समाधान -हाँ सुकौशल मुनि को सियार खा रहा था लेकिन इसको शुद्धोपयोग इसलिए नहीं कह सकते क्योंकि उन्हें मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई। उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई थी। उन्हें शरीर से निस्पृहता भी हुई, सुख-दुःख में समभाव भी हो गया। ये बहुत गहरी बातें हैं। इन्हें समझने का प्रयास करो। विद्वानों का कार्य तो शब्दों के अर्थ को पढ़ देना और उसे रटा देना है। आप भावों तक पहुँचो और भावों को तब समझ पाओगे जब आपको प्रत्येक वस्तु का सम्पूर्ण ज्ञान हो। आचार्य कुन्दकुन्द देव की दृष्टि में वह शुद्धोपयोग न होकर समभाव है। जिस समता भाव को यहाँ समझाया जा रहा है। सुकौशल मुनि हों, सुकमाल मुनि हों या यशोधर मुनि हों। ये सभी समभाव में तो रहे लेकिन उस समभाव मेंउनके अंदर उस सुख-दुःख में समता का भाव भी आ गया कि कोई बात नहीं जो हो रहा है, हम अपना ध्यान यहाँ से हटाते हैं और अपना ध्यान बिल्कुल अपनी आत्मा में लगाते हैं। वह ध्यान भी लगाया लेकिन वह ध्यान ऐसा नहीं लगा कि वह शुक्ल ध्यान बन जाता। क्योंकि बारहवें गुणस्थान में शुक्ल ध्यान हो जाता है। उसी ध्यान से केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। वे मरण को प्राप्त करके

केवलज्ञानी न होकर स्वर्ग के देव बन गए। यहाँ जोशुद्धोपयोग बताया जा रहा है, वह तो केवलज्ञान को प्राप्त कराने वाला है।

आगे की गाथाओं में केवलज्ञान का वर्णन आने वाला है। आचार्य कुन्दकुन्द देव को शुद्धोपयोग से केवल ज्ञान दिखाना है। वह प्रारम्भ से ही कहते आ रहे हैं और यहाँ भी यही कह रहे हैं। मेरे मन में भी पहली बार यह बात वाचनाकरते हुए आ रही है कि कुन्दकुन्द आचार्य की दृष्टि में बारहवें गुणस्थान में ही शुद्धोपयोग है। बाकी सब शुभोपयोग है। चाहे सुकमाल मुनि हो, सुकौशल मुनि हो। क्या वे सर्वार्थ सिद्धि गए? वहाँ तो धर्म ध्यान से भी पहुंच जाते हैं। शुभोपयोग से भी वहाँ जा सकते हैं। क्योंकि उनके अंदर इतना अभ्यास वाला समभाव आ गया, जिसको पहले बताया गया था की उस समभाव से उनके अंदर कोई भी विषमता का भाव नहीं आया। शत्रुता का भाव नहीं आया कि यह मेरा शत्रु है, पूर्व जन्म का बैरी है या इस भव का बैरी है। ऐसा कोई भाव उनके मन में नहीं आया। वह अपनी आत्मा में स्थित रहे। लेकिन वह स्थिरिता मानसिक स्थिरिता है। आत्मा का जो मानसिक समभाव यहाँ बताया जा रहा है**मोहखोवहिणो**मोह और क्षोभ से रहित जो आत्मा का परिणाम साम्य रूप समभाव होता है, वह तो केवल बारहवें गुणस्थान में होता है। वहाँ पहुंचने के बाद आत्मा को केवलज्ञान अवश्य होता है।

यशोधर मुनि महाराज – शुभोपयोग या शुद्धोपयोग?

जब उनके गले में मरा हुआ सर्प डला तो उन्होंने समभाव से उसे सहन कर लिया। वह समभाव भी उनके लिए अभी धर्म ध्यान है। वह भी उनका शुभोपयोग का भाव समझो। शुद्धोपयोग नहीं हैं। इतना हो सकता है कि उन्हें उस शरीर से कोई पीड़ा नहीं है, उसको वह समभाव से सहन कर लेंगे। उपसर्ग होने पर उनकी और अधिक विशुद्धि बढ़ेगी, ममत्व बुद्धि छूटती चली जाएगी। लेकिन यहाँ जो उपलब्ध हो जाना कहा जा रहा है, वह सुख दुःख का संवेदन ही नहीं होना। आँख खोलने के बाद यह भी समझ में नहीं आना कि यह हमारे ऊपर उपसर्ग था और हट गया। उन्हें इतना आभास तो हो रहा था कि उन पर उपसर्ग हुआ है लेकिन वह ध्यान में बैठे रहे। उन्होंने यह सोच लिया कि जब तक उपसर्ग रहेगा, हम यहाँ से नहीं हटेंगे। कोई भी प्रतिक्रिया नहीं करेंगे। इसे समभाव से सहन कर लेंगे। चाहे कितनी भी चीटियां काट लें, मैं उसे समभाव से सहनकर लूँगा। लेकिन अभी भी संवेदन हो रहा है कि मुझको चीटियां काट रही हैं। यह बात अलग है कि मन दृढ़ है, इंद्रियों का नियंत्रण है। जिससे सब कुछ सहा जा रहा है। ममत्व बुद्धि हट रही है। समभाव में स्थित हो रही है लेकिन वह समभाव ऐसा हो कि हमें उसकी संवेदना ही न हो कि हमें कुछ हो रहा है। समभाव वह होता है, जिसमें सुख दुःख का संवेदन ही न हो। मात्र ज्ञान ही उसके संवेदन में आए। उसका बारहवें गुणस्थान में पहुँच जाना ही उपलब्धि होती है।क्योंकि वहाँ मोह का नाश हो जाता है। चाहे पाँच पाण्डव हो, यशोधरमुनिराज हो। सभी में

यही उदाहरण लगेगा। पाँच पाण्डवों में तीन पाण्डवों को मोक्ष हो गया क्योंकि उन्हें कोई विकल्प नहीं हुआ।लेकिन दो पाण्डवों को कोई बाहरी विकल्प आया जिससे उन्हें शुद्धोपयोग का परिणाम नहीं हुआ।

शंका –क्या उपसर्ग से केवली हो सकते है?

समाधान –हाँ उपसर्ग से केवली मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। उन्हें उपसर्ग से केवलज्ञान हुआ है इसलिए उपसर्ग केवली कहलाते हैं। केवलज्ञान होने के बाद कोई उपसर्ग नहीं होता। लेकिन उपसर्ग से जिन्हें केवलज्ञान हुआ, वह केवलज्ञानी हुए। इसलिए उनको उपसर्ग केवली कहते हैं और उनको भी मोक्ष की प्राप्ति होगी। केवलज्ञानी होने के पश्चात मोक्ष की प्राप्ति नियम से होती है।

इस समभाव की सीमाएँ बहुत हैं

कहने में बहुत छोटा है समभाव लेकिन यह बहुत बड़ा समभाव हैं। इस समभाव का प्रारम्भ अपने छोटे-छोटे सुख दुःख के परिणामों में समता भाव रखने से होता है। इसका अंत जब वह समरूप परिणमन कर जाता है, जब वह आत्मा का साम्य चारित्र बन जाता है और जो केवलज्ञान की प्राप्ति करा दे तो वह समभाव उसके लिए उपलब्ध हो गया। एक साधना रूप समभाव होता है और एक उपलब्धि रूप समभाव होता है। यहाँ उपलब्धि रूप समभाव दिखाया जा रहा है। क्योंकि आगे केवलज्ञान का वर्णन आने वाला है। पूर्वा पर गाथाओं के अर्थों को जोड़ना पड़ता है, भाव को समझना पड़ता है तभी हम आचार्य कुन्दकुन्द देव के भावों को समझ सकेंगे कि वह वास्तव में कहना क्या चाह रहे हैं? यहाँ पर उन श्रमणों की भी बात नहीं बैठेगी जो पंचम काल में हैं। कोई बात नहीं।शुभोपयोग भी क्या बुरा है अगर शुभोपयोग के लिए कहा जा रहा है। यशोधरमुनिराज का उपयोग भी शुभोपयोग है, सुकमालमुनिराज का उपयोग भी शुभोपयोग है। लेकिन उस शुभोपयोग को हमने इतना हल्का क्यों बना दिया है?

भ्रान्ति – गृहस्थों में शुभोपयोग या शुद्धोपयोग

बड़ी बड़ी चीजों के नाम सुनकर उसके title अपने ऊपर जोड़ लेने से कोई बड़ा नहीं बन जाता है। मन तो ऐसा ही होता है। आपका शुद्धोपयोग तो गृहस्थों को हो रहा है और यहां तो शुद्धोपयोग मुनि महाराज को भी नहीं हो रहा है। जो हमारे योग्य नहीं है उसके लिए हमने इतना ज्यादा कर लिया कि वह शुद्धोपयोग हमारे लिए ही है।जो हमारे योग्य है, उसके लिए हमें ऐसा लगता है कि यह तो second class की बात हो गई।हमें तो first class वाला बनना है। यथार्थ को स्वीकार करना सम्यग्ज्ञानका लक्षण होता है। अगर कोई हमसे कहे कि आप शुभोपयोगी हैं तो इसमें कोई बाधा नहीं है। क्योंकि शुभोपयोग भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के

साथ चलता रहता है। जो शुभोपयोग हमारे लिए शुद्धोपयोग का कारण बनता है, वह शुभोपयोग कैसा हो? वह समता भाव में ढल रहा हो, अपने शुद्ध परिणामों को स्पर्श कर रहा हो। वहीं धीरे-धीरे उस शुद्धोपयोग में ढलकर के शुद्धोपयोग की अंतिम स्थिति को प्राप्त होगा। कुछ लोगों को शुद्धोपयोग को चौथे गुणस्थान में दिखाने की इतनी जिद़ होती है कि वे इस गाथा से शुद्धोपयोग को चौथे गुणस्थान में सिद्ध कर देते हैं। इस गाथा में**सुविदिदपत्थसुत्तो**जो यह पद आया है,इसका अर्थ यह है जो पदार्थ और सूत्रों को अच्छी तरह से जानता हो**वह शुद्धोपयोगी है।**इसीलिए चौथे गुणस्थान में गृहस्थ को जो सूत्र बताये गए हैं, उनके अर्थों को अच्छी तरह से जान लेता है क्योंकि उसमें शुद्धोपयोग का कुछ अंश तो हो ही गया। इसी के अनुसार वे चौथे गुणस्थान में इसका अंश घटित करते हैं। उनसे रहा नहीं जाता कि ऐसा नहीं हो सकता। शुभोपयोग के साथ सम्यग्दृष्टि रहे, उन्हें ऐसा समझ नहीं आता। वे कहते हैं हमें शुद्धोपयोगी तो होना हीचाहिए था।

अब यहाँ उसका अंश कहाँ आ रहा है? ये जितने भी विशेषण हैं, सभीमें श्रमण पहले जुड़ा हुआ है। क्योंकिविशेषण औरविशेष्यमें संबंध होता है। आप अर्थों और भाषाओं के प्रयोगों को समझने का प्रयास करो। जैसे एक शब्दहै - नीलकमल। इसका अर्थ क्या हुआ? वह कमल जो नीला हो। अगर कोई कहे जिसमें नीला अंश हो, उसे भीनीलकमल कहते हैं। उसमें भी कमल का अंश होगा। नीला विशेषण किसका है? कमल का है। यह**सुविदिदपत्थसुत्तो**विशेषण किसका है? श्रमण का है कि श्रमण ऐसा होना चाहिए। यहाँ गृहस्थ का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। फिर भी गृहस्थ जबरदस्ती करके ऐसे अर्थ निकालकर दिखा देते हैं कि अंश मात्र में शुद्धोपयोग यहाँ भी घटित हो जाता है। क्योंकि चौथे गुणस्थान में सूत्र और अर्थ का उसे ज्ञान हो जाता है तो सम्यग्ज्ञान हो जाता है। क्योंकि सम्यग्ज्ञान के साथ ही शुद्धोपयोग होता है। सम्यग्ज्ञान हो गया तो थोड़ा सा शुद्धांश हो गया। ऐसा उसका अर्थ निकाल लेते हैं। जबकि यह विशेषण ही श्रमण में घटित होगा। उस श्रमण के अंदर इसका प्रारम्भ हो रहा है। इसी तरह कहीं भी नीला हो तो क्या वह कमल हो जाएगा? तो क्या कोई भी नीलापनग्रहण कर लेंगे? क्या वह नीला हमारे लिए इष्ट हो जाएगा? हमें वही नीलापन इष्ट होगा जो कमल के साथ हो तभी तो हम उसको नीलकमल कहेंगे।

शुद्धोपयोग का प्रारम्भ श्रुत केवली से

आचार्य कह रहे हैं कि शुद्धोपयोग का प्रारम्भ श्रुत केवली से हो रहा है। श्रुतकेवली किसे कहते हैं? जो पूर्ण श्रुत को जानने वाले होते हैं, उन्हें श्रुत केवली कहते हैं। वह मुनि महाराज ही होते हैं। क्या सुन रहे हो? अब आपकी पक्की धारणा बन रही है कि नहीं? आचार्य कुन्दकुन्द देव की बातें कहते हो, उन्ही के reference देकर के बोलते हो, उन्हीं के अनुसार अपना ज्ञान अर्जित भी करना चाहते हो, उसी ज्ञान को बढ़ाना भी चाहते हैं लेकिन उन्हीं के साथ छल कर जाते हो। ऐसा करना उनके अभिप्राय के साथ छल हुआ। जो वस्तु जिसके लिए ownership दी गई है हम उसकी ownership जबरदस्ती घसीट कर अपने लिए कर लें और कहें कि हम

भी इसके मालिक हैं, यह तो द्वेष वाली बात हो जाती है। जैसे पिताजी ने घर का हिस्सा बड़े भाई को दे दिया और आपको नहीं दिया। अब आप कहो कि मेरा भी जन्म इस घर में हुआ। मैं भी घर का हिस्सा लूँगा। पिताजी ने आपको लायक नहीं समझा होगा, इसलिए नहीं दिया होगा। अब अगर आप case करो कि मेरा भी हिस्सा है तो यह बात अलगहै। शुद्धोपयोगी कौन होते हैं? श्रमण होते हैं। यह अर्थ कौन सी गाथा से निकलता है। इसका अर्थ चौदहवीं गाथा से स्पष्ट हो जाता है। कोई कुछ भी कहे, हमें इसके अलावा किसी बड़े प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। हमारे लिए सर्वप्रथम आचार्य कुन्दकुन्द देवप्रमाणिक हैं। उनकी गाथा प्रमाणिक हैं। उनकी वाणी सर्वज्ञ जिनवाणी मानी जाती है। हम उनकी वाणी को समझ कर के उसी अर्थ को स्वीकार करें। चाहे हम उस अर्थ में ढल भी नही पाते हो फिर भी कोई बात नहीं। आचार्य कहते हैं - सत्यव्रती वह होता है जो भले ही उतना तप त्याग नहीं भी कर पाए, उस योग्य नहीं भी हो पाए फिर भी वह झूठ न बोले। तभी वह सत्यव्रती कहलाता हैं। हमें ऐसा नहीं करना चाहिएकि जो हम कर रहे हैं वह सब कुछ है और जो हम नहीं कर पा रहे हैं, वह कोई नहीं कर पा रहा है। यह बात गलत है। हमारी जितनी योग्यता है, हमें उसको स्वीकारना चाहिए। आचार्य जिस भाव से कह रहे हैं, हमें उस भाव को भी समझना चाहिए।

उवओगविसुद्धो जो विगदावरणंतरायमोहरओ।।
भूदोसयमेवादाजादिपरंणेयभूदाणं ॥ १५ ॥

शुद्धोपयोग-बल पूर्ण स्वयं जगाया, मोहादि घाटी रज को खुद ही मिटाया।
आत्मा स्वयं निखिल-विज्ञ स्वको बनाया, यों ज्ञेय का सहज से उस पार पाया।।

अन्वयार्थ- (**जो**) जो (**उवओगविसुद्धो**) उपयोग विशुद्ध है (**आदा**) वह आत्मा (**विगदावरणंतरायमोहरओ**) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोहरूप रज से रहित (**सयमेवभूदो**) स्वमेव होता हुआ (**णेयभूदाणं**) ज्ञेयभूत पदार्थों के (**परंजादि**) पार को प्राप्त होता है।

<u>शुद्धोपयोगी आत्मा कर्मों के आवरण से रहित होता हैं।</u>

यहाँ आचार्य कहते हैं- शुद्धोपयोग में जो आत्मा परिणत हो जाता है, वह क्या करता है? **उवओगविसुद्धो जो**उपयोग जिसका विशुद्ध हो गया।**विगदावरणंतरायमोहरओ**विगत अर्थात रहित हो जाना। किससे? आवरण से। आवरण किसे कहते हैं? ज्ञानावरण, दर्शनावरण, इनको आवरण कर्म कहा जाता है। अंतरायभी एक कर्म है और मोह, यह मोहिनीय कर्म हो गया। ये चार घातिया कर्म हैं। इन्हीं चार कर्मों का नाश सबसे पहले होता

है। जैसे ही उसका उपयोग विशुद्ध होगा, उसकी आत्मा ज्ञानावरणी कर्म, दर्शनावरणी कर्म, अंतराय कर्म और मोहिनीय कर्मों अर्थात रज से रहित हो जाएगी।**भूदो**माने हो गया।**सयमेव**माने स्वयं ही।**आदा**माने आत्मा।अर्थात इन चारों कर्मों से आत्मा स्वयं रहित हो जाता है। स्वयं से तात्पर्य कोई दूसरा व्यक्ति उसे नहीं करेगा। वह स्वयं अपने पुरुषार्थ से ही करेगा। ऐसा आत्मा क्या हो जाता है? **णेयभूदाणं**अर्थात ज्ञेयभूत जितने पदार्थ हैं, उनको**परंजादि**पार पा लेता है।**पर**से तात्पर्य- सभी ज्ञेय भूत पदार्थ उसके जानने में आएँगे। ज्ञेय का अर्थ जानने योग्य। जो भी पदार्थ हैं, वे सभी ज्ञेय कहलाते हैं। जानने वाला आत्मा ज्ञाता कहलाता है। आत्मा अपने ज्ञान के माध्यम से उन सभी पदार्थों को जानेगा। जो भी पदार्थ इस संसार में हैं,जिसे हम ज्ञेय कहते हैं, उन ज्ञेयों के पार को वह पा लेगा। अगर अनंत ज्ञेय भी होंगे तो भी वह उन सब ज्ञेयों को जान लेगा। इसका आशय हुआ कि केवलज्ञान के माध्यम से वह सभी ज्ञेयों को जानने वाला हो जाता है।

कौन से गुण स्थान में घातियाकर्मों का नाश होता हैं?

बारहवें गुणस्थान में जब उसका उपयोग विशुद्ध हुआ तो मोहनीय कर्म का क्षय हो जाता है। इसी बारहवें गुणस्थान में, एक अंतर्मुहूर्त में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय, इन तीनों कर्मों का एक साथ नाश करके वह केवलज्ञान को प्राप्त हो जाता है। जैसे ही उसे केवलज्ञान हुआ, वह सभी ज्ञेयों के पार को पा लेता है। जितने भी जीव, अजीव, ज्ञेय पदार्थ हैं, सभी उनके ज्ञान में आ जाते हैं और उन्हें स्पष्ट दिखाई देने लग जाते हैं। यह पढ़कर आपको आश्चर्य हो रहा होगा कि आत्मा की शक्ति इतनी है कि वहकहाँ से कहाँ पहुँच जाता है? वही आत्मा जब संसार अवस्था में रहता है तो उसे ज्ञात भी नहीं रहता कि मेरा आत्मा केवलज्ञान भी प्राप्त कर सकता है। आभास होना, विश्वास होना, यह भी अपने आप में बड़ी चीज़ है कि आत्मा का परिणमन ऐसा होता है। अभी तो हम यही समझते हैं कि उनका ऐसा परिणमन होता है। क्या हमारा भी ऐसा हो सकता है? हाँ हमारा भी हो सकता है। इसी परिणमन के लिए सभी प्रकार से आत्मा का ज्ञान, उसका श्रद्धान और उसके लिए आचरण किया जाता है। वह आत्मा स्वयं ही इस प्रकार से हो गया कि सभी ज्ञेयों को जानने लगा।यहाँ पर जो रज शब्द आया है, वह रज शब्द भी मोह के लिए ही है।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय और मोहनीय कर्म – रज यानि धूल हैं

जैसे आप बोलते हो-**सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि निजानन्दरसलीन सो जिनेन्द्रजयवंत नित अरि रज रहस विहीन**।मोहिनीय कर्म को अरि कहा जाता है। रज अगर आता है तो ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म को रज लिया जाता है और अंतराय को**रहस**के रूप में कहा जाता है। यहाँ पर भाव थोड़ा बदल गया। जबकि यहाँकहा जा रहा है -**आवरण अंतराय मोह रज**अर्थात यहाँ मोह को रज भी कहा गया है। अन्यत्र जो हम पढ़ते हैं, वहाँ ज्ञानावरणदर्शनावरण को भी रज कहा जाता है। मोहरूपी शत्रु पहले अरि है। अरि मोह को कहा जाता है,

ज्ञानावरणदर्शनावरण को रज के रूप में और अंतराय को**रहस**के रूप में कहा जाता है। इन तीन विशेषणों से चार कर्मों को कहा जाता है। इसमें मोहनीय कर्म को रज कहा जा रहा है। इस तरह हम थोड़ा सा भावों में अंतर समझ सकते हैं। लेकिन ये सभी घातिया कर्मों की व्यवस्था है। सभी कर्म आत्मा के गुणों का घात करने वाले हैं। इसलिए इसमें लिखा है - आत्मा के स्वरूप के**प्रच्छादक**होते हैं।**आवरणे च अंतरायश्चमोहश्च त एव रज**अगर हम टीका से भाव निकालें तो एक नया भाव और निकलता है। जितने भी ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय और मोहनीय कर्म हैं, इन सबको मिलाकर रज कहा है। ये सभी धूल के समान हैं, जिसे कर्म धूली कहते हैं। हम यह भी समझ सकते हैं कि ये सभी कर्म रजरूप हैं। अर्थात इन कर्मों को रज(धूल), धूली के रूप में आत्मा के अंदर स्वीकार किया है। जैसे धूली वस्त्रों से चिपक जाती हैं। ऐसे ही कर्म आत्मा से चिपक जाते हैं, बंध जाते हैं। धूली का वस्त्रों पर चिपकने का कारण? उस वस्त्र में जितनी चिकनाहट होगी उतनी ही धूल उस वस्त्र पर उस हिसाब से चिपकेगी। अगर आप आपने वस्त्र पर तेल लगाकर बाहर निकले तो फिर कार्बन आपके वस्त्रों पर ज्यादा लग जायेगा। वह हिस्सा काला-काला हो जाएगा। इसी तरह से आत्मा में भी रागद्वेष के परिणामों की चिकनाहट होती है। उसी के अनुसार उसको कर्मरूपीधूली का बंध होता है। वह उस धूली को हटाकर अपने उपयोग को शुद्ध बनाकर केवलज्ञान से सभी ज्ञेय भूत पदार्थों को जान लेता है। इसी का नाम पुरुषार्थ कहलाता है।

प्रवचन०९ – शुद्धोपयोगकाफल (गाथा०१६-०१७)

तध सो लद्धसहाओसव्वण्हूसव्वलोगपदिमहिदो।
भूदोसयमेवादाहवदिसयंभुत्तिणिद्दिट्ठो॥ १६ ॥

शुद्धोपयोग बल से निज भाव पाता, सर्वज्ञ हो जगत पूज्य स्व को बनाता।
आत्मा इसी तरह ही बनता स्वयंभू, ऐसा कहें जिन, बने खुद ईश शंभू।।

अन्वयार्थ- (**तध**) इस प्रकार (**सो आदा**) वह आत्मा (**लद्धसहाओ**) स्वभाव को प्राप्त (**सव्वण्हू**) सर्वज्ञ (**सव्वलोगपदिमहिदो**) और सर्व लोक के अधिपतियों से पूजित (**सयमेवभूदो**) स्वयमेव हुआ होने से (**सयंभुवदि**) स्वयंभू हैं, (**त्तिणिद्दिट्ठो**) ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

सव्वण्हूअथार्थ सर्वज्ञ कौन हैं?

तधअर्थात् इस प्रकार।**सो**अर्थात् वह।**लद्धसहाओ**जिसने अपने स्वभाव को प्राप्त कर लिया है।लद्ध सहाओजिसने अपने स्वभाव को प्राप्त कर लिया है वह कौन हो गया? **सव्वण्हू।**उन्हें हम सर्वज्ञ कहते हैं। जो पिछली गाथा में बताया था कि उपयोग की विशुद्धि होने से जिन्होंने अपने आवरणीय कर्मों को, अंतराय कर्मों को और मोहनीय कर्मों का नाश कर लिया, वह सभी ज्ञेयों को जानने लगे। उन्हीं के बारे में यहां बताया जा रहा है कि वो ऐसा करके क्या कहलाने लगे या क्या हो गए? तो जिन्होंने अपने इन कर्मों का नाश करके समस्त ज्ञेयों को जान लिया वही हमारे लिए अब**सव्वण्हू**हो गए। प्राकृत में सर्वज्ञ को**सव्वण्हू**बोलते हैं। विष्णु को**विण्हू**बोलते हैं, ऐसे ही सर्वज्ञ को सव्वण्हू**।**तो वह सर्वज्ञ हो गए और सर्वज्ञ होने का मतलब? उन्हें अपने स्वभाव की प्राप्ति हो गयी। किसकी? स्व-भाव की। मतलब जो आत्मा का स्वभाव था, वह स्वभाव उन्हें प्राप्त हो गया। इससे पहले आत्मा के स्वभाव को प्राप्त नहीं किया जा सकता। जब तक कि यह अंतराय, मोहनीय, ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का नाश नहीं होता। यह होने पर ही वह स्वभाव को प्राप्त हो गये और तभी वह**सव्वलोगपदिमहिदो**समस्त लोग के जो अधिपति हैं, उनसे वह पूजित हो गए। जैसे ही केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, देवता लोग आकर के उस केवलज्ञान की पूजा करने लग जाते हैं।

कैसे पता पड़ेगा आपको कि केवलज्ञान हो गया?

आपको अर्थात देवों को। कभी केवलज्ञान की प्राप्ति होगी तो किसको होगी? अरिहंतो को? अरिहंतो को केवलज्ञान की प्राप्ति करके क्या करना हैं? केवलज्ञान की प्राप्ति तो मुनि महाराज को ही होगी। आपको तो

नहीं होगी। तो जैसे ही केवलज्ञान की प्राप्ति होगी तो क्या होगा? **सव्वलोगपदिमहिदो**उनके चरण कमल समस्त लोकों के जो अधिपति हैं अर्थात देव होंगे, देवों के भी अधिपति होंगे, चक्रवर्ती होंगे, सब उनकी पूजा करने के लिए पहुंचेंगे। शास्त्रों में कई बार ऐसा प्रसंग आता है कि किन्हीं के लिए केवलज्ञान की प्राप्ति हुई और बहुत सारे देव लोग उनकी पूजा करने के लिए जा रहे हैं। ऐसा ज़रूरी नहीं हैं की तीर्थंकर भगवान के ही केवलज्ञान की प्राप्ति होने पर ही पूजा होती हैं। सामान्य केवली की भी केवलज्ञान होने पर पूजा होती है और देव लोग उनकी पूजा करने के लिए पहुंचते हैं। ऐसा शास्त्रों में प्रसंग, पदमपुराण आदि में मिलते हैं। जब सीता के लिए अग्नि परीक्षा का समय था तब देव लोग अनन्तवीर्य केवली की पूजा करने के लिए ही जा रहे थे और रास्ते में देखा की यह क्या हो रहा है? तो देव लोग उनकी रक्षा करने में लग गए। यह भी एक प्रसंग है जो आपको बताया।

वह स्वयंभू क्यों कहलाते हैं?

तो इसलिए आपको यह बताया जा रहा है कि जब सर्वज्ञ बन गए तो वह आत्मा कैसे हो गए? समस्त लोकों के जो भी अधिपती हैं, राजा हैं, उन सब से वह पूजित हो जाते हैं।**भूदोसयमेवादा**और वह आत्मा स्वयं ही हुआ होने से**हवदिसयंभुस्वयंभू**हो जाते हैं**त्तिणिद्दिट्ठो**अर्थात इस प्रकार से उन्हें स्वयंभू कहा जाता है।**स्वंभवतीइत्तीस्वयंभू। स्वंभवती**का मतलब जो स्वयं ही हो रहे हैं। स्वयं ही हुए हैं। इसमें पर ने कुछ नहीं किया, स्वयं ने ही स्वयं में सबकुछ किया। इसलिए वह क्या कहलाते हैं? स्वयंभू।

स्वयंभू कौन बनते हैं?

आचार्य समन्तभद्र महाराज ने आदिनाथ भगवान की स्तुति इसी स्वयंभू शब्द से प्रारम्भ की है।**स्वयम्भुवाभूतहिते न भूतले**कि हे भगवान ! आप स्वयंभू हो। स्वयं अपने में हुए हो। आपने खुद ने अपने में सारा का सारा पुरुषार्थ किया है और वह पुरुषार्थ अपने में ही, अपने अंदर समाकर किया है। जिन भी भव्य जीवों को इस तरह का पुरुषार्थ करने की भावना होगी, जो सर्वज्ञ बनना चाहेंगे, वह भी कैसे कहलाएंगे? वह भी स्वयंभू बनकर, स्वयंभू कहलाएंगे और वह पुरुषार्थ भी स्वयं ही करेंगे। आप क्या समझते हो? आपको कोई स्वयंभू बना सकता है? सर्वज्ञ बना सकता है? कोई आपको केवलज्ञान प्राप्त करा सकता है? कोई आपके ज्ञानावरण आदि कर्मों का नाश करा सकता है? जब तक आप नहीं चाहोगे तब तक कुछ नहीं होगा। आपको चाहने का मतलब क्या है? कि हाँ हमको ऐसा करना है तो हम इस प्रकार के पुरुषार्थ की प्रक्रिया करेंगे। तभी वह प्रक्रिया घटित होती हैं।

षटकार की क्रिया

आपने एक चीज़ संस्कृत में पढ़ी होगी। कर्ता ने, कर्म को, करण के द्वारा, समप्रदान के लिए, आपादन से और अधिकरण में। अब इसी को षटकार की क्रिया कहा जाता है। छह कारक होते हैं। संबंध कारक को छोड़ करके। संबंध हमेशा दूसरों से ही जुड़ता है और संबंध को छह कारकों में स्वीकार नहीं किया जाता है। तो छह कारक की क्रिया षटकार की क्रिया होती है और यह षटकार की क्रिया में देखें तो भगवान ने सबकुछ अपने में अपने लिए किया। कर्ता अर्थात स्वयं उस आत्मा ने, स्वयं को कर्म बनाया, स्वयं के द्वारा बनाया, स्वयं के लिए बनाया, स्वयं से बनाया और स्वयं में बनाया। आप पूछते हो महाराज कि ध्यान में क्या होता हैं? यही होता है। जो पुरुषार्थ हम बाहर पर के साथ करते थे, अब वो सारा का सारा पुरुषार्थ स्वयं का, स्वयं में, स्वयं के लिए, स्वयं के साथ ही होता है। यही होता है ध्यान। बस यही करते रहो। और इसमें करते करतेकरते आपका मन जब बिल्कुल एकाग्र हो जाएगा, जब बिल्कुल उसी में टिक जाएगा और इस प्रकार से करते करते जब वह मन अन्तर्मुहूर्त के लिए स्थिर हो जाएगा तो समझ लेना केवलज्ञान हो गया। इसको बोलते हैं निश्चय षटकार की क्रिया।

निश्चय षटकार और व्यवहार षटकार

अब षटकार के साथ में एक चीज़ और जुड़ गयी वह है - निश्चय। तो वह निश्चय का मतलब क्या हो गया? वहाँ दूसरे में, दूसरे के लिए, दूसरे के द्वारा कुछ नहीं होगा। सब कुछ स्वयं में, स्वयं के द्वारा, स्वयं के लिए होगा। यही निश्चय का अर्थ होता हैं। निश्चय में पर का कोई हस्तक्षेप नहीं होता हैं। और व्यवहार में पर के बिना कुछ नहीं होता। दोनों उलटे हैं। व्यवहार में पर का आलम्बन होता हैं, पर के साथ ही सब कुछ होता हैं। और निश्चय में स्व का आलम्बन होता है , स्व के साथ ही सबकुछ होता है। इसीलिए कुछ लोग जब निश्चय षटकार की व्यवस्था को पढ़ते हैं या समझते हैं तो वह व्यवहार को गलत कहने लग जाते हैं। क्या समझे? जबकि आचार्य कहते हैं कि गलत कुछ भी नहीं है। जब आप व्यवहार नय से प्रवृति कर रहे हो, जब आप व्यवहार में हो, तब व्यवहार षटकार की चलेगी। जब आप निश्चय से करेंगे तो निश्चय की षटकार चलेगी। षटकार से सबको समझ आ रहा है? छह कारक जिसमें चल रहे हैं, वह षटकार की व्यवस्था।

एक निश्चय षटकार की क्रिया या व्यवस्था और एक व्यवहार षटकार की क्रिया या व्यवस्था।

व्यवहार में क्या होगा? पर करने वाला होगा। कर्त्ता कौन? पर। किसको करेंगे? पर को। किसके द्वारा करेगा? पर के द्वारा। किसके लिए करेगा? पर के लिए। किससे करेगा? पर से। किस में करेगा? पर में। सीख लो। षटकार की व्यवस्था तो सीख ही लो। छह कार की क्रिया। बड़ा अच्छा इससे ज्ञान उत्पन्न होता है कि व्यवहार में पर रूप षटकार की क्रिया होती है और निश्चय में स्व रूप षटकार की क्रिया होती है। स्व में ही सब कुछ

होता है। व्यवहार को हम गलत नहीं कह सकते हैं क्योकि जब हम व्यवहार से कह रहे हैं तो व्यवहार से वह चीज़ सही है। आत्मा कर्म का कर्ता है। है कि नहीं?

आत्मा व्यवहार नय से पर का कर्ता लेकिन निश्चय नय से स्व का ही कर्ता।

आत्मा कर्म का कर्ता है तो आत्मा स्व द्रव्य को तो नहीं कर रहा है, पर द्रव्य को कर रहा है और यह भी आचार्यों ने स्वीकार किया है। स्वयं कुन्दकुन्द देव ने भी स्वीकार किया है कि यह आत्मा व्यवहार नय से पर का कर्ता होता है लेकिन निश्चय नय से स्व का ही कर्ता होता है। व्यवहार नय से इस आत्मा ने कर्म को किया तो उसने क्या किया? कर्म को करने का मतलब है कि उसने कर्म को अपने साथ में उन् कर्म वर्गणाओ के साथ में परिणमन करा लिया। जो कर्म के पुदगल परमाणु आत्मा के प्रदेशो पर बैठे थे, उन्हें अपने में बांध लिया। इस का नाम है - कर्म को कर लिया। और जब निश्चय की बात होगी तो निश्चय में आत्मा कभी भी कोई पर द्रव्य का कर्ता होता नहीं। कोई किसी का कुछ कर सकता नहीं। वह अपने में ही सब भाव अपने लिए करेगा।

स्वयंभू बनना है तो कैसे बना जाएगा?

निश्चय षटकार की क्रिया के माध्यम से बना जाएगा। व्यवहार षट क्रिया को छोड़ कर निश्चय षट क्रिया में लीन होते-होते जब शुक्ल ध्यान की स्थिति बन जाती हैं और उसमे जब विशुद्धि बढ़ते-बढ़ते**जब टिकाव मन का बढ़ जाता हैं**तब वह केवलज्ञान को प्राप्त करा देता है। इसीलिए केवलज्ञान का कारण क्या है? निश्चय षटकार की क्रिया, जो ध्यान रूप जो है। और बाकि की जो व्यवहार षटकार की क्रिया है वह सब क्या है? वो सब निश्चय के लिए कारण बन सकती है यदि निश्चय का उदेश्य रख कर की जा रही है तो। क्या समझ आ रहा है?

छह कारकों की क्रिया

छह कारकों में एक कर्त्ता होता है, एक कर्म होता है, एक करण होता है। कर्ता नहीं जानते? जो स्वयं कार्य करे।**स्वतंत्रः कर्ता**जो स्वतंत्र है, वो कर्ता है। जो स्वयं कर रहा है। जिसको कर रहा है, वह कर्म हो गया। जिसके माध्यम से कर रहा है, वह करण हो गया। जिसके लिए कर रहा है, वह उसका सम्प्रदान हो गया। जिससे से कर रहा है, अपादान। अपादान में क्या होता है? कि पहली चीज़ से हट गया तो दूसरी में आ गया। अपादान जैसे वृक्ष पर फल लगा था तो वह फल वृक्ष से हाथ में गया और ज़मीन पर आ गया। वृक्ष से फल गिरा। और फिर जिसमे हो रहा होता है उसे अधिकरण कहते हैं। यह छह कारकों की क्रिया है। अब इसको

कर्म के साथ पहले व्यवहार रूप में समझते हैं। क्योकि निश्चय रूप में समझने में थोड़ी कठिनता हो सकती है। अगर व्यवहार रूप में समझ आ सकती है तो निश्चय रूप में भी समझ आने लगेगी।

व्यवहार रूप में षटकार की क्रिया का उदाहरण

एक उदाहरण। जो हम जीव आत्मा हैं उसे कर्म के साथ ही घटाते हैं। जीव कर रहा है। क्या कर रहा है? संसार दशा में कर्म करता है तो कर्म उसके लिए कर्म हो गया। जीव कर्ता हो गया। उसने कर्म बांधा। जो नया कर्म बंधा, वो उसका क्या हो गया? कर्म हो गया। किसके द्वारा किया? अपने राग द्वेष परिणामो के द्वारा किया। वो उसका राग द्वेष परिणाम क्या हो गया? करण हो गया। सम्प्रदान अर्थात किसके लिए किया? अपने राग द्वेष की संतुष्टि के लिए किया। नहीं समझ में आ रहा? जो राग उत्पन्न हो रहा था, उसी की संतुष्टि के लिए किया तो यही उसका सम्प्रदान हो गया। जीव अपने लिए कुछ नहीं कर रहा है। किसके लिए कर रहा है? अपने राग द्वेष की संतुष्टि के लिए कर रहा है। और राग द्वेष भी क्या है? कर्म है। कर्म से उत्पन्न हुए भाव हैं। जीव के अपने स्वभाव भाव तो नहीं हैं। तो देखो जीव ने कर्म को किया, राग द्वेष उसके लिए करण हो गए। इनके द्वारा किया और किसके लिए किया? अपने राग द्वेष की संतुष्टि के लिए किया या उसकी वृद्धि के लिए किया। अपादान - किस से किया? तो पहले जो राग था, उसी से नया राग और किया। पहले उसके अंदर जो राग का उदय आ रहा था, उसी राग के उदय से उसने नया राग और किया। तो राग से राग किया, ये उसका अपादान हो गया। ये पंचमी विभक्ति हो गयी। राग से नया राग हो गया। और किस में हो रहा है? तो जीव - जीव में कर रहा है, ये अधिकरण हो गया। यह छह कार की व्यवस्थाहै। आप कहीं भी घटित कर लो। आपके भवन में, आपके शरीर में, आपके पुत्र उत्पत्ति में, कही पर भी घटित कर लो। करने वाला कौन? किसको कर रहा है? किस से कर रहा है? किसके लिए कर रहा है? किस से कर रहा है और किस में कर रहा है? यह हो गयी षटकार की क्रिया।

षटकार की क्रिया का एक और उदाहरण

एक उदाहरण और समझा देते हैं। जो जगत प्रसिद्ध बात चलती है, कुम्हार का घड़ा। मिट्टी से अपने को घड़ा बनाना हैं। कौन बनाएगा? आप तो नहीं बनाओगे, कुम्हार बनाएगा। तो मिट्टी से घड़ा बनाने में कर्ता कौन? वह मिट्टी को कर्ता नहीं कहेंगे। वह कर्ता कौन? कुम्हार कर्ता होगा। कुम्हार बना रहा हैं। मिट्टी कर्म है उसके लिए। करण वह डंडा है, जिसके घूमने से मिट्टी लौंधा बन रही है और घड़ा बन रही है। वह सब चाक, डंडा, उसके हाथ का प्रयोग, यह सब क्या है? करण हो गया। फिर सम्प्रदान- के लिए, किसके लिए कर रहा है? घड़ा बना रहा है तो आपके लिए बना रहा होगा क्योंकि आपको ठंडे पानी की ज़रूरत पड़ती है। उसको पैसे की ज़रूरत पड़ती है, इसके लिए बना रहा है। वोसम्प्रदान हो गया उसका। फिर किस से बनेगा? तो सबसे पहले की जो पर्याय

होगी, उससे वो घड़ा बन गया। चाहे वह लौंधा किसी भी रूप में बन गया हो। और उस लौंधे से बना तो उससे घड़ा बन गया। मिट्टी का जो एक अलग shape बन जाता है, उसको लौंधा बोलते हैं। उससे वह घड़ा बन गया तो वह उसका अपादान हो गया। किसमे बन रहा है घड़ा? चाक में? कह सकते हैं, चाक में बन रहा है, कीली में बन रहा है तो उसका अधिकरण वह किली हो गयी, जिस पर वह चाक रखा हुआ है। समझ आ गया?

तो अब हर चीज़ में घटित करते रहना। कपड़ा बनाओ तो, रोटी बनाओ तो। यही लगाना। व्यवहार षटकार की क्रिया। और समझ में न आए तो पूछ लेना। आखिर समझो तो हम क्या कर रहे हैं? यह व्यवहार की क्रिया तो समझ में आ रही है ना? और व्यवहार की ही समझ में आएगी। निश्चय की तो समझ में नहीं आएगी। हम निश्चय में स्वयं ने, स्वयं को, स्वयं से, करते रहेंगे तो कुछ समझ नहीं आएगा आपको। पहले व्यवहार को तो समझ लो।

अब देखो कि इस व्यवहार से निश्चय को कैसे समझा जाए?

जब तक ये जीव आत्मा रागद्वेष आदि के परिणाम करता है, यह क्या है? अपने कर्म के लिए क्रिया कर रहा है। अपने रागद्वेष से अपने कर्म बांध रहा है। अपने रागद्वेष के द्व्रारा बांध रहा है। उसी की संतुष्टि के लिए बांध रहा है। तो यह सब उसके व्यवहार की षटकार की क्रिया चलती रहती है। अब इसको निश्चय षटकार में कैसे समझे? अब आप उसको ऐसे समझो। जैसे घड़े का ही उदाहरण ले लो। अब इसी में निश्चय षटकार की क्रिया लगाना है। निश्चय में क्या होता है? कर्ता कोई दूसरा नहीं, कर्म कोई दूसरा नहीं, करण भी कोई दूसरा नहीं, सम्प्रदान भी कोई दूसरा नहीं, अपादान भी कोई दूसरा नहीं, और अधिकरण भी कोई दूसरा नहीं, एक ही में सब घटित करना हैं। करो। किसमें करोगे?

निश्चय रूप में षटकार की क्रिया का उदाहरण

घड़ा बन रहा है? किस से बन रहा है? मिट्टी से बन रहा है तो घड़े का जो अपादान कारण है वह मिट्टी कहलाई। इसको क्या बोलते हैं? अपादान कारण। जिसके बिना घड़ा कभी बन नहीं सकता है। कुम्हार कभी घड़ा नहीं बना सकता है। अगर मिट्टी न हो तो। घड़े में कौन ढल रही है? मिट्टी। तो मिट्टी में ही यह षटकार की क्रिया घटित की जाएगी। वो निश्चय षटकार की समझो। अब कैसी होगी? मिट्टी ही कर्ता है। कुम्हार कर्ता नहीं होगा। जब निश्चय षटकार की बात आएगी तो मिट्टी कर्ता है। मिट्टी ही मिट्टी को कर रहा है। कर्म- मिट्टी ही मिट्टी का कर्म बनेगी। क्योकि जो मिट्टी लाई गयी, उसमे पानी मिलाया गया, लौंधा के रूप में बनी। सब मिट्टी ही बन रही है। मिट्टी ही मिट्टी का कर्म है। किससे बन रही है? मिट्टी से बन रही है। आप चाहे बाहर कुछ भी

मिलाओ। उसको कुटो-पीटो, उसमे पानी मिलाओ। लेकिन मिट्टी ही तो मिट्टी से बन रही है। तो मिट्टी के द्वारा ही मिट्टी लौंधा बन रही है। मिट्टी के द्वारा ही लौंधे का घड़ा बनाया जा रहा है तो सब मिट्टी के द्वारा ही हो रहा है।

निश्चय की दृष्टि में व्यवहार को छोड़ो

अब अपनी दृष्टि को बदलो थोड़ा सा। निश्चय की दृष्टि में व्यवहार को छोड़ो। पर को छोड़ो। बाहर को छोड़ो। केवल उसी को देखो, जिसमे क्रिया हो रही है। कुछ सीखना है कि नहीं सीखना। व्यवहार की दृष्टि छोड़ना हैं की नहीं छोड़ना? निश्चय को प्राप्त करना हैं कि नहीं करना? कैसे करोगे? थोड़ी अपनी दृष्टि बदलो। कैसे बदलोगे? दिमाग change करो, किसी चीज़ को देखने की। आप बाहरी चीज़ो पर दृष्टि मत रखो। केवल मिट्टी पर दृष्टि रखो। मिट्टी कर्ता, मिट्टी कर्म, मिट्टी के द्वारा ही मिट्टी के लिए ही, मिट्टी से ही, मिट्टी में घड़ा बन रहा है। मिट्टी कर्ता है, मिट्टी का ही कर्म चल रहा है, मिट्टी के द्वारा ही हो रहा है। जो होता जा रहा है, मिट्टी का ही मिट्टी में मिलता जा रहा है। मिट्टी के द्वारा हो रहा है, मिट्टी के लिए ही हो रहा है तो मिट्टी के लिए ही बनता चला जा रहा है न वो। तो मिट्टी के लिए ही हो रहा है और मिट्टी से ही हो रहा है। जब हम उसको रोंधते हैं, कुछ करते हैं, पुरानी पर्याये उसकी छूटती जा रही है। पर्याय मिट्टी से ही मिट्टी में उत्पन्न होती चली जा रही है।**स्थास, कोश, कुसूल**ये जो पर्यायों के नाम हैं, यह सब उसमे ही बनते चले जा रहे हैं। मिट्टी से मिट्टी में घड़ा बनता चला जा रहा है और मिट्टी में ही बना रहा है। और कही तो नहीं बनेगा? चाक में तो नहीं बनेगा? किसमे बन रहा है? मिट्टी में। यह क्या हो गयी? यह निश्चय षटकार की क्रिया हो गयी।

रोटी बनाने में व्यवहार षटकार और निश्चय षटकार की क्रिया।

अब रोटी बनाना सिखाऊं क्या? उसमे लगाओ। अब व्यवहार षट कार की भी चल रही है और निश्चय षट कार की भी चल रही है। किस में? रोटी में। कैसे बनेगी रोटी? आटे से बनेगी। आटे से रोटी की प्रक्रिया जब तक बनाते चले जाओगे, उसमे जो कुछ भी करोगे, उसमे पानी मिलाओगे, उसको बेलन से चलाओगे, चकले पर रखोगे, सब जो आप करते जाओगे। आटे के अलावा जो कुछ हो रहा है। करने वाला जिसके लिए कर रहा है, वह सब पर के साथ हो रहा है। उसको देखो व्यवहार की दृष्टि से और जिसमे हो रहा है उसको देखो निश्चय की दृष्टि से। इसमें आटे में ही सब निश्चय षट कार की क्रिया घटित होगी। आटे से रोटी बन रही है तो रोटी किसने बनाई? आटे ने बनाई। आपने नहीं बनाई। सुन लो, लड़ाइओ की वजह सुन लो। अगर हम यूँ कहे कि निश्चय से रोटी किस ने बनाई? आटे ने बनाई। समझ में आया? किसके लिए बनाई? आटे के लिए ही बनी हैं रोटी। किसके द्वारा बनाई? आटे के द्वारा। किसमें बनाई? आटे में बनाई। किस से बनाई? आटे से बनाई। बनाने वाला कौन? आटा। किसको बना रहा है? आटे को। यह सब क्या हो रहा है? यह सब निश्चय षटकार की

क्रिया चल रही है। भव्य आत्माओं ! रोटी बनाते हुए भी यदि निश्चय का भान बना रहे तो समझते रहोगे की देखो ! कैसे निश्चय में, सब कुछ रोटी में, बनने की क्रिया में, सबकुछ आटे में ही होता चला जा रहा है। और करते भी जाओ, आपने आप तो आटा रोटी नहीं बन जाएगा। भले ही मशीन से बनाओ। किसी से भी बनाओ। कोई दूसरा तो सहायक होगा। लेकिन सहायक जितनी भी चीज़े होंगी, वह सब छूट जाएंगी, जब रोटी बनकर तैयार होगी। कोई उसमेघुस नहीं जाएगा। ना आपके हाथ उसमे घुस गए, न बेलन उसमे घुस गया, न चकला उसमे घुस गया। कुछ भी नहीं। रोटी अपने आप में स्वतंत्र है। बाकि सब चीज़े बाहर छूट गयी।

क्या निश्चय को प्राप्त होने के बाद व्यवहार झूठा हो जाता है?

व्यवहार सब बाहर छूट जाता है और निश्चय को प्राप्त होने के बाद व्यवहार झूठा है, ऐसा कहने में आ जाता है। वस्तुतः देखा जाए तो ऐसा कहना भी थोड़ा सा सही नहीं लगता है। ऐसे कहना सही लगता है क्या? अपना काम हो गया तो हमने दूसरे को झूठा बना दिया। अरे इतना तो कहो तुम्हारे सहयोग से हुआ। इतना कहने में क्या जा रहा हैं? यही लड़ाई है बस दुनिया में। निश्चय और व्यवहार की लड़ाई बस इतनी सी है। निश्चय को जानने वाला, निश्चय को मानने वाला, व्यवहार को झूठा बोलता है। व्यवहार को असत्य बोलेगा।

समीचीननयों को जानने वाले के लिए व्यवहार क्या है?

और जो समीचीननयों को जानने वाला है, वो कहेगा भई ! इसमें झूठे सच्चे की क्या बात हो गयी? अगर पर की बात करोगे तो व्यवहार है और केवल अपने की बात करोगे तो निश्चय है। व्यवहार नय से पूछोगे किसने बनाई रोटी? तो हमने बनाई। और निश्चय नय से पूछो कि रोटी किसने बनाई? तो आटे ने बनाई। कोई लड़ाई वाली बात ही नहीं है। अब अगर यह हट पकड़ लो कि नहीं रोटी तो आटे से, आटे में, आटे के द्वारा ही बनती है। कोई उसमे कुछ नहीं बना सकता। कोई उसमे कुछ नहीं कर सकता। तो हट पकड़ने से तो आपका भाव गड़बड़ दिखता है थोड़ा सा। व्यवहार को भी ध्यान रखना ही पड़ेगा।

अदर्शेष्टदोषकम – दृष्ट और इष्ट प्रमाण

इसी को रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा गया**अदर्शेष्टदोषकम**जिनवाणी में जो कुछ भी लिखा हुआ है, वह दृष्ट और इष्ट से विरोध को प्राप्त नहीं होता है। यानि जो हमे दिखाई देने वाला लौकिक व्यवहार हैवह सारा का सारा व्यवहार भी इन्ही व्यवहार नय और निश्चय नय के द्वारा जानने में आता है। बताया जाता है और यदि कोई आलौकिक मार्ग पर चलने वाला होता है तो उसकी प्रक्रिया भी इसी व्यवहार नय और निश्चय नय से बताई

जाती है। ऐसा नहीं है कि मोक्ष मार्ग के लिए नय अलग होते हैं और संसार मार्ग के लिए नय अलग होते हैं। आचार्यों ने क्या कहा? जो चीज़ भी हमे सिद्ध करनी होगी, वह दृष्ट और इष्ट प्रमाण से ही सिद्ध होगी।

दृष्ट अर्थात प्रत्यक्ष प्रमाण से

जो चीज़ हमे दिखाई दे रही है, वह चीज़ हमे प्रत्यक्ष से जैसा है, वैसा ही स्वीकार करना।

इष्ट अर्थात अनुमान से

यदि कोई चीज़ सिद्ध हो रही तो अनुमान भी वैसा ही स्वीकार करना। व्यवहार कहीं भी गलत नहीं होता है। व्यवहार में जिस तरह से न्याय लगता है, निश्चय में भी उसी तरह से न्याय लगता है। लौकिक मार्ग में, संसार के मार्ग में जिस तरह नयो का प्रयोग किया जाता है, मोक्ष मार्ग में भी उसी तरह से नयो का प्रयोग होता है। ये जैनाचार्यों की बहुत बड़ी दृष्टि है।

जैनाचार्यों की दृष्टि में संसार

उन्होंने संसार को कभी भी झूठा नहीं कहा कि संसार में जो हो रहा है, वह सब गलत है। ऐसा नहीं है। जो हो रहा है, वह उस दृष्टि से सही है। व्यवहार से पर का आलम्बन लेना सही है। पर के द्वारा क्रिया करना सही है। और निश्चय से सब चीज़ेस्व द्रव्य में, अपने में, उपादान में ही घटित होती हैं। घड़ा बनेगा तो मिट्टी की उपादान शक्ति से बनेगा। कपडे की उपादान शक्ति से नहीं बनेगा। वह किससे बनेगा? मिट्टी से। घड़े के लिए क्या चाहिए? मिट्टी ही चाहिए, पत्थर नहीं चाहिए, कपड़ा नहीं चाहिए। समझे? और कोई दूसरे द्रव्य ईंट आदि नहीं चाहिए। मिट्टी ही चाहिए। तो जो चीज़ जिससे बनेगी, वो चीज़ उसके लिए अपनी उपादान शक्ति कहलाती है। और निश्चय से जब हम देखते हैं तो हर चीज़ उपादान में ही घटित हो रही है। क्रियाएं, कर्ता, कर्म सब कुछ कहाँ घटित हो रहा है? सब उसी उपादान शक्ति में हो रहा है। और व्यवहार से देखते हैं तो दूसरे के द्वारा भी कर्ता बना जा रहा है, दूसरे के द्वारा कर्म भी बना जा रहा है, करण भी हमारे सामने दूसरा है। सब कुछ दूसरा भी होता है।

ज्ञान सम्यग्ज्ञान कब बनेगा?

दोनों दृष्टियों को स्वीकार करने पर ही आपका ज्ञान सम्यग्ज्ञान बनेगा। व्यवहार नय और निश्चियनय। दोनों से समझो वस्तु व्यवस्था। एक का आग्रह करोगे तो एकांतिकमिथ्यादृष्टि कहलाओगे। मैं नहीं कह रहा, शास्त्र कह रहे हैं। कोई भी चीज़ एकांत अभिप्राय से गलत हो जाती है।

कहाँ से शुरु हुआ मोक्ष मार्ग?

आचार्य कहते हैं यह आत्मा स्वयं में स्वयं के द्वारा होता होताहोता चला गया और क्या बन गया? स्वयंभू बन गया। अब इस स्वयंभू बनने के लिए पर की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी कभी भी? कब पड़ी? अरे जब से मोक्ष मार्ग शुरु हुआ तभी से पड़ी। कहाँ से शुरु हुआ मोक्ष मार्ग? जबसे आपने भाव किया कि हमे मोक्ष मार्ग पर चलना हैं। हमें श्रमण बनना हैं, मुनि बनना हैं तभी से पड़ गयी। क्या पड़ गई? आपको मोक्ष मार्ग पर चलना हैं तो आपने क्या किया? क्या किया पहले आपने? संयम को धारण किया। कुछ तो किया। पहले आपने संयम धारण किया। संयम धारण करने के लिए क्या किया? कपड़ों का त्याग किया, परिग्रह का त्याग किया। नहीं किया? तो जब अभी हम मोक्ष मार्ग की शुरुआत में देखते हैं, तो पर की आवश्यकता पड़ रही है कि नहीं? कर्ता तो मैं स्वतंत्र हूँ। मैं आत्मा हूँ, सब जान रहे हैं। लेकिन कर्म करना हैं तो क्या करना हैं? मोक्ष पुरुषार्थ का कर्म करना हैं। और वह कर्म कैसे होगा? घर से बाहर निकलो। घर में बैठ कर नहीं होगा। नहीं समझे? घर से बाहर निकलो। तो जंगल तक चल कर जाओ। जहां तुम्हारे लिए दीक्षा देने वाले दूसरे गुरु बैठे हैं। उनको गुरु बनाओ, उनके पास तक पहुँचो। यह क्या हो रहा है? यह सब कर्म नहीं हैं? किसके द्वारा किया जा रहा है? बाहरी चीज़ भी तो देखो। अपने द्वारा अपने में सब चल रहा है लेकिन बाहरी चीज़ भी तो कोई सहयोगी बन रही है।

दीक्षा भी पर में क्रिया हो रही है

दीक्षा देने वाला कौन? कोई गुरु तुमको दीक्षा देगा, संस्कार देगा। एक तीर्थंकर की बात छोड़ दो बाकि सब तो गुरु से दीक्षा लेते ही हैं। और तीर्थंकर भी अपने पूर्व जन्म में दीक्षा लिए ही हैं। मोक्ष मार्ग तो बहुत पहले से शुरु हो गया है उनका। और जब उन्होंने यह सब किया, घर छोड़ा, घर से अलग हुए, अपादान हुआ कि नहीं? घर से अलग हटो, जिनसे पहले attachment था, उनसे अलग हटो। उनसे दूर हो पहले। जो परिग्रह था, उससे अलग हटो। जो राजे रजवाड़े, बच्चे, रानियां, सबसे अलग हटो। यह क्या हो रहा है? यह पर में क्रिया हो रही है या स्व में क्रिया हो रही है? पर में हो रही हैं ना। घर से जंगल चलो, गुरु के द्वारा हुआ, संयम के लिए व्रतों को अपनाया, व्रतों की भावना की। अभी स्व की भावना नहीं की। अभी व्रतों की भावना की। व्रतों का पालन करना और फिर वह सब करते-करते ऐसी स्थिरता आ जाना कि बिलकुल ध्यान में ऐसा लीन हो जाना कि वहां पर बाहर न गुरु बचे, न कोई घर, वन। जंगल में बैठा हूँ, न यह ध्यान रहे। न कोई शरीर इन्द्रिय का कुछ काम हो। बिलकुल आत्मा में, आत्मा के लिए, आत्मा के द्वारा, आत्मा को, आत्मा से, आत्मा में प्राप्त करते चले जाना। यह क्या हुआ? निश्चय। लेकिन व्यवहार के बिना नहीं हुआ।

व्यवहार मोक्ष मार्ग

पहले व्यवहार फिर निश्चय और इस तरह के निश्चय से ही यह कहलाया - व्यवहार मोक्ष मार्ग। कौन सा? जो हम घर से बाहर आए, संयम धारण किया, संयम का अभ्यास किया, वस्त्र त्याग किये, गुरु से दीक्षा धारण की, केश लोंच लिया, यह सब पर में चल रहा है। शरीर आश्रित। लेकिन किसके लिए हो रहा है? स्व के लिए। उसमे भी तोकुछ न कुछ परिवर्तन आ रहा है कि नहीं आ रहा है।नहीं आएगा? आटे में क्रिया आप कर रहे हो लेकिन परिवर्तन आप में नहीं आता? परिवर्तन किस में आता है? आटे में। आटे में ही आ रहा न। दृष्टान्त याद रखो।

आत्मैवआत्मनः गुरु

तो हो तो उसी में रहा है ना। किस में? आत्मा में। आत्मा में कषायों का अभाव हो रहा है, आत्मा में विशुद्धि बढ़ रही है, आत्मा के लिए ही गुण स्थान बढ़ रहे हैं। आत्मा की ध्यान की शक्ति बढ़ रही है। सब कुछ किस में हो रहा है? आत्मा में। लेकिन किसके माध्यम से? बाहरी पर द्रव्यों के माध्यम से। और एक स्थिति ऐसी बनती है जब पर द्रव्य बिलकुल छूट जाता है।**आत्मैवआत्मनः गुरु,** क्या कहते हैं आचार्य? कि आत्मा ही आत्मा का गुरु बन जाता है। आत्मा ही आत्मा का गुरु बन जाता है। आत्मा को ही आत्मा का गुरु बनाओ। मतलब फिर एक स्थिति ऐसी आती है की हम कैसे ध्यान करे? कैसे हम संयम का पालन करे, कैसे हम ध्यान में स्थिरता लाएं? ये बातें तब तक पूछनी पड़ती हैं जब तक आत्मा आपका गुरु नहीं बना। तब तक हमको बाहरी गुरु से पूछना पड़ता है। और जब गुरु के बनाए निर्देशों में अभ्यस्त हो जाता हैं तो फिर वह स्वयं ही सीखता चला जाता है कि ध्यान कैसे करना? कैसे बैठना? कैसे ध्यान में एकाग्रता लाना, कैसे मन को रोकना। गुरु क्या क्या बताएंगे? गुरु यह तो नहीं करेंगे कि ले यह रहा तेरा मन, इससे यही रख दे। वो क्या बताएंगे? तो गुरु के माध्यम से वह प्रयास करते करते अभ्यस्त हो जाता है तो फिर**आत्मैवआत्मनः गुरु,** आत्मा ही आत्मा का गुरु बन जाता है। आचार्य पूज्यपाद महाराज इष्टोपदेश में लिखते हैं कि आत्मा ही आत्मा का गुरु बन जाता है। उस समय उसके लिए यही स्वयं में, स्वयं से यह षटकार की क्रियाऍं घटित होती हैं। तब वह स्वयंभू बन जाता है।

आत्मा स्वयंभू कब कहलाती है?

इसलिए कोई भी आत्मा जब केवलज्ञान को प्राप्त कर लेती है तो फिर वह स्वयंभू ही कहलाती है। क्योकि वास्तविक पुरुषार्थ तो उसने स्वयं में ही किया है। घटना तो स्वयं में ही की ना। घटना तो वहीं होगी जहाँ उपादान होगा। उपादान अपनी शुद्ध आत्मा, अपनी आत्मा में ही सब घटित हो रहा है। इसलिए सब कुछ जो है, आत्मा में घटित होने के कारण से वह आत्मा अपने ही पुरुषार्थ से बना, यह कहा जाएगा। लेकिन एक दम

से निश्चय के साथ में व्यवहार को झूठा मत कह देना और व्यवहार को भुला नहीं देना। नहीं तो जब तक निश्चय की प्राप्ति नहीं होती है, तब तक व्यवहार आवश्यक ही है।

एकांतमत की भ्रान्ति – केवल निश्चय नय

रोटी को बनाने के लिए आटे को गीला कौन करेगा? अपने आप गीला हो जाएगा? अपने आप तवे पर चढ़ जाएगा? अपने आप उसकी काल लब्धि आ जाएगी? बेलन उसके ऊपर चलने लग जाएगा? अपने आप? इतना निश्चय में मत बहो कि व्यवहार की क्या प्रक्रिया है और क्या उपयोगता है, उसको भी भूल जाओ। भूल जाना बाद में जब अरिहंत बन जाओगे। तब सब भूल जाओगे। लेकिन जब तक नहीं बन रहे हो उससे पहले तो याद रखो कि हमे क्या करना है? अगर निश्चय में ध्यान करने के लिए आत्मा ही आत्मा का गुरु होता है, ऐसा हमने कह दिया तो क्या करना हमे दूसरा गुरु बनाकर? जब आत्मा ही आत्मा का गुरु है। पहले दूसरे को गुरु बनाओगे तभी तो पता पड़ेगा की ध्यान कैसे होता है? संस्कार कैसे आते हैं? उसके अलावा तुम्हे कैसे पता पड़ेगा कि निश्चय में आत्मा, आत्मा का गुरु हो जाता है। जब तक हमे निश्चय की प्राप्ति नहीं होती है तब तक हमे व्यवहार षटकार की क्रिया भी उपादेय होती हैं, ग्रहणीय होती हैं। और जैस-जैसे हम उस क्रिया के माध्यम से अपने निश्चय में ढ़लते चले जाते हैं, व्यवहार अपने आप छूटता चला जाता है।

दो प्रकार का मोक्ष मार्ग ही हमे मोक्ष तक पहुँचाता है।

व्यवहार मोक्ष मार्ग कब तक था? घर का छोड़ना, जंगल में आना, गुरु से दीक्षा लेना, सम्बन्धों से ममत्व तोड़ना, संयम धारण करना, अभ्यास करना यह सब क्या चल रहा है? ये सब व्यवहार मोक्ष मार्ग चल रहा है। मुख्यता व्यवहार की है लेकिन निश्चय में कुछ हो रहा है कि नहीं हो रहा? हो रहा है। नहीं हो रहा तो ऐसा तो है ही नहीं कि अँधा होकर के कोई कुछ कर रहा हो। आटा कहीं रखा है, पानी कहीं रखा है और दोनों कहीं मिला दिए। बस तो जो हो रहा है वो उसके उस व्यवहार के माध्यम से ही हो रहा है। यही हमारा व्यवहार मोक्ष मार्ग है। अब निश्चय मोक्ष मार्ग कब बनेगा? जब व्यवहार का आभास छूट जाएगा और अपने ध्यान में वह निमग्न होगा तो वह निश्चय मोक्ष मार्ग में लीन हो रहा होगा। और जब लीन होते होतेअन्तर्मुहूर्त में उसमे लीन हो जाएगा तो वह मोक्ष को प्राप्त अर्थात केवलज्ञान को प्राप्त कर लेगा। समझ में आया? व्यवहार मोक्ष मार्ग, निश्चय मोक्ष मार्ग और फिर मोक्ष अर्थात केवलज्ञान है। फिर केवलज्ञान के बाद तो मोक्ष हो ही जाता हैं। आधा मोक्ष तो हो ही गया है। उसी को मोक्ष समझ कर चलो। तो यह प्रक्रिया है।

आप रोटी बनाते हो तो always remember it। क्या? कि निश्चय में बन रही है, उपादान में बन रही है लेकिन व्यवहार के बिना नहीं बन रही है और फिर वहीरोटी तवे पर पहुंच जाती है, तवे से उठ कर नीचे आ

जाती है। तब उसके साथ न बेलन होता है, न चकला होता है, न आप होते हो। वह तो बस रोटी ही होती है। रोटी किसकी होती है? आटे की ही होती है। आटे में से ही बनी होती है। इसलिए जब केवलज्ञान हो गया तो किसने बनाया? स्वयं आत्मा ने बनाया, स्वयं स्वयंभू कहलाएगा। लेकिन उससे पहले जो भी हुआ है,उसे झूठा नहीं कहना। तब आप सच्चे सम्यग्ज्ञानी बने रहेंगे।

स्वयंभूपना कभी अच्छा या बुरा नहीं होता है

आपकी रोटी तो अच्छी बुरी हो सकती हैं लेकिन स्वयंभूपना कभी अच्छा या बुरा नहीं होता है। लेकिन इतना ज़रूर है कि जब तक अभी उसमे अच्छा बुरापन आ रहा तब तक आप यह कह सकते हो कि यह अच्छा बुरा पन किसके कारण से आया? यह उस कर्ता की कमी के कारण से आया।

अब अच्छा बुरा पन आया तो उससे ऐसे घटित कर लो कि ध्यान में बैठा, उपशम श्रेणी में गए और उपशम श्रेणी से ही नीचे गिर के आना होता हैं तो गिर के आ गया। १२वें गुण स्थान में नहीं पहुँच पाया ना? उपशम श्रेणी में गया था। ११वें गुण स्थान से नीचे लौट करके आ गया। क्या हो गया? बुरा हो गया। तो यह बुरा किसने किया? यहां तो यही कहना पड़ेगा कि खुद ने किया। लेकिन अगर कोई पर द्रव्य के साथ में कोई घटना यदि हम करते हैं तो वह भी आपकी कुशलता-अकुशलता के कारण से अच्छा या बुरा हो रहा है। लेकिन यहां जो बुरा हो रहा है वह अपनी पुरुषार्थ कि कमी से हो रहा है। क्योंकि यहां पर हम दूसरे को बुरा नहीं कहेंगे। गुरु ने तो अपना काम कर दिया। अब आपको अपना काम करना है। आप नहीं कर पाए तो यह आपकी कमी होगी। आप बुरे हो गए, बस इतना कहा जाएगा।

केवलज्ञान का साक्षात कारण निश्चय ही कहलाएगा।

तो निश्चय में यह जो क्रिया चलती है, वह व्यवहार के साथ चलती है। और व्यवहार से ही वह निश्चय मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होने पर उससे केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। लेकिन साक्षात कारण देखा जाए तो वह निश्चय ही कहलाएगा। क्योकि वह व्यवहार तो बहुत पहले का था। छूट गया। वास्तविक कारण तो वह कहलाता है ना। जैसे घड़ा बनने से पहले जो उसका लौंधा है, वह उसका वास्तविक कारण कहलाएगा। इससे यह कार्य बना है। इसीलिए हर कोई व्यक्ति स्वयंभू ही होता है। जब भी आपको केवलज्ञान होगा तो आप क्या कहलाएंगे? स्वयंभू कहलाएंगे।

शुद्धोपयोग बल से निज भाव पाता, सर्वज्ञ हो जगत पूज्य स्व को बनाता।
आत्मा इसी तरह ही बनता स्वयंभू, ऐसा कहें जिन, बने खुद ईश शंभू।।

देखो एक नया शब्द आ गया**शंभू-** स्वयंभू**शंभू,** स्वयंभू जो स्वयं हुआ।**शंभू**अर्थात जो शम रूप हो गया। शम अर्थात शांत। साम्यभाव रूप जिसको कहा था, वह उस रूप हो गया तो वह क्या कहलाया? **शंभू**।शं अर्थात क्या होता हैं? शांत भाव। आत्मा की जो अत्यंत शांति हैं, वह जिसने प्राप्त करली है, वह कहलाया**शंभू**।

भंगविहूणो य भवोसंभवपरिवज्जिदोविणासोहि। विज्जदितस्सेवपुणोठिदि-संभवणाससमवाओ॥ १७ ॥

उत्पाद, नाश बिन है शिव में सुहाता, उत्पाद के बिन, विनाश स्वयं दिखाता।
उत्पाद-ध्रौव्य व्यय रूप परम्परा भी, हो सिद्ध में विरमती न स्वयं जरा भी।

अन्वयार्थ-(**भंगविहूणो य भवो**) उस (शुद्धात्म स्वभाव को प्राप्त आत्मा के) विनाश रहित उत्पाद हैं, और (**संभवपरिवज्जिदोविणासोहि**) उत्पाद रहित विनाश हैं, (**तस्सेवपुणो**) उसके ही फिर (**ठिदि-संभवणाससमवाओविज्जदि**) ध्रौव्य, उत्पाद और विनाश का समभाव (एकत्रित समूह) विद्यमान हैं।

आत्मा में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य

यहाँ देखो अब क्या कह रहे हैं कि ऐसा अब ये जो आत्मा बन रहा है, वह कैसा होता है? **भंगविहूणो**अर्थात विनाश रहित। वह आत्मा**विनाश**से विहीन अर्थात रहित होता हैं। जो आत्मा इस रूप से स्वयंभू बन गया अब कैसा होगा वो? नाश रहित होगा। भावो अर्थात उत्पाद। आटे से रोटी बन गयी। उद्पात हो गया न। अशुद्ध आत्मा केवलज्ञानी बन गया। नया उत्पाद हो गया। तो यह जो उत्पाद है, उत्पाद यानिभव, और यह उत्पाद कैसा होता है? **भंगविहूणो**अर्थात नाश से रहित। यानि इस उत्पाद का फिर कभी भी नाश नहीं होता है। वह उसी रूप में बना रहता है। अपने चैतन्य स्वभाव रूप ही सदा बना रहेगा। इसीलिए वह कहलाएगा भंगविहूणो य भवो**। संभवपरिवज्जिदोविणासोहि**और जो विनाश होता है, जो नाश होता है वो उत्पाद से रहित होता हैं। मतलब जो उसका नाश हुआ, उस पर्याय का, वह कैसा हैं? वह उत्पाद से रहित है। जो उत्पाद है वह विनाश से रहित है और जो नाश हुआ है वह उत्पाद से रहित है। जो नाश हो चूका है अब उसका उत्पाद नहीं होगा। जो पर्याय पिछली नष्ट हो गयी है, वह अब पुनः उत्पन्न नहीं होगी। केवलज्ञानी के लिए। जो केवलज्ञानक्षायिक ज्ञान हो गया। पहले क्या था? क्षयोपशम ज्ञान। तो अब जो क्षायिक ज्ञान उत्पन्न हो गया, अब यह कभी भी क्षयोपशम ज्ञान में परिवर्तित नहीं होगा। जो अनन्त सुख प्राप्त हो गया, उसका कभी भी नाश नहीं होगा। और जिसका नाश हो गया, उसका कभी भी उत्पाद नहीं होगा। इसलिए एक ही आत्मा में यह क्या चीज़े है?

ठिदिसंभवणाससमवाओ। ठिदि अर्थात स्थिति। संभव माने उत्पति। णास माने विनाश। तीनों चीज़ें इनका समवाओअर्थात मेल। इन तीनों चीज़ों का मेल। किसका? उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, जिसको बोलते हैं।

ध्रौव्य को यहाँ पर लिखा है - स्थिति, उत्पाद को लिखा है - संभव और व्यय को लिखा है - विनाश। तो उत्पाद व्यय, ध्रौव्य, इन तीनों का जो मेल है, यह उस आत्मा में विद्यमान है। अर्थात वह आत्मा अभी भी इन तीनों प्रकारों के साथ में स्थित है।ज उसकी पूर्व पर्याय का नाश हुआ, नई पर्याय का उत्पाद हुआ और आत्मा जो था, वही रहा। यह तो हमने लगा लिया पूर्व पर्याय की अपेक्षा से। लेकिन वर्तमान में, अब जैसे पूर्व पर्याय को नाश हुए तो बहुत समय हो गया, लेकिन उसमें जो उत्पाद, व्यय ध्रौव्य है, वह हर समय चल रहा है।

सिद्ध भगवानों में भी उत्पाद व्यय ध्रौव्य

केवलज्ञान होने के बाद उत्पाद व्यय ध्रौव्य, उनका हर समय चल रहा है। और वह कैसा चलेगा? तो अपनी जो शुद्ध पर्याय है, पिछली वाली, अब अपनी शुद्ध पर्याय तो बन गयी है, उसी शुद्ध पर्याय में हर समय पर एक नई पर्याय उत्पन्न होती है और वह पुरानी पर्याय छूट जाती है। और वह शुद्ध आत्मा ज्यों का त्यों बना रहता है। परिवर्तन का यह स्वभाव**उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्तं सत**यह जो सत को बनाये रखने का जो द्रव्य का स्वभाव है, यह कभी भी छूटता नहीं है। समझने के लिए पूर्व पर्याय के साथ में समझा दिया जाता है तो समझ में आ जाता है। लेकिन देखा जाए तो पूर्व पर्याय के बिना अर्थात अशुद्ध पर्याय के बिना शुद्ध द्रव्य में भी हर समय सिद्ध भगवानों में भी ये उत्पाद व्यय ध्रौव्य चलता है। तो उसमें व्यय किसका होगा? पहले की जो शुद्ध पर्याय है, उसका व्यय हुआ। लेकिन वह पर्याय समूची नष्ट नहीं होती। प्रति समय उसमें जो एक पर्याय निकलती रहती है, वही पर्याय अगली वाली पर्याय के लिए कारण बन जाती है। और वह अगली पर्याय का उत्पाद होगा। पिछली पर्याय का विनाश होगा और वह द्रव्य ज्यों का त्यों शुद्ध बना रहेगा। जैसे आपने घी एक बार शुद्ध बना लिया तो अब वह शुद्ध रूप में बना रहा। परिणमन होगा लेकिन अशुद्ध रूप में नहीं होगा। वह शुद्ध रूप में ही होगा। इसी तरह से यह शुद्ध द्रव्य का परिणमन एक बार होने के बाद में उनका केवलज्ञान कभी भी नष्ट नहीं होगा। सिद्ध भगवन बन गए तो सिद्ध पर्याय कभी भी नष्ट नहीं होगी। जो एक पूरी समूची पर्याय है, वह कभी नष्ट नहीं होती।

अर्थ पर्याय और व्यंजन पर्याय

पर्यायों के विभाजन होते हैं, जिनका वर्णन आगे की गाथाओं में मिलेगा। अर्थ पर्याय और व्यंजन पर्याय, ऐसी दो प्रकार की पर्याय होती हैं। अर्थ पर्याय जो होती है, वह प्रति समय उत्पन्नध्वंशी होती है। हर समय उत्पन्न होती है ओर नष्ट होती है। वह अर्थ पर्याय कहलाती है। जो हर समय निकलती है। और जो व्यंजन पर्याय होती

है, वह अधिक समय वाली होती है। तो व्यंजन पर्याय के रूप में भगवान की जो शुद्ध पर्याय है, वह जैसी की तैसी बनी रहेगी। लेकिन अर्थ पर्याय के रूप में उसमें उत्पाद व्यय चलता रहेगा। ऐसा समझ सकते हैं। यही जो उत्पाद व्यय ध्रौव्य का समवाय है, अर्थात इन सबका एकत्रित होकर के एक जगह पर रहना हैं यह उस सिद्धात्म स्वभाव के साथ में भी निरंतर बना रहता है। अर्थात उस सिद्धात्म स्वभाव में भी यह तीनों परिणतियाँ होती हैं। और उन शुद्धात्मा के कभी भी उससे भिन्न कोई पर्याय नहीं निकलेगी।

सदृश्य पर्याय और विसदृश्य पर्याय

जैसी पर्याय निकल रही है**सदृश्य**पर्याय ही उसकी निकलती चली जाएगी।**विसदृश्य**पर्याय नहीं उत्पन्न होगी। संसारी आत्मा की तो**विसदृश्य**हो जाती हैं।**विसदृश्य**अर्थात एक जैसी नहीं रहती। बदल बदल जाती हैं। बुढ़ापा आ गया, मृत्यु हो गयी, पुनः मनुष्य पर्याय छूट कर के देव पर्याय प्राप्त हो गयी, तो यह सब क्या हैं? यह सब**विसदृश्य**पर्याय हो गयी। तो**सदृश्य**अथार्त एक जैसी पर्याय शुद्ध पर्याय।**सदृश्य**पर्यायों को ही उत्पन्न करती है और उसी में वह पर्याय निकलती रहती है। शुद्ध द्रव्य में सदृश्य पर्याय होती होती है और जो अशुद्ध द्रव्य होता हैउसमें**विसदृश्य**पर्याय होती है।

इस तरह से आचार्य महाराज ने यहाँ पर**शुद्धोपयोग**के प्रसाद से जो शुद्धात्म तत्व की प्राप्ति हुई है उसमें उत्पाद व्यय और ध्रौव्य इन तीनों भागों को घटित करके बताया है कि आत्मा कोई नया नहीं बन गया। आपका ही आत्मा स्वयंभू बन गया। वही आत्मा जो अशुद्ध अवस्था में संसारी अवस्था में था, वही शुद्धात्मा बना गया। वही केवलज्ञान को प्राप्त करके स्वयंभू हो गया। ऐसा नहीं हैं कि कोई भगवान अलग बन गया हो और वो जो आत्मा हो वो कहीं भगवान में अलग समा गई हो। वही आत्मा खुद भगवान बन जाता हैं। यह इसका अर्थ हैं।

उत्पाद, नाश बिन हैशिव में सुहाता, उत्पाद के बिन, विनाश स्वयं दिखाता।
उत्पाद-ध्रौव्य व्यय रूप परम्परा भी, हो सिद्ध में विरमती न स्वयं जरा भी।

मतलब सिद्ध में भी यह परंपरा कभी विराम को प्राप्त नहीं होती है। विरमती अर्थात यह परंपरा जरा भी, किसी भी समय, यह विराम को प्राप्त नहीं होती। अर्थात यह परंपरा कभी भी रूकती नहीं है। यह उत्पाद व्यय ध्रौव्य द्रव्य का स्वभाव है, जो निरन्तर बना रहता है।

प्रवचन१० –पदार्थकीपर्यायकाउत्पादऔरव्यय (गाथा०१८)

उप्पादो य विणासोविज्जदिसव्वस्सअट्ठजादस्स।
पज्जायेणदुकेणविअट्ठोखलुहोदिसब्भूदो॥ १८ ॥

पर्याय के वश किसी बस जन्म पाता, पर्याय के वश किसी वह अन्त पाता।।
पर्याय के वश किसी ध्रुव कूप होता, ऐसा पदार्थदल है त्रय रूप ढ़ोता।

अन्वयार्थ–(**उप्पादो**) किसी पर्याय से उत्पाद (**विणासो य**) और किसी पर्याय से विनाश (**सव्वस्स**) सर्व (**अट्ठजादस्स**) पदार्थ मात्र के (**विज्जदि**) होता है, (**केणविपज्जायेणदु**) और किसी पर्याय से (**अट्ठो**) पदार्थ (**खलुहोदिसब्भूदो**) वास्तव में ध्रुव है।

प्रत्येक पदार्थ में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य

उप्पादोमाने उत्पाद।**विणासो**माने विनाश।**विज्जदि**माने रहता है।**सव्वस्सअट्ठजादस्स**।**सव्वस्स**माने सभी।**अट्ठजादस्स**यानि अर्थ का समूह। अर्थ पहले आपको बताया था। अर्थ माने पदार्थ। सभी पदार्थों का जो समूह है उन सब पदार्थों में यह, **विज्जदि**माने विद्यमान रहता है। क्या विद्यमान रहता है? उत्पाद और विनाश, यहसभी पदार्थों में विद्यमान रहता है। उत्पाद और विनाश सभी पदार्थों में विद्यमान रहता है।जितने भी इस लोक में पदार्थ हैं, समस्त पदार्थों के इस समूह के साथ, यह उत्पाद और विनाश की प्रक्रिया चलती रहती है।**पज्जायेणदुकेणवि**अर्थात किसी पर्याय के द्वारा उत्पाद और किसी पर्याय के द्वारा विनाश। किसी पर्याय से तो उत्पाद होता है और किसी पर्याय से विनाश होता है। ये सभी पदार्थों में निरंतर चलता रहता है।**अट्ठोखलुहोदिसब्भूदो**।**अट्ठो**माने अर्थ जो है, पदार्थ जो है, वो कैसा होता है? **सब्भूदो**, सदभूत होता है। सदभूत यानी अस्तित्व वाला होता है। सदभूत का अर्थ क्या हो गया? अस्तित्व वाला। सदभूत। जिसका अस्तित्व है, जिसकी सत्ता है, उसको सदभूत कहते हैं।इसको विद्यमान भी कहते हैं। यानी पदार्थ तो हमेशा सदभूत रहता है। पदार्थ हमेशा अपना अस्तित्व बनाए रहता है। पदार्थ का existence कभी भी नष्ट नहीं होता है, ये इसका तात्पर्य है। पर्याय जो होती है, हम उसका, एक कोई भी form कह सकते हैं, उसका modification कर सकते हैं। लेकिन जो अर्थ या पदार्थ होता है, वह हमेशा अपने existanceको बनाए रखता है। जिसे हम substance कहते हैं। वो हमेशा अपने existence को बनाए रखता है। तो उसके existence के बने रहने में क्या कारण है? वह कारण ही यहां बताया जा रहा है।

पदार्थ का अर्थ – द्रव्य, गुण और पर्याय

पहले भी दसवीं गाथा में बताया था कि जो अर्थ है, वह किस रूप होता है? जिसको यहाँ पर**अट्ठो**कहा जा रहा है, अर्थ कहा जा रहा है।उस अर्थ की पहले भी छोटी सी व्याख्या की थी कि**दव्वगुणपज्जयत्थोअत्थोअत्थित्तणिव्वत्तो।**दसवीं गाथा के उत्तरार्ध में बताया था। यानि द्रव्य, गुण और पर्यायों में जो स्थित है, वही वस्तुत:अर्थ कहलाता है, पदार्थ कहलाता है। तो यह हमेशा ध्यान रखो कि यहां पर पदार्थ से प्रयोजन क्या है? पर्याय से नहीं है। पदार्थ का मतलब कोई एक पर्याय नहीं लेना। पदार्थ का मतलब किसी एक गुण का परिणमन नहीं लेना। पदार्थ का मतलब क्या लेना? द्रव्य, गुण और पर्याय, इन तीनों से सहित जो अर्थ है, उसी कोयहां पदार्थ कहा जाता है। ये चीज पिछली वाली गाथा से भी आपको ध्यान में रखना है।

पदार्थ उत्पन्न और नष्ट नहीं होता

तो यहाँ कहते हैं कि जब भी कोई द्रव्य, इस प्रकार से पर्याय के साथ में उत्पाद या विनाश करता है तो भी उसमें सदभूदता बनी रहती है। मतलब पदार्थ तो अपना उसका अस्तित्व के साथ बना ही रहता है। नष्ट पदार्थ नहीं होता है। समझने की बात क्या है? नष्ट पदार्थ नहीं होता है। नष्ट उस पदार्थ की पर्याय होती है। और उत्पन्न भी पदार्थ नया नहीं होता है किन्तु उसकी पर्याय ही नयी उत्पन्न होती है। पदार्थ का उत्पन्न होना या पदार्थ का सर्वथा नष्ट हो जाना, ये जैनागम में कभी भी नहीं बताया गया। अन्य मतों में यह माना जाता है कि पदार्थ या तो एकांत रूप से कूटस्थ नित्य रहता है।ऐसा सांख्य बोलते हैं। एक सांख्य मत होता है। और एक बौद्ध मत होता है जो कहता है, पदार्थ हर समय क्षणिक होता है। अपनी पर्याय के साथ ही क्षणिक नहीं होता है किन्तु पदार्थ ही नया बन जाता है। वो पदार्थ तो नष्ट हो जाता है जो पदार्थ एक क्षण पहले था। दूसरे क्षण में पदार्थ ही नया हो जाता है। इसको बोलते है – एकांत क्षणिकवाद। यह बौद्धों का एकांत क्षणिकवाद चलता है। किन्तु यहाँ पर आचार्य कहते हैं – न पदार्थ एकांत रूप से क्षणिक होता है और न पदार्थ एकांत रूप से कूटस्थ नित्य होता है। किन्तु वह कथंचित्त नित्यहोता है और कथंचित्त अनित्य होता है। पदार्थ का नयापन किसके साथ होगा?

पदार्थ की पर्याय उत्पन्न और नष्ट होती है

तो आचार्य कहते हैं – पदार्थ नया नहीं हो गया। उसकी पर्याय नयी आ गई। पदार्थ नहीं मिट गया। उसकी पिछली पर्याय मिट गई। ये समझने की चीज है।यहां क्यों समझाया जा रहा है? यहां इसलिए समझाया जा रहा है कि अभी इससे पहली वाली गाथा में, सर्वज्ञ भगवान की चर्चा की थी और उसमें यह बताया था कि वह

सर्वज्ञ जो बन गए हैं या सिद्ध भगवान जो बन गए हैं, वो अपनी अशुद्ध पर्याय को छोड़कर के शुद्ध पर्याय को प्राप्त हो गए हैं।ऐसा कहा था न? संसार की दशा को छोड़कर के सिद्ध दशा को प्राप्त हो गए हैं। तो उनकी भी जो दशा बदली है वो दशा बदलने का मतलब क्या है? पर्याय का बदलना। और वह पर्याय जब बदली तो उस पर्याय के साथ में समूचा द्रव्य भी बदला है। लेकिन द्रव्य जब भी कहा जाएगा तो पर्याय के साथ कहा जाएगा। संसार अवस्था में द्रव्य को अशुद्ध कहा और सिद्ध अवस्था में द्रव्यको शुद्ध कहा।संसार अवस्था में द्रव्य अशुद्ध था तो उसकी पर्याय अशुद्ध थी और सिद्ध अवस्था में द्रव्य शुद्ध हो गया तो उसकी पर्याय शुद्ध हो गई।

द्रव्यकापारिणामिकभाव

तो पर्याय के साथ साथ द्रव्य में भी परिवर्तन होता है। लेकिन वह द्रव्य का परिवर्तन, ऐसा नहीं समझना कि द्रव्य कोई पुराना बिलकुल नष्ट हो गया और कोई नया द्रव्य उत्पन्न हो गया।द्रव्य अपने स्वभावभूत जो गुण को लिए हुए था, वह वही रहा।जैसे जीव द्रव्य था तो उसके अंदर जो जीवत्व गुण चल रहा था, वो तो उसका वही रहा। जीव द्रव्य का परिणमन अशुद्ध से शुद्ध हो गया, पर्याय अशुद्ध से शुद्ध हो गई लेकिन जीव द्रव्य तो वही था। कौन था? जो हमने पहले देखा था।इसी को पारिणामिक भाव कहते हैं। क्या बोलते हैं इसको? पारिणामिक भाव। यह पारिणामिक भाव रूप जो जीवत्व भाव है, उस जीवत्व भाव के साथ में उस जीव द्रव्य का परिणमन चलता रहता है। तो जीवत्व भाव तो कभी भी नष्ट नहीं हुआ। वह भाव यूँ समझ लो कि पहले अशुद्ध दशा में जीवत्व भाव चलता था और अब शुद्ध जीवत्व का भाव चल रहा है। कैसे समझ सकते हैं?

संसार अवस्था में जीव चार प्राणों के साथ जीता हैं

देखो ! जीवत्व को समझने के लिए द्रव्य संग्रह में गाथा आती है।

तिक्कालेचदुपाणा, इंदिय बल माउआणपाणोय।
ववहारा सो जीवो,णिच्चयणदोदुचेदणाजस्स।।

पढ़ी है गाथा? द्रव्य संग्रह पढ़ा है? क्या कहते हैं यहां? यहां पर कहते हैं कि जीव जी रहा है। लेकिन कैसे जी रहा है? संसार अवस्था में भी जीव जी रहा है और मुक्त अवस्था में भी जीव जी रहा है। लेकिन संसार अवस्था में कैसे जी रहा है? **तिक्कालेचदुपाणा**तीनों कालों में, संसार अवस्था में, चार प्राणों के साथ में यह जीव जीता है। और उन चार प्राणों में, **इंदिय बल माउआणपाणोय**इन्द्रिय प्राण हैं। बल प्राण है। आयु प्राण हैं और श्वासोच्छवास। ये चार प्राणों के साथ संसार अवस्था में जी रहा था और जब मुक्त अवस्था में हुआ तो वह इन

चार प्राणों से तो रहित हो गया लेकिन फिर भी वहां जी रहा है कि मर गया? उसका जीवत्व नष्ट हो गया कि बना हुआ है? जब प्राण ही नहीं रहे तो फिर कहाँ से बना रहेगा उसका जीवत? आपने तो यही सुना है कि प्राणों से ही सब जीते हैं और सिद्ध भगवान के तो प्राण ही नहीं रहे। सिद्ध भगवान तो प्राणों से रहित हो गए। तो प्राणों से रहित हो गए माने अब उनमें कोई जीवन नहीं बचा होगा। आपने तो यही समझा? तो भगवान को हम क्या समझे? जीता हुआ समझे कि मरता हुआ समझे? मरे हुए से तो भगवान को तुम स्वीकार कर नहीं सकोगे।सिद्ध भगवान भी जी रहे हैं। नहीं जी रहे? जीवन तो उनका भी चल रहा है। नहीं चल रहा है?

जीवन जीवत्व गुण के माध्यम से चलता है।

जीवन जीवत्व गुणके माध्यम से चलता है। प्राणों के माध्यम से नहीं चलता।प्राणों के माध्यम से जो जीवन चल रहा है, यह तो ऊपरी दृष्टि से व्यवहार से संसारी जीव के लिए कहा जाता है कि प्राणों से जी रहा है। क्योंकि संसारी जीव जब तक किसी पर्याय में जीता है, इन्हीं चार प्राणों के साथ जीता है। और जैसे ही ये चार प्राण परिवर्तित हो जाते हैं तो उसके लिए कहने मे आता है कि जीव मर गया। जबकि जीव कभी मरता है क्या? आप क्या बोलते हो? जीव मर गया, चला गया। ये तो नहीं बोलते न कि कोई पुदगल मर गया याशरीर मर गया। ये तो कभी नहीं बोलते।बोलते क्या हो आप? जीव मर गया। जबकि जीव मरता है क्या? फिर आप गलत क्यों बोलते हो? महाराज ! ऐसे ही बोलना पड़ता है।अगर हम सही बोलेंगे तो लोग हमें अज्ञानी समझेंगे। क्या सुन रहे हो? किसी का मरण हो जाये और आप कहो कि इसकी देह मर गई, इसका शरीर मर गया। तो लोग क्या समझेंगे? यह पागल हो गया। यह अज्ञानता की बातें कर रहा है। और अगर कहूँ कि देखो उसका मरण हो गया, जीव मर गया, जीव चला गया। तो क्या बोलोगे? हाँ, सही कह रहा है। जबकि जीव कभी भी मरता नहीं है। कहने में आता है कि जीव मर गया। लेकिन जीव कभी भी मरता नहीं है। जीव तो जी रहा था और आगे भी जीऐगा। किसके कारण से जी रहा है वह? अपने जीवत्व गुण के कारण से जी रहा है।लेकिन संसार अवस्था में उसे जीने के लिए शरीर चाहिए तो शरीर के साथ में चार प्राण उसके लिए आवश्यक हो जाते हैं। जब यह शरीर नहीं रहता है, चार प्राण नहीं रहते तब भी जीव तो अपनी जीवत्व गुण से जीता है।जीव कभी भी नष्ट नहीं होता है। तो वहां पर वह कैसे जीऐगा?

निश्चय नय से चेतना जीव का प्राण

तो आचार्य कहते हैं**णिच्चयणदोदुचेदणाजस्स**निश्चय नय से देखो इस जीव का प्राण क्या है? निश्चय नय से इसका प्राण क्या है? चेतना ही इसका प्राण है जिसे हम कहते हैं चैतन्य भाव। उसी को हम कह सकते हैं

जीवत्व भाव। तो निश्चय नय से ये अपनी चेतना के साथ में जीता है, निश्चय नय में इसे चेतना के अलावा और किसी चीज़ की जरूरत नहीं है।

संसार दशा में चेतना के साथ चार प्राण

लेकिन संसार दशा में चेतना भी चाहिए और उसके साथ में चार प्राण और चाहिए। क्योंकि चेतना यहां अकेली नहीं रह सकती है।चेतना के साथ शरीर चाहिए और शरीर के संचालन के लिए उसे आयु, बल, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास चारों चीजें चाहिए। है ना।तो ये कहलाया कि जीव का जीवत्व कभी भी नष्ट नहीं हो रहा है। चाहे वह संसार अवस्था में रहे और चाहे वह मुक्त अवस्था में जाए। मतलब जीव द्रव्य का परिणमन तो बदला, अशुद्ध से शुद्ध हुआ। पर्याय अशुद्ध से शुद्ध हुई। लेकिन जीव का जो आधार था जीवन का, वोक्या था? उसका अपना चैतन्य गुण जीवत्व गुण। जिसके माध्यम से वह जी रहा था। वह चैतन्य भाव, जीवत्व भाव, वह अशुद्ध दशा में भी था और वह शुद्ध दशा में भी रहा। इसको क्या बोलते हैं? पारिणामिक भाव जीव का कभी भी उससे छूटता नहीं।जिसे जीवत्व नाम का पारिणामिक भाव कहा जाता है, यह भाव कर्म के ऊपर आधारित नहीं होता। इसलिए इसको पारिणामिक भाव कहते हैं। तो जीव का यह जीवत्व भाव जब तक संसार दशा में था तब तक अशुद्ध दशा के साथ था। और जब यह शुद्ध अवस्था में पहुँच गया तो यह शुद्ध दशा में आ गया तो वहां पर जीव भी शुद्ध हो गया और उसकी पर्याय भी शुद्ध हो गई। लेकिन सामान्य से पारिणामिक भाव के रूप में देखा जाए तो उसका वह जीवत्व भाव संसार में और सिद्ध अवस्था में एक समान है क्योंकि वह पारिणामिक भाव हमेशा बना रहता है।

अशुद्ध पारिणामिक भाव और शुद्ध पारिणामिक भाव

उस पारिणामिक भाव के भी आचार्यों ने दो भेद किए हैं। क्योंकि जब तक वह चार प्राणों के साथ जी रहा है तब तक उसे अपनी चेतना की वह अनुभूति नहीं होती कि हम चार प्राणों से रहित होकर के चेतना का अनुभव कर सकें। उसे अनुभूति चार प्राणों के साथ होती है इसलिए उसको आचार्यों ने अशुद्ध पारिणामिक भाव भी कहा है। जो संसार अवस्था का पारिणामिक भाव है, वह अशुद्ध पारिणामिक भाव भी कहलाता है। तो जब वही जीव शुद्ध अवस्था में परिणमन कर गया तो अब वह शुद्ध पारिणामिक भाव के साथ में अपना जीवन जीता है। लेकिन जीवत्व के चेतना गुण, ज्ञान गुण, दर्शन गुण, इन सबका जो आधार था, वह आधार तो ज्यों का त्यों बना हुआ है। ये गुण ज्यों के त्यों सब बने हुए हैं। लेकिन इनके परिणमन बदल गए हैं।पहले परिणमन कुछ और था, अब परिणमन कुछ और हो गया। तो ये ध्यान रखना कि जब पर्याय बदलती है तो उस पर्याय के साथ में द्रव्य भी बदलता है।क्या सुन रहे हो? लेकिन ये नहीं समझना कि द्रव्य कोई नया उत्पन्न हो गया। दोनों

बातें समझना।पर्याय के साथ में द्रव्य तो बदला। लेकिन पहले का पूरा द्रव्यनष्ट हो गया और कोई नया द्रव्य सामने आ गया, ऐसा नहीं है। द्रव्य तो वही है।

लेकिन पर्याय बदलने के साथ में ऐसा नहीं है कि द्रव्य में कोई परिवर्तन नहीं आया।द्रव्य तो शुद्ध था, शुद्ध रहेगा, ऐसा नहीं कह सकते। अगर द्रव्य शुद्ध था तो उसमें अशुद्ध पर्याय नहीं हो सकती है। द्रव्य शुद्धथा तो उसको अशुद्ध द्रव्य संसार अवस्था में नहीं कहा जा सकता। तो वहाँ पर जो द्रव्य अशुद्ध भी है। कहाँ पर? संसार अवस्था में। और जब सिद्ध अवस्था में है तो द्रव्य शुद्ध भी हो रहा है लेकिन द्रव्य में जो द्रव्यत्व भाव है,हमेशा द्रव्य का बना रहना, वोधुर्वता के साथ में चलता है। उसमें उत्पाद विनाश नहीं होता है, वो ध्रुव रूप में बना हुआ है।समझ आ रहा है आपको? इतनी जल्दी समझ आता महाराज तो फिर आपसे क्यों पढ़ते? आएगा।धीरे धीरे आएगा। अब देखो थोड़ा सा जब जीव समझ में नहीं आ रहा है तो थोड़ा सा अजीव की बात करनी पड़ेगी।नहीं करनी पड़ेगी? क्योंकि जीव तो हमें दिखाई देता नहीं है।उसका परिणमन तो हमें समझ में आता नहीं तो इसलिए अजीव के माध्यम से हमें थोड़ा सा समझ में आ सकता है। क्या समझ में आ सकता है? किसका उदाहरण दिया जाए?

<u>परिणमन का उदाहरण</u>

आपके कपड़े का उदाहरण दिया जाए। आप कपड़ा पहने बैठे हो।कपड़ा आपका गंदा हो गया तो आपने उस कपड़े को स्वच्छ किया और आपका कपड़ा पुन: साफ हो गया।क्या हुआ? कपड़ा वही था। जब कपड़ा गंदा था तो पूरा कपड़ा गंदा था। माने उसका पूरा द्रव्य भी गंदा था कि नहीं था? क्या उसके ऊपर ऊपर कीपर्याय गंदी थी और भीतर से उजला था। जब आपका सफेद कपड़ा काला पड़ गया। क्या सुन रहे हो? तो वह कालापन उसके द्रव्य के अंदर रग रग में समाया। नहीं समाया? समाया नहीं होता तो फिर हम उसको यही फटक देते तो कालापन निकल जाता। पानी में डाल देते तो निकल जाता। उसके अंदर डिटर्जेंट क्यों डालना पड़ता है? क्योंकि जो अंदर उसके मैल घुसा हुआ है वो बिना डिटर्जेंट के नहीं निकलेगा। तो द्रव्य भी गन्दा हुआ, गुण भी उसके गंदे हो गए, पर्याय भी गंदी हो गई। माने पर्याय ऊपर काली दिखाई दे रही है, गुण उसके काले रूप में परिणमन कर गए और उसके साथ में जो समूचा द्रव्य, आपका कपड़ा है वह पूरा का पूरा गंदा दिख रहा है। है कि नहीं? अब जब आपने उसको साफ किया तो फिर क्या हुआ? उसका जो कालापन था, वो सफेद गुण के रूप में परिणमनकर गया। पहले काला गुण था, वो अब कैसा हो गया? सफेद गुण हो गया।काले रंग की पर्याय पूरी दिख रही थी। अब कैसी हो गई? सफेद। तो वह पर्याय भी उज्जवल हो गई और वह पूरा का पूरा द्रव्य जो था, वो भी उज्ज्वल हो गया।क्यों उज्ज्वल हो गया? क्योंकि उसमें जो विकार था, वो सारा का सारा निकल गया। और द्रव्य अपने शुद्धस्वभाव भाव में आ गया। जैसा था, वैसा हो गया। समझ मे आ रहा है?

भ्रान्ति – केवल पर्याय अशुद्ध थी, द्रव्य तो शुद्ध था

अब यहां पर कहा जाए कि नहीं ! केवल पर्याय ऊपर की गंदी थी, द्रव्य तो आपका सही था। क्या सुन रहे हो? पर्याय गंदी थी, द्रव्य तो सही था, द्रव्य शुद्ध था।तो आचार्य कहते हैं, पर्याय अलग से कोई चीज होती नहीं कि द्रव्य के बिना पर्याय हो। जहां आपको वह गंदगी ले जानी है, वह कपड़ा काला ले जाना है, तो कपड़े को ले जाना पड़ेगा। कालापन अलग से निकाल के ले जाओ तो हम माने कि पर्याय अलग थी और द्रव्य अलग था। जायेगा तो कपड़ा ही न।पूरा द्रव्य ही जाएगा। तो द्रव्य के साथ वह कालापन की जो पर्याय है वोकैसी है? बिल्कुल मिली हुई है। इसलिए द्रव्य भी क्या कहलाएगा? उसको क्या बोलेंगे? ये अशुद्ध द्रव्य है, अशुद्ध कपड़ा है।यह कैसा है? अशुद्ध है।तो द्रव्य को भी अशुद्ध कहा जाएगा।ऐसा नहीं है कि द्रव्य शुद्ध था, है और रहेगा। द्रव्य की शुद्धता का मतलब यह है कि उसमें शुद्ध होने की शक्ति है। लेकिन अभी वर्तमान में कैसा है? अशुद्ध है।समझ में आ रहा है? अब द्रव्य तो वही रहा, जब शुद्ध हो गया। कपड़ा तो वही रहा। तो कपड़ेपन की अपेक्षा से देखा जाए, तो कपड़ा वही है जो पहले था और अभी भी वही कपड़ा है जोपहले गंदा हुआ था।समझ में आ रहा है? कपड़े की अपेक्षा से देखा जाए तो वह ध्रौव्यपना है।किसकी अपेक्षा से? कपड़े की अपेक्षा से।बस कपड़े को देखोगे तो वह ध्रौव्यपना है और अगर तुमने कपडे की विशेषता देखी।तो क्या है? पहले अशुद्ध था, अब शुद्ध हो गया।पहले काला था, अब सफेद हो गया। समझ में आ रहा है? सामान्य कपड़े की अपेक्षा से तो कपडा वही है, उसमें कुछ नहीं बिगड़ा है।लेकिन द्रव्य की अपेक्षा से अशुद्धता और शुद्धता में परिणमन हुआ है।

अगर जीव को अशुद्ध नहीं माने तो क्या दोष आयेगा?

इसी तरीके से जीव की अपेक्षा से देखो तो जीव पहले वही था, जो संसार दशा में था।शुद्ध बन गया, सिद्ध दशा में पहुँच गया।लेकिन पहले वह जीव द्रव्य अशुद्ध था, गुण अशुद्ध थे, उसकी पर्याय अशुद्ध थी। अब जीव द्रव्य शुद्ध हो गया, उसके गुण शुद्ध हो गए, उसकी पर्याय शुद्ध हो गई।अगर हम जीव को अशुद्ध न माने तो जानते हो सबसे बड़ा दोष क्या आएगा? जीव का शुद्धपना होने पर तो जीव हो जाता है अमूर्तिक। क्या कहा? शुद्ध जीव कैसा होता है? अमूर्तिक।अमूर्तिक का मतलब? जो हमारे किसी भी इन्द्रिय का विषय न बने। उसको क्या बोलते हैं? अमूर्तिक। और जब जीव अशुद्ध दशा में रहता है तो हो जाता है मूर्तिक।आप अगर यहाँ दिखाई दे रहे हो, अपने जीव भाव के साथ में बैठे हो, तो मूर्तिक जीव होने के कारण से बैठे हो। अब जीव आपका अमूर्तिकनहीं रहा। क्योंकि अमूर्तिक कौन सा होगा, जो शुद्ध होगा। और शुद्ध कौन होगा, जो सिद्ध होगा। अभी कैसा है? तो जीव में अमूर्तिकता नष्ट हो गई।मतलब अमूर्तिक स्वभाव जो था, अब कैसे बदल

गया? उसमें मूर्तिक स्वभाव आ गया। स्वभाव की अपेक्षा से तो उसकी जो शक्ति उसके अंदर पड़ी है, अमूर्तिक होने की, वो पड़ी है। लेकिन वर्तमान में जीव कैसा है? मूर्तिक है।

जीव संसार अवस्था में मूर्तिक

इसलिए कथंचित्यह जीव संसार अवस्था में मूर्तिक कहलाता है, तभी वह देखने में आता है और वह पांच इंद्रियों का विषय बनता है।कुछ समझ आया? जीव संसार दशा में मूर्तिक है और सिद्ध दशा में अमूर्तिक है। अब एकांत रूप से संसार दशा में जीव अमूर्तिक नहीं है। अगर हम जीव को निरंतर शुद्ध मानेंगे, एकांत रूप से जीव को शुद्ध मान लिया, तो संसार दशा में भी जीव को अमूर्तिक मानना पड़ेगा। फिर मूर्तिक, सिद्ध हीनहीं होगा जीव। क्योंकि शुद्ध स्वभाव के साथ में जीव कभी भी मूर्तिक नहीं रह सकता है, वह अमूर्तिक हो जाएगा।अगर शुद्ध में परिणमन कर गया तो। यह अंतर है।

द्रव्य में परिवर्तन आता है लेकिन द्रव्यत्व में परिवर्तन नहीं आता

लोग क्या कहते हैं? द्रव्य तो वैसा ही रहता है, द्रव्य में कोई परिवर्तन नहीं आता। ऐसा कहना गलत है। द्रव्यत्व में परिवर्तन नहीं आता, ये कहना चाहिए। द्रव्य और द्रव्यत्व में बहुत अंतर होता है। क्या समझ में आ रहा है? जीव और जीवत्व। त्व जो हो जाता है, वह उसका गुण हो जाता है, उसका भाव हो जाता है। जीव वही है, जीवद्रव्य वही नहीं है।द्रव्य तो समूचा बदल गया है। लेकिन उसमें जो द्रव्यत्वहै, वो वही है। पहले भी द्रव्य था, अभी भी है। द्रव्यपना का मतलब क्या होता है? द्रव्यपना माने कपड़ा। कपड़ेपन का जो भाव है, वो वही है।कपड़ा वही है। लेकिन कपड़ा तो बदला है। पहले तो अशुद्ध कपड़ा था, अब शुद्ध कपड़ा हो गया। कपड़ा पहले भी कह रहे थे, अभी भी कह रहे हैं। तो कपड़ा सामान्य से वही है, उसको समझो।समझ आ रहा है? सामान्य जो भाव रहता है, वह हमेशा एक सा रहता है। ये समझ सकते हो। है न।जीव का सामान्य भाव जीवतत्व है, द्रव्यत्व हैं, वह एक सा रहता है।

उदाहरणोंकी कमी नहीं है। आप समझ सकते हो कि अगर आपके सामने कोई भी पर्याय है, वह बदली है, तो उसके साथ साथ जीव में भी परिवर्तन आया है,है ना ,आप खुद महसूस करो। जैसे बचपन में आप थे और आज आप इस दशा में बैठे हो। युवावस्था है, व्रद्धावस्था है। क्योंकि सब तरह के लोग बैठे हैं। जब आप शिशु अवस्था में थे। सुन रहे हो? और जब आपके अंदर वह शिशु दशा चल रही थी, तो उस समय पर आपकी आत्मा अपनी शिशु पर्याय के साथ में परिणमन कर रही थी, उसमें। और आज जब आप युवावस्था में हो, तो आपकी आत्मा युवावस्था में परिणमन कर रही है,उसमे। कोई अंतर है कि नहीं? आत्मा में।अवस्था में नहीं, अवस्था में परिवर्तन तो दिख रहा है सब को। कि पहले हम बचपने में थे, आज हम युवा हो गए।अवस्था तो

शरीर की देख कर के सबको अंतर समझ में आ रहा है। लेकिन आत्मा में भी आपको कुछ अंतर समझ में आ रहा है कि नहीं आ रहा है?

आत्मा में कोई अंतर समझ नहीं आ रहा है? पहले आपकी आत्मा में इतना ज्ञान था कि नहीं था, जो आज आपको समझ में आ रहा है। आपके अंदर जो आत्मा है, उसकी दशा में भी परिवर्तन हो रहा है कि नहीं हो रहा है।समझ आ रहा है? केवल बाहरी दशा मे परिवर्तन नहीं हो रहा है। आत्मा की दशा में भी परिवर्तन हो रहा है क्योंकि पहले आपके पास में मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान का इतना छयोपशम नहीं था, जितना आज हो गया है।

अगर बचपन में भी उतना ही होता है तो यह कहने की आचार्य को जरूरत नहीं पड़ती है कि आठ वर्ष के बाद आप सम्यग्दर्शन के योग्य होंगे। ये क्यों कहा जाता है? केवल अवस्था बाहर की नहीं बदलती है, भीतर की भी बदलती है। भीतर हमारी आत्मा की जानने देखने की शक्ति भी धीरे धीरे बढ़ती जाती है।वह जानने देखने की शक्ति के साथ में आत्मा का जो परिणमन होता है, वह परिणमन ऐसा नहीं है कि केवल बाहर बाहर पर्याय में ही परिणमन हो रहा हो। पूरी समूची आत्मा में वह पर्याय के साथ में परिणमन होता है। केवल बाहर बाहर आत्मा का परिणमन हो रहा हो तो क्या होगा? आपकी जो आत्मा पहले जैसी थी, वैसी बनी रहेगी।केवल वह शरीर बदल गया आत्मा तो वही है।तो आत्मा का ज्ञान भी बदला है, आत्मा का दर्शन भी बदला है। औरयहाँ तक कि जैसे जैसे आत्मा बड़ी होती जाती है। देखो ! आत्मा को ही बड़ा बना रहा हूँ मैं।सुन लेना कान खोल के।आत्मा बड़ी नहीं हो रही है? पहले वो इतने छोटे से शरीर में थी अब वो इतने बड़े शरीर में आ गई।आत्माबड़ी नहीं हुई? बोलते हो ही नहीं तुम।हम कुछ भी उल्टा सीधा सिखाते है, आप सब सीख जाओगे क्या? कुछ पूछा भी करो। बताया भी करो। यह तो simple सी बात है न।

पहले आत्मा भी इतने ही प्रमाण थी ना, शरीर प्रमाण।ऐसा तो नहीं हैं नकि शरीर बढ़ता गया आत्मा तो वो ही रही। आत्मा तो शरीर के ही साथ है न।शरीर के अलावा तो कोई आत्मा नहीं है।तो शरीर बढ़ रहा है तो आत्माबढ़ रही है कि नहीं? उसकी भी heightबढ़ रही है कि नहीं? तो इसमें बुरा क्या है कहने में? आत्मा का भी विकास हो रहा है, आत्मा भी बढ़ रही है क्योंकि आत्मा शरीर प्रमाण रहेगी। जब तक शरीर बढ़ेगा तो आत्मा भी अपने प्रदेशों को बढ़ाता रहेगा। क्या दिक्कत है? तो आत्मा का भी परिणमन हो रहा है कि नहीं? बचपन से युवा हुए, केवल शरीर में ही परिणमन हुआ कि आत्मा का भी परिणमन होगा? आत्म द्रव्य मे भी हुआ, उसके प्रदेशों में हुआ, आत्मा के गुणों में भी हुआ और जो आत्मा की ये पर्याय है, उस पर्याय में भी हुआ।तो परिणमन तीनों में हुआ।लेकिन जो नाम हमारा बचपन में रख दिया था बेटा, आज भी तेरा वही नाम है। फिर भी आत्मा तो वो ही है।तो आत्मा बदल भी रही है और आत्मा वही है। तो बदल रही है, वह क्या बदल रहा है? आत्मा का पूरा का पूरा परिणमन बदल रहा है - पर्याय, गुण, द्रव्य।लेकिन आत्मभाव, आत्मा का जो सामान्य भाव है, वह वही बना हुआ है।अब समझ में आया? आत्मा सामान्य से वही है, लेकिन विशेषताओं के

साथ वह पूरा का पूरा आत्मा का द्रव्य, गुणऔर पर्याय सब change हो रहा है। तो इसलिए ये नहीं कहना की द्रव्य में कोई changes नहीं आता, द्रव्य नहीं बदलता है।

द्रव्यार्थिकनय से द्रव्य में ध्रौव्यपना कहा जाता है।उसका अर्थ इतना ही है कि द्रव्य में जो ध्रौव्यत्व गुण हैं, ध्रुविता उसकी बनी हुई है।माने वो द्रव्य था, है और रहेगा। द्रव्य वही रहेगा। द्रव्य नया नहीं आ जाएगा लेकिन द्रव्य में परिणमन समूचा होगा। ऐसा नहीं है कि ऊपर ऊपर हो जाए। जैसे जल के ऊपर काई लग जाती है ना। तो बस ऊपर ऊपर की काई हटाओ, भीतर जल देखो तो साफ सुथरा है। ऐसी भूल में नहीं रहना। द्रव्य में परिणमन तो ऐसा हुआ है कि वह पूरा का पूरा उसके एक एक अंश में उसके लिए कर्म मिल जाते हैं।और उसका**विकारी**परिणमन पूरे द्रव्य का होता है।जैसे कपड़े के एक एक अंश में मैलापन आ जाता है तो उसका हर एक हिस्सा जो है पूरा मैला हो जाता है। अब आ रहा है समझ में? कुल मिला कर के आप इतना समझ लो , कपड़ा वो ही है। पहले अशुद्ध था अब शुद्ध हो गया।मेरी आत्मा वही है।पहले में बचपन में था, अब युवा हो गया। पहले की आत्मा में और अब की आत्मा में परिवर्तन तो आया, सब जगह से परिवर्तन आया।पहले की आत्माबड़ी भी हो गई और थोड़ी शुद्ध हो जाएगी।यहां पहले ज्यादा अज्ञानता थी अब थोड़ासा ज्ञान आ गया। पहले पाप ज्यादा हो जाते थे, अब कम होंगे। कि बढ़ जाएंगे? कम कैसे हो जाएंगे? जैसे जैसे इंद्रियां बढ़ेगी तो पाप भी बढ़ेंगे। तो चलो कुछ न कुछ कमती बढ़तीहो रहा है।लेकिन फिर भी आत्मा तो वही है जो पहले था। आ रहा हैं समझ में? इसी को कहते हैं, आत्मा के अंदर द्रव्य, गुण और पर्यायों के साथ परिणमन होता है। मतलब किसी पर्याय का निकलना, किसी पर्याय का उत्पन्न होना,लेकिन द्रव्य ज्यों का त्यों बना रहता है। इसी को कहते हैं उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य।

इसीलिए कहीं कहीं आचार्यों ने**ध्रौव्य को भी पर्यायथिकनय से स्वीकार किया है।**ध्रोव्यपना भी माने जो द्रव्य है वो भी किसी पर्याय से है। जैसे किसी प्रयाय से द्रव्य नष्ट हो गया।**पज्जायेणदुकेणवि**किसी पर्याय से द्रव्य नष्ट हुआ, किसी पर्याय से उत्पाद हुआ। और आचार्य कहते हैं किसी पर्याय से वह बिलकुल वैसा का वैसा ही रहा।फिर जब उसमें हम पर्याय देखेंगे ध्रौव्यपने की, तो वह द्रव्य में भी वह ध्रौव्यपना उस पर्याय के साथ घटित हो जाता है। इसलिए वह पर्यायार्थिकनयका भी विषय बन जाता है और जब द्रव्यत्व भाव देखेंगे तो वह केवल द्रव्यार्थिकनय का विषय बनेगा। ये नयों के माध्यम से पूरे द्रव्य को जाना जाता है।

<u>द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय</u>

दो प्रकार के नय होते हैं।एक द्रव्यार्थिकनय और एक पर्यायार्थिकनय।द्रव्यार्थिकनय द्रव्य को बताएगा और पर्यायार्थिकनय पर्याय को बतायेगा।लेकिन द्रव्य को बताते हुए भी उसके द्रव्यत्वभावों को बताएगा, द्रव्य स्वभावको बतायेगा।उस द्रव्य की ऐसी पर्याय को नहीं बताएगाकि वो द्रव्य पहले भी ऐसा ही शुद्ध था, आज

भी वैसा ही शुद्ध बना हुआ है।यह उसका काम नहीं है।कई लोग इसमें गलती करते हैं।द्रव्य भी अशुद्ध होता है यह विषय बनेगा पर्यायर्थिकनय का।लेकिन द्रव्यार्थिकनय क्या कहेगा? कि इसमें द्रव्यत्ववही है, यही वह द्रव्य है जो पहले था और यही आज है। ये समझना चाहिए, द्रव्यार्थिकनय का विषय द्रव्यत्वही होता है और पर्यायार्थिकनय में तीनों चीजें आ सकती हैं।

उत्पाद भी, व्यय भी और ध्रौव्य भी। ऐसा।ठीक है ना।आ रहा है कुछ समझ में? अब तो कुल मिला कर के इतना समझने का है, कि ये जो पर्याय है, इस पर्याय को जब आप नष्ट होता हुआ देखें तो आपके लिए क्या होना चाहिए? किसी भी प्रकार का दुःख नहीं होना चाहिए। यह द्रव्य, गुण पर्याय को समझने का प्रयोजन है।क्या सुन रहे हो? अभी तक इतनी पर्याय नष्ट होती आई हैं। बचपन की पर्याय छूटी, युवावस्था की पर्याय आई। युवावस्था की भीछूटती जा रही है, बुढ़ापे की आती जा रही है, आप कभी परेशान नहीं हुए। किसी भी पर्याय के नष्ट होने पर आपको दुःख नहीं हुआ और ये पर्याय नष्ट होते होतेहोतेहोतेहोते बिलकुल जब last में पहुँचेगी, तब आपको दुःख होता है।तो दुःख क्यों होता है? अब ये पर्याय छूटी ! अब सुनो, देखो, समझना, अब इसको समझने का मतलब क्या है? अब यह पर्याय छूटी। ये पर्याय छूटी तो अब आपको दुःखी इसलिए नहीं होना है क्योंकि ये अपना आत्म द्रव्य, इस पर्याय के छूटते ही नई पर्याय पुनः प्राप्त करेगा। विश्वास हो रहा है कि नहीं हो रहा है? **अगर होगा तो यह द्रव्य, गुण, पर्याय को समझने का मतलब है।**जब अभी तक पर्याय नष्ट होती आ रही थी, हमने कभी दुःख नहीं किया। महाराज ! अभी तक तो नष्ट होती आ रही थी, तो पता नहीं पड़ता था। दिखता तो रहता था कम से कम, ये वही है, ये वही है।पुरानी फोटो देख के तो काम चला लेते थे। लोग तो कहते थे कि ये वही है, ये वही है। अब तो कुछ नहीं कहेगा कोई।दूसरों के ऊपर कभी भी जीवन नहीं चलता है, जीवन अपने अधीन होता है, स्वाधीन होता है।

आपको दुःख किसबात का होता है? कि अब लोग हम को नहीं देख पाएंगे, लोग हमको नहीं जान पाएंगे। लोग क्या कहेंगे? लेकिन आपको विश्वास क्या करना है? हमारा आत्म द्रव्य कभी भी पर्याय के बिना रह नहीं सकता है। ये पर्याय छूट रही है तो अगली पर्याय भी तुरंत मिलने वाली है। अब वह दिख नहीं रही महाराज ! इसीलिए तो कष्ट होता है।दिखेगी तो तब जब इसको छोड़ोगे। इस पर्याय को छोड़ कर के ही वह अगली पर्याय फिर शुरू होगी। और उसका जितनाlife time होगा, उतना फिर आपको उस पर्याय में रहना होगा। तो एक पर्याय के छूटने पर हमारे अंदर यह दुख का भाव नहीं आना चाहिए कि ये पर्याय नष्ट हो रही है। आप उस पर्याय को लिए कब तक बैठे रहोगे? क्या सुन रहे हो? पुरानी वस्तु छोड़ देते हो, तो पुरानी पर्याय भी तो छोड़नी पड़ेगी ही। पुराने उस वस्त्र की तरह, उस पुरानी पर्याय को छोड़ने में भी कष्ट नहीं होना चाहिए। क्योंकि अब आपको विश्वास होने लगा कि द्रव्य की ये पर्याय थी। एक नष्टहुई और दूसरी उत्पन्न हो जाएगी। विनाश होते ही उत्पाद हो जाता है। time gap भी नहीं है। जिस time पर विनष्ट होगी उसी time पर उत्पन्न हो जाएगी। जिस समय पर ये पर्याय छूटेगी उसी समय पर देवपर्याय उत्पन्न हो जाएगी।क्या सुन रहे हो? **पिछला देखोगे**

तो दुख होगा, अगला देखोगे तो हर्ष होगा और अगला पिछला कुछ न देख कर के, केवल द्रव्य को देखोगे तो समभाव बना रहेगा।क्या चाहिए आपको? समभाव नहीं भी आता है तो कोई बात नहीं, कम से कम दुःख का भाव छूट जाए। ये बड़ी बात नहीं है? दुःख का भावछूटने में भी यह रहेगा कि आपकी पर्याय के ऊपर दृष्टि है। लेकिन जब आप समभाव में होंगे तो इसका मतलब है कि आपकी दृष्टि कहाँ है? द्रव्य के ऊपर है।क्योंकि मेरे आत्म द्रव्य का कभी भी विनाश नहीं होता। वो तो अपने द्रव्य जीवत्व भाव के साथ में द्रव्यत्व भाव के साथ में सदा बना रहेगा। ये पर्याय छूटेगी, अन्य पर्याय हमको प्राप्त हो जाएगी। लेकिन हमारा आत्म द्रव्य तो कभी भी नष्ट होने वाला नहीं है। इसलिए मरते समय पर अब दुःख नहीं करना। फिर महाराज वही बात आ गयी है। ऐसा कैसे हो सकता है? आप के द्वारा उस चीज को रोका भी नहीं जा सकता है और आप जानते हो कि ये रुक नहीं सकता है।फिर भी आप उसको पकड़ने के लिए तैयार हो जाते हो और उसके लिए दुःखी होते हो। इसी को कहते हैं**पर्याय मूढ़ता, पर्याय द्रष्टि।**हैं न। तो यही समझना है, ये उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य के माध्यम से, कि ये उत्पाद व्यय तो चलता ही रहता है, चल रहा है, अभी भी चल रहा है, पहले भी चलता आया है। लेकिन अभी कैसा था? अब देखो इसमें क्या अंतर हो गया है? एक और अच्छी चीज आपको बताने जा रहा हूँ।

सदृश्य पर्याय और विश्दृश्य पर्याय

दो प्रकार के परिणमन होते हैं यानि पर्याय दो प्रकार की निकलती हैं।एक कहलाती है**सदृश्य पर्याय**और एक कहलाती है**विश्दृश्य पर्याय**।**सदृश्य**माने? समान पर्याय। और**विश्दृश्य**माने? असमान पर्याय। अब हमें ऐसा लगता है, ये दुःख इसलिए होता है कि अभी तक तो जो पर्याय उत्पन्न होती थी, वह समान पर्याय रहती है।समझ आ रहा है? मतलब मनुष्य तो है ही और मनुष्य के साथ में वह मनुष्यत्व की पर्याय जो है, चाहे वो बाल हो, चाहे युवा हो जाए, वृद्ध हो। लेकिन वह मनुष्य पर्याय के रूप में समानता बनी हुई है। यह पूरी पर्याय आपकी क्या कहलाएगी? मनुष्य पर्याय की अपेक्षा से, एक समान पर्याय है।हैं न। और उस में यह भेद हो रहे हैं, पर्याय में। तब तो आपको सहन हो जाते हैं ,भेद। बचपन से युवा हो गए, अच्छा हो गया। अब बुढापा आ गया तो अब सहन ना भी हो, तो भी ठीक है महाराज। कम से कम बने तो हम वही हैं।फलाने चंद।हैं न। क्योंकि समान पर्याय चल रही है। दुख होने का कारण यह है कि अब यह समान पर्याय से अब वोकैसी हो जाएगी? अब बदल जाएगी वो पर्याय। असमान पर्याय हो जाएगी। इसलिए दुःख हो जाता है आपको।यानि मनुष्य पर्याय से देव पर्याय भिन्न हो गई तो उसको हम क्या बोलेंगे? इसकी अपेक्षा से वो असमान हो गई।हैं न।**सदृश्य**पर्याय से वह**असदृश्य**पर्याय हो रही है, एक अपेक्षा से हमारे लिए। क्योंकि मनुष्य पर्याय छूट कर के वोकैसी हो रही है? **असदृश्य कह लो ,**विलक्षण कह लो, दूसरी कह लो, भिन्न कह लो। अभी तो ये मनुष्यत्व की अपेक्षा से एक अभिन्न पर्याय है। अब मनुष्य प्रयाय छूट कर के दूसरी मिलेगी। समझ आ रहा है? तो इसलिए उस पर्याय में जो**विसदृश्यता**है, वो अभी आपने देखी नहीं। इस कारण से इस**सदृश**पर्याय के साथ में

जो हम बहुत दिनों तक रहे, बहुत सालों तक रहे, उससे मोह हो गया। इसलिए वह छूटती नहीं है। समझ में आ रहा है? लेकिन छूटे बिना भी रहती ही नहीं है। तुम नहीं छोड़ोगे, तो भी छूटेगी और तुम छोड़ोगे तो भी छूटेगी।

समझ में आया कि नहीं आया? तो यह**सदृश्य**पर्याय और वह हो गई**असदृश्य**पर्याय, **विसदृश्य**पर्याय। ठीक है न।तो इस कारण से भी हमें हो सकता है, दुःख हो। कि हमारी ये**सदृश्य**पर्याय छूट कर के, अब कोई नई पर्याय मिलेगी।कौन सी मिलेगी? इसकी चिंता नहीं है, चिंता तो इसकी है कि यह क्यों छूट रही है? आप पूछ लो अपने मन से।चिंता तो इसकी है कि यह क्यों छूट रही है। तो देखो द्रव्य गुण पर्यायों का यह परिणमन समझ कर के, जिस परिणमन को हम रोक नहीं सकते, जिस भाव को हम बदल नहीं सकते, उसमें हमें माध्यस्थ हो जाना चाहिए। माध्यस्थ होने का मतलब? हम अपने परिणामों को शांत बना लें कि ये पर्याय छूट रही है तो,छूटेगी। अगली पर्याय मिले न मिले, हमें कोई मतलब नहीं, लेकिन मेरा जीवतत्वतो कभी भी नष्ट होने वाला नहीं है।मेरा प्राण तो चेतना है। निश्चय नय से मेरा प्राण क्या है? चेतना। वह चेतना प्राण तो मेरा कभी भी नहीं छूटेगा, यह द्रव्य प्राण भले छूट जाए। ये चार प्राण भले ही छूट जाए।हैं ना।इस तरीके की जब परिणतियां आती हैं, तब आपकी दृष्टि पर्याय से हटकर के द्रव्य की ओर आती है।सुन रहे हो? लोग पूछते हैं, मरते वक्त क्या करना? मरते समय दुःख क्यों होता? क्या समझायें अज्ञानी जीवों को मरते समय क्या होता है? जिन्हें कुछ पता ही नहीं है। जो जानेंगे, इस ढंग से वो ज्ञान के साथ में मरण करेंगे, उन्हें किस चीज का दुःख होगा? उन्हें किसका दुःख होगा? अगर छोड़ने का ही दुःख होता, तो फिर कुछ भी नहीं छोड़ते।और जब सब कुछ छोड़ा है, तो बस एक चीज और बची हैं छोड़ने को। क्या समझ में आ रहा है? इसलिए**छोड़ने का अभ्यास करो, तो सबकुछ छोड़ने के समय पर भी कोई दुःख नहीं होगा।**

हर आदमी कहता है, बस! आगे बढ़ो, आगे देखो। नहीं बोलते हो? पीछे मत देखो, आगे बढ़ो, आगे देखो।इसमें भी ऐसा ही लगाओ।मरने के समय पर आप पीछे देखते हो कि आगे देखते हो? बेटा, नाती, भैया, पोता बस।यह पीछे देख रहे हो, कि आगे देख रहे हो? मरते समय पर क्या देखना? जब हमने यही सीखा है, आगे बढ़ो।हर चीज आगे बढ़ रही है। द्रव्य अपने स्वभाव से ही प्रयायों को बदल के आगे बढ़ रहा है, जैसे नदी हमेशा आगे बढ़ती चली जाती है। अब आपके पीछे देखने की जरूरत क्या है? और पीछे का मतलब जो हमने अपने मोह से जोड़ रखा, उसको देखने का नाम पीछे देखना। और आगे हमारा कुछ बिगड़ना नहीं है। इसलिए आगे देखोगे तो पीछे वाले से मोह होगा नहीं, तो आपके परिणामों में शांति बनी रहेगी।क्या सुन रहे हो? दिल्ली में तो समाधि मरण बहुत कम होते हैं।सब कोई छोड़ना ही कहाँ चाहता है महाराज। दिल्ली ऐसी जगह को कौन छोड़ना चाहता है? सब छूट जाता है। नहीं भी छोड़ोगे, तो भी छूटताहै। लेकिन ज्ञान के साथ छोड़ने का मतलब क्या होता है? पीछे नहीं देखना,अब आगे देखो, आगे बढ़ो। अगर इतना भी आपको याद रहेगा पीछे नहीं देखना, तो मृत्यु के समय पर आपको दुःख नहीं होगा। आपके परिणाम मोहित नहीं होंगे। आपके अंदर दुःख का भाव नहीं आएगा कि हमसे छूट रहा है।छूट क्या रहा है, सब छूटा ही हुआ है वो तो। आ रहा हैं समझ में?

ये क्या छूट रही है? पर्याय छूट रही है। द्रव्य तो अपने पास ही है, ये बस पुराने से नयापन होने जा रहा है।इतना ही सा तो परिवर्तन है उसमें। अपने को रोने धोने की और दुखी होने की क्या जरूरत रहती है? जो मर रहा होता है, जो छोड़ रहा होता है अपनी पर्याय को, वो भी रोता है। और उसके साथ जितने भी खड़े होते हैं, वे सब रोते हैं। नहीं रोए महाराज तो भी अच्छा नहीं लगता है।यह भी व्यवहार माना जाता है, हैं न। समाज वाले क्या कहेंगे। तो ये सब जो व्यवहार मोह के साथ करते हैं, ये जो मोह के साथ किया हुआ व्यवहार है, यह वस्तुतः हमारे साथ एक तरीके से उल्टी बुद्धि के साथ चलता है। अगर आप देखोगे वास्तव में। हैं न। जो व्यवहार हम मोह के साथ कर रहे हैं, हम उल्टी बुद्धि के साथ करतेहैं पूरा व्यवहार।

देखो ! जब जीव मरता नहीं, हम कहते हैं जीव मर रहा है।समझ में आ रहा है? और जिसके लिए मरना है, उसके लिए जो यह रोना होना चाहिए वो रोता नहीं, दूसरे रोते हैं। जब मर जाता है, चला जाता है आदमी, उस समय जब कुछ सुनता नहीं है तब हम उसको सुनाते हैं - राम राम सत्य राम राम सत्य है। सब उलटा चलता है। इसी को बोलते हैं व्यवहार में मोहि व्यक्ति हर काम उल्टा करता है, उल्टी बुद्धि से चलता है।समझ में आ रहा है? लेकिन करना पड़ता है। ये सब नाटक तो है ही लेकिन नाटक को नाटक समझो तब ना।नाटक को तो हम ऐसे जीते हैं कि जैसे नाटक में कोई रो रहा है तो हम भी रोने लग जाते हैं।नाटक में कोई हँस रहा है तो हम भी ऐसा करने लग जाते हैं।

गुरु के मरण पर शिष्य का दुःख

जब किसी के गुरु का मरण होगा, उसके शिष्य को भी दुःख तो होगा। ठीक है।वो बात नहीं कह रहा हूँ। आपके घर में भी किसी का मरण होगा, आप रो लोगे, ठीक है। लेकिन वह रोते हुए भी आपके अंदर ये ज्ञान रहे कि यह रोना किस लिए है? हैं न।एक तात्कालिक दुःख होता है, थोड़ी देर के लिए होता है।हैं न। वो तो चलो ठीक है, एक अंतरमुहर्तके लिए हो गया, एक दिन के लिए हो गया। थोड़ा सा रहता है, इतना भी चलो ठीक है। दो दिन के लिए, तीन दिन के लिए, आपकी अपेक्षा से तेरह दिन के लिए है।उसके बाद तो छूट जाना चाहिए न। उसके बावजूद भी तो हम उन्हीं की पुण्यतिथि मनाते रहते हैं। उन्हीं के ऊपर माला डालते रहते हैं। तो ये तो हम मोह के कारण से करते रहते हैं।जिस जीव ने अपने जीवन में कुछ किया नहीं, हम उसके लिये भी करते रहते हैं।साधुओं की पुण्यतिथि मनाई जाती है, वो अलग बात है। चलो, उनके हम चारित्र को याद कर लेते हैं,उनके संयम को याद कर लेंते हैं। लेकिन गृहस्थों के लिए भी क्या होता है? तो उनका मोह नहीं छूटता।अगर अपने को कभी तात्कालिक रोना हैं थोड़ा बहुत, गुरु के अभाव में शिष्य के लिए दुःख होता है।भगवान महावीर स्वामी भी गए तो गणधरपरमेष्ठी को भी हो जाता है।आदिनाथ भगवान मोक्ष गये तो भरत चक्रवती भी रो लिए , ऐसा लिखा है आदिपुराण में। तो यह अलग बात है। लेकिन उनके साथ में ऐसी उल्टी बुद्धि नहीं रहती, जैसी उल्टी बुद्धि सामान्य लोगों की रहती है। यह कहने का मतलब है। देखो ! क्रियाएं तो

सब वही होंगी, देखने में सब वही आएगा। लेकिन उल्टी बुद्धि के साथ होना और सीधी बुद्धि के साथ होना, इसमें अंतर है कि नहीं? एक अज्ञानी भी भोजन करता है और एक ज्ञानी भी भोजन करता है।एक अज्ञानी भी चलता है, एक ज्ञानी भी चलता है। एक अज्ञानी का भी मरण होता है, एक ज्ञानी का भी मरण होता है। कहा सबके लिए वही जाएगा कि ये मर गया, ये भोजन कर रहा है, यह चल रहा है। लेकिन उसमें और इसमें अंतर होता है कि नहीं होता? यही अंतर देखने में आता है और यही अंतर, उसका भीतरी अंतर होता है। तो अगर कभी कोई साधु भी, किसी के गुरु इत्यादि के वियोग में कभी दुःखी भी होता है, तो वह एक अंतर के साथ रहता है। उसे अपने जैसा नहीं समझना। समझ में आ रहा है? संसारी जीवों का और साधु जीवों का अलग अलग होता है। उनकारहेगा, तत्काल रहेगा और उनके अंदर ज्ञान में इतना मिथ्यापन नहीं आता जैसा सामान्य जीव के अंदर पड़ा रहता है। यह अंतर तो रहेगा। बाहर से भले ही रोना हो जाए, कोई बात नहीं। लेकिन भीतर से ज्ञान में तो सम्यकपना बना रहता है। तो इसी चीज को आगे पढ़ना है।

पर्याय के वश किसी बस जन्म पाता, पर्याय के वश किसी वह अन्त पाता।।
पर्याय के वश किसी ध्रुव कूप होता, ऐसा पदार्थदल है त्रय रूप ढ़ोता।

देखो यहाँ पर भी आचार्य महाराज ने ध्रुव के साथ भी पर्याय शब्द का प्रयोग किया है। मतलब उत्पाद में भी पर्याय है, व्यय मे भी पर्याय है और ध्रुवपना है। वह भी उसकी पर्याय है। लेकिन फिर भी जो उसमें द्रव्यपने का भाव है, वह उसका द्रव्य है। ऐसे एक बहुत बड़ा अंतर है। इस अंतर को आप लोग अभी समझ नहीं पाएंगे, जब तक आपको नयों का गहराई से ज्ञान न हो। द्रव्यार्थिकनय बिल्कुल सामान्य को ग्रहण करने वाला है, उस द्रव्य के द्रव्यत्व को, सामान्य को। और द्रव्य भी चूंकि पर्याय के साथ बदल रहा है, इसलिए द्रव्य को भी हम कहेंगे कि पर्याय के द्वारा पर्याय के वश किसी ध्रुव कूप होता। किसी पर्याय से वह ध्रुव भी है और किसी पर्याय से उत्पाद है और किसी पर्याय से विनाश हैं।पर्याय में भी उत्पाद व्यय और ध्रुव तीनों होते हैं।ये आप समझ सकते हैं। यह एक नया विषय है।कूप माने तो यहां पर जैसे कोई गहरी चीज होती है न, जो गहराई है उसकी, कभी भी उसमें से हटती नहीं है तो इसलिए ध्रुव को कूप की उपमा दे दी।

प्रवचन११ - अरिहंतभगवानकास्वरूप (गाथा०१९-०२१)

तंसव्वट्ठवरिट्ठंइट्ठंअमरासुरप्पहाणेहिं।
जेसद्दहंतिजीवातेसिंदुक्खाणिखीयंति ॥ १९ ॥

संसार में प्रवर हैं अरहन्त होते, देवाधिदेव जिनके पद नित्य धोते।
श्रद्धान यूँ कर रहे सुख में पलेंगे, सारे अनिष्ट उनके मिटते मिटेंगे।।

अन्वयार्थ- (सव्वट्ठवरिट्ठं)जो कि सभी धर्मों में वरिष्ठ हैं**(अमरासुरप्पहाणेहिं)**देव और असुर मुख्यजनों से**(इट्ठं)**जो स्वीकृत है**(तं)**उन जिनेन्द्रभगवान् की**(जेजीवा)**जो जीव**(सद्दहंति)**श्रद्धा करते हैं**(तेसिं)**उनके**(दुक्खाणि)**दुःख**(खीयंति)**नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

अरिहंत भगवान की श्रद्धा से दुखों का निवारण

यह जो गाथा है, यह आचार्य अमृतचंद्र जी महाराज जी की टीका में नहीं आती है। किन्तु जयसेन महाराज और प्रभाचंद जी महाराज ने अपनी टीका में इस गाथा को लिया है और इसकी टीका भी की है। कहते हैं - **तंसव्वट्ठवरिट्ठं**यानि उन जिनेन्द्र भगवान को, जो सभी प्रकार के अर्थों में वरिष्ठ हैं या सभी प्रकार के धर्मों में वरिष्ठ हैं और जो **अमरासुरप्पहाणेहिंइट्ठं** अमर और असुरों में जो प्रधान हैं, उनके द्वारा जो इष्ट हैं, ऐसे हमने स्वयंभू भगवान, अरिहंत भगवान की बात की है।उन्हीं के लिए यहाँ कहा जा रहा है कि जो ऐसे भगवान की, स्वयंभू भगवान की श्रद्धा रखते हैं।**जे**माने जो जीव, **सद्दहंति**माने श्रद्धान करते हैं।**जीवातेसिंदुक्खाणिखीयंति**। उनके दुःखो का क्षय हो जाता है, उनके दुःखों का नाश होता है। यानि भगवान की इस प्रकार से जो श्रद्धा रखते हैं, उनके दुःख नष्ट होते हैं। दुःख का मतलब? जितने भी कर्मजन्य दुःख हैं, वे सारे के सारे दुःखो नष्ट होते हैं। जब हम इस प्रकार से, जो स्वयंभू भगवान हुए हैं, उनका हम श्रद्धान करते हैं, उनकी हम रुचि करते हैं। यह इस गाथा का तात्पर्य है। मतलब यह है कि इस प्रकार से जो हमने स्वयंभू भगवान का अभी तक वर्णन किया है, जो शुद्धोपयोग के फल से बने हैं, ऐसे भगवान की जो श्रद्धा करेंगे तो उनके भी दुःख दूर होंगे। दुःख दूर होने का मतलब केवल तात्कालिक दुःख ही नहीं,त्रिकालिकदुःख भी दूर होंगे। तात्कालिक दुःख क्या कहलाते हैं? जो हम थोड़ा सा कुछ भी अपने लिए सुख की इच्छा करते हैं और जो प्रतिकूलता आ जाती हैं, उनसे जो हम अपने आपको बचाने की इच्छा करते हैं, वो तो छोटे मोटे दुःख हैं।जहाँ बड़े दुःखों को दूर होने की सामर्थ्य है तो वहां छोटे दुःख तो अपने आप दूर हो ही जाते हैं। इसलिए अरिहंत भगवान की श्रद्धा करने मात्र से ही सब दुःख दूर हो जाते हैं।

आपके वीतराग भगवान हमारे क्या दुःख दूर कर सकते हैं?

कई लोगों के लिए यह कहने में आता है और ऐसा मानने में आता है कि भगवान की पूजा, दर्शन, उनकी आराधना करने से हमें क्या मिलेगा? हमारे क्या दुःख दूर होंगे? भगवान तो वीतराग हैं।**आपके भगवान हमारे क्या दुःख दूर कर सकते हैं?** इसलिए हम वीतराग भगवान को छोड़ करके अन्य जगह पर अपने दुःख दूर करने के लिए प्रार्थना करने जाते हैं। तो उन्हें यह गाथा सुननी चाहिए और उन्हें इस बात पर विश्वास करना चाहिए कि भगवान के दर्शन, पूजन की बात तो बहुत बड़ी बात हो गई। अगर केवल आप ऐसे भगवान का श्रद्धान भी कर लोगे तो भी आपके दुःख दूर हो जाएंगे।

श्रद्धा के अभाव में दुःख दूर नहीं होते

जब श्रद्धान करोगे, तभी तो रुचि रखोगे। रुचि होगी तभी तो आप दर्शन और पूजन का भाव बनाओगे। तो दर्शन, पूजन का भाव आने से पहले हमारे अंदर इस तरह की श्रद्धा हो जाए कि हाँ! भगवान यही हैं। स्वयंभू यही कहलाते हैं। इस प्रकार की जो श्रद्धा, आस्था है, उसी से ही हमारे दुःखों का नाश हो जाता है। अगर हमें श्रद्धा आस्था नहीं है, हम पूजा इत्यादि करते हैं तो उस पूजा के माध्यम से हमारे दुःखों का नाश हो जाए, जरूरी नहीं है। क्योंकि आप पूजा तो ऊपर ऊपर से कर रहे हो। श्रृद्धा आपकी है नहीं। पहले भगवान का स्वरूप समझो और उनके स्वरूप पर श्रद्धा करोगे तब जा कर के आपको जो पूजा के भाव अपने आप अंदर से आएंगे तो वह दुःख दूर करने के लिए अपने आप कारण बन जाएंगे। इसलिए कहा जाता है कि पहले हम भगवान के ऊपर, उनके स्वरूप को जानकर, श्रद्धा करें। श्रद्धा करने के बाद में जब रुचि उत्पन्न होगी तो अपने आप आपके दर्शन पूजन के भाव निरंतर बने रहेंगे। अधिकतर लोग तो केवल दर्शन पूजन तो करते हैं लेकिन कोई श्रद्धा नहीं रखते हैं। सही तो कह रहा हूँ? भगवान का स्वरूप समझते नहीं कि हम किन की पूजा कर रहे हैं। हमारे लिए अरिहंत भगवान, सिद्ध भगवान का स्वरूप क्या होना चाहिए? और उनकी पूजा करने से हमारे दुःख दूर होंगे कि नहीं? जब तुम्हें संशय ही है तो दुःख दूर कैसे हो जाएंगे। और जिन्हें कोई संशय नहीं है, उनके दुःख दूर हो जाते हैं। नहीं होते हैं?

श्रद्धा से ही दुखों का नाश

धनञ्जय सेठ का दुख दूर हुआ था। क्यों हुआ था? क्योंकि उन्हें आपकी तरह संशय नहीं रहता था। उन्हें श्रद्धान था कि ये तो छोटे मोटे दुःख है और ये दुःख अगर दूर भी हो जाते हैं तो इससे हमें कोई फर्क नहीं पड़ता और नहीं भी हो जाए तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन इतना विश्वास है कि अगर दुःख है तो यह सब भगवान की श्रद्धा से दूर हो जाएगा। इसलिए श्रद्धा के साथ पूजन करते थे। तो आप लोग भी, ऐसे ही ये मत

समझो कि हम प्रवचनसार बहुत कठिन ग्रंथ पढ़ रहे हैं। कठिन ग्रंथ नहीं पढ़ रहे हैं, ये अरिहंत भगवान का, सिद्ध भगवान का स्वरूप समझ रहे हैं। अभी हम जो जिंदगी भर णमोअरिहंताणं, णमोसिद्धाणं पढ़ते आ रहे हैं और पता नहीं रहता है कि अरिहंत क्या होते हैं? सिद्ध क्या होते हैं? तो यहाँ बारीकी से वो सब चीज समझाई जा रही हैं कि अरिहंत कैसे बने, सिद्ध कैसे बने,मोक्ष कैसे हुआ? और जिनको हम भगवान मान रहे हैं वो भगवान भी इसी तरह के पुरुषार्थ से बने, तो उन भगवान के ऊपर श्रद्धा करोगे तो तुम्हारे लिए वह अरिहंत सिद्ध को नमस्कार करना कुछ गुणकारी होगा। और फिर उनकी पूजा इत्यादि करना तो विशेष गुणकारी होगी।

भव्य जीव अरिहंत भगवान पर श्रद्धा अवश्य रखते हैं

तो ये जो हमारे अंदर श्रद्धा की कमी है, इसीलिए यहाँ कहा जा रहा है कि जो भव्य जीव होते हैं, वे ऐसे अरिहंत भगवान पर श्रद्धा अवश्य रखते हैं और इसीलिए उनके सब दुःखों का नाश हो जाता है। अब दुःख में तो सभी आ गए। जब संसार के बड़े बड़ेदुःखों का नाश हो रहा है तो छोटे मोटे दुःख, बेटे बेटियों के व्यापार के दुःख कहां बचेंगे? वो नष्ट हो जाएंगे। थोड़ी देर श्रद्धा करके भगवान की आस्था से पूजा करो, दर्शन करो तो सब लाभ भी प्राप्त होंगे। इसलिए जो लोग यह कहते हैं उनको यह गाथा, आप लोग याद कर के सुना देना। ऐसा मत कहो कि वीतराग भगवान कुछ देते नहीं हैं। वीतराग भगवान से भी सब कुछ हमें प्राप्त होता है। और क्या प्राप्त करना है? दुःखको ही तो दूर करना है। भगवान तो ऐसे दुःख दूर करते हैं कि जड़ मूल से एक बार नष्ट हो तो फिर द्वारा उत्पन्न नहीं होंगे। अन्यत्र तो जो दुःख दूर होंगे वो थोड़ा थोड़ा ऊपर ऊपर से कुछ हो जाएं तो हो जाएं। लेकिन यहां तो कैसे होंगे? जड़मूल से नष्ट होंगे। क्योंकि दुःख का जो कारणभूत कर्म है, वह कर्म ही जब नष्ट हो जाएगा तो फिर दुःख देने की उसमें सामर्थ्य बचेगी ही नहीं। इसीलिए अगर अपने कर्मों को जड़मूल से, आत्मा से विनष्ट करना चाहो तो ऐसे इष्ट भगवान की हमेशा श्रद्धा के साथ में पूजा, अर्चना और दर्शन करो और ऐसे भगवान को हमेशा अपने लिए श्रद्धा का विषय बनाये रखो।ये यहां इस गाथा के तात्पर्य में बताया गया हैं।

संसार में प्रवर हैं अरहन्त होते, देवाधिदेव जिनके पद नित्य धोते।
श्रद्धान यूँ कर रहे सुख में पलेंगे, सारे अनिष्ट उनके मिटते मिटेंगे।।

यह भी विश्वास की बात है। कितना बड़ा विश्वास है? देखो भगवान तो दिख नहीं रहे हैं। बस विश्वास करना है अपने को कि सारे दुःख, सारे अनिष्ट उन्हीं के विश्वास से, उन्हीं की श्रद्धा करने से मिट रहे हैं, मिटते हैं और आगे भी मिटेंगे। इसी का नाम श्रद्धान है। आगे कहते हैं कि वो जो स्वयंभू भगवान की आपने चर्चा की है और जो आत्मा स्वयंभू बन गई है, माने स्वयं सिद्ध हो गए हैं या अरिहंत बन गए हैं तो उनके लिए होता क्या है? यह

एक प्रश्न कई लोगों के दिमाग में रहता है कि भगवान करते क्या हैं? कौन सा उनको यह आनंद आता है और वह आनंद आ कैसे सकता है? जब उनके पास में इंद्रियां ही नहीं होती, शरीर ही नहीं होता, तो वो आनंद आता कहाँ से हैं? बिना इंद्रियों के वह आनंद क्या काम करेगा? तो उनकी शंका का समाधान यहाँ पर किया जा रहा है। इंद्रियों के बिना उनके अंदर ज्ञान कैसे रह सकता है? इंद्रियों के बिना उनके अंदर सुख कैसे रह सकता है? इस बात की जो शंका उत्पन्न होती है, उसी का समाधान करने के लिए गाथा आ रही हैं

पक्खीणघादिकम्मोअणंतवरवीरिओअधिगतेजो।
जादोअदिंदिओ सो णाणंसोक्खं च परिणमदि॥ २०॥

शुद्धोपयोगवशघातिचतुष्क भागे, जागे अनन्त बल औ अति तेज जागे।
आत्मा अतीन्द्रिय हुआ, जड़ता नहीं है, विज्ञान में स्वसुख में ढ़लता वही है।।

अन्वयार्थ- (पक्खीणघादिकम्मो)जिसके घाति कर्म क्षय हो चुके हैं, **(अदिंदिओजादो)**जो अतीन्द्रियहो गया है**(अणंतवरवीरिओ)**अनन्त जिसका उत्तम वीर्य है और**(अधिगतेजो)**अधिक जिसका (केवलज्ञान और केवलदर्शन रूप) तेज है**(सो)**वह स्वयंभू आत्मा**(णाणंसोक्खं च)**ज्ञान और सुख रूप**(परिणमदि)**परिणमन करता है।

गाथा का अर्थ

देखो बहुत अच्छे भाव हैं, समझ में आ जाएं तो।**पक्खीणघादिकम्मो। पक्खीण**माने प्रक्षीण - प्रकृष्ट रूप से क्षीण हुए हैं।जिनके घाति कर्म नष्ट हो गए। भगवान के लिए वह स्वयंभू जो बने हैं, उनका जो आत्मा है, उसमें क्या हुआ है? तो सबसे पहली चीज यह हो गई है कि उनके घाति कर्म नष्ट हो गए हैं। घाति कर्म का मतलब? जो कर्म आत्मा के ही गुणों का घात करते थे, वह घात करने वाले कर्मों का नाश हो गया। यानि जो आत्मा के गुणों को ढांकने के लिए, उनको विनाश करने के लिए सहायक बनते थे, ऐसे कर्म ही भगवान ने नष्ट कर दिए तो उनका ज्ञान आदि जितने भी गुण थे वह सारे के सारे गुण प्रकट हो गए।

भगवान के अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य

अणंतवरवीरिओउनका श्रेष्ठ वीर्य अनंत के रूप में प्रकट हो गया है। आत्मा की शक्ति को वीर्य शब्द के नाम से कहा जाता है। अनंत वीर्य जो शक्ति है, आत्मा की वह शक्ति प्रकट हो गई है। मावे आत्मा की अब शक्ति को रोकने वाला, ढांकने वाला कोई भी बाधक कारण उनके सामने नहीं है। क्यों नहीं है? क्योंकि उन्होंने सब

प्रकार के जो अंतराय कर्म थे, उनका नाश कर दिया। और खास तौर से जो मुख्य रूप से वीर्यन्तराय कर्म होता है, उसका नाश करने पर यह अनंत वीर्य, अनंत शक्ति की उस आत्मा को प्राप्ति हो जाती है। और क्या हो गया? **अधिगतेजो**उनके अंदर तेज बहुत अधिकता के साथ में उत्पन्न हो गया है। तेज का मतलब? जिसे हम किसी भी तरह का प्रकाश कह सकते हैं। उनके अंदर कौन सा तेज पैदा हो गया? तो आचार्य कहते हैं कि उनके अंदर ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्मों का नाश हो जाने से अनंत ज्ञान और अनंत दर्शन का एक अद्भुत तेज पैदा हो गया है। अद्भुत प्रकाश पैदा हो गया हैं। अनंत ज्ञान की वह शक्ति प्रकट हो गयी है। अनंत दर्शन की शक्तियां प्रकट हो गई है। जिससे वह इंद्रियों के बिना भी अनंत पदार्थों को जान सकते हैं और अनंत पदार्थों को देख सकते हैं।

इन्द्रिय ज्ञान का कम और ज्यादा होना

इंद्रियों के बिना भी जानना देखना होता है। ये इन्द्रिय ज्ञान को ही जो ज्ञान मानते हैं, उनको समझ में नहीं आ सकता है। इन्द्रिय ज्ञान के अलावा भी ज्ञान काम करता है। इन्द्रिय ज्ञान के अलावा भी ज्ञान होता है और उस इन्द्रिय ज्ञान से बढ़कर के वह आत्मा का जब ज्ञान प्रकट हो जाता है तो उसके आगे इन्द्रिय ज्ञान तो अपने आप छूट जाता है। इसी को बोलते हैं कि इंद्रियों का तो ज्ञान सब क्षयोपशमिक ज्ञान है। कभी कम कभी ज्यादा। क्षयोपशमिक ज्ञान का मतलब ही होता है, कभी कम कभी ज्यादा। बचपन था तब बहुत कम ज्ञान था। थोड़ी सी उम्र अच्छी हो गई, बीच की उम्र में इन्द्रिय ज्ञान बढ़ जाता है और फिर जब उमर ढलने लगती है तो इन्द्रिय ज्ञान पुन: फिर कम होने लग जाता है। महाराज ! अब आँखों से दिखता नहीं है।ग्रंथ तो है लेकिन इतने छोटे छोटे अक्षर दिखते नहीं हैं। कानों से सही ढंग से सुनाई पड़ता नहीं है। आप सुनाते तो हो, थोड़ा थोड़ा सुनने में आता है, थोड़ा थोड़ा निकल भी जाता है। जब सुना भी देते हो तो ध्यान तो कुछ रहता ही नहीं, महाराज। पता नहीं याददाश्त कहाँ चली गई? पहले सब याद हो जाता था, सब ध्यान रहता था।अब तो धीरे धीरे याददाश्त भी कम होती जा रही है।यह सब क्या हो रहा है? यह कम ज्यादा क्या हो रहा है? इन्द्रिय ज्ञान।

इन्द्रिय ज्ञान क्षयोपशमिक ज्ञान है

ये सारा का सारा ज्ञान, क्षयोपशमिक ज्ञान है, जो कम बढ़ती होता रहता है। अंत अंत में देखो, आदमी की स्थिति कैसी रह जाती है? उसको कुछ भी याद नहीं रहता। कुछ भी उसको सुनाओ, तो सुनने में नहीं आता। कुछ भी याद नहीं रहता। जैसे उसके लिए अब इन्द्रिय ज्ञान कुछ भी बचा ही नहीं।अंतिम समय देखा किसी का? देखा तो होगा, क्या होता है? जब चिल्लाते हो, सुन रहे हो, सुन रहे हो। अभी तो मैं बोल रहा हूँ तो सुन लेते हो। अंत में कुछ पूछा जाएगा तो बोल पाएंगे? बोलने की ताकत ही नहीं रहती। सुनने की भी भीतर से शक्ति ऐसी लगती है कि जैसे छूट गई हो। यहां तक कि आंखें खोलने तक की भी शक्ति नहीं रह जाती। उस

स्थिति में देखो, इन्द्रिय ज्ञान कितना कितना बिलकुल न्यूनता पर पहुँच जाता है। और फिर जा कर के जैसे ही वह पर्याय छूटेगी और फिर नई पर्याय मिलेगी। मान लो देव पर्याय मिल गई। तो तुरंत ही क्या होगा? एक अंतरमुहर्त में उस देव पर्याय में उसे पुनः मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान ही नहीं, अवधि ज्ञान भी मिल जाएगा। एक अंतरमुहर्त के बाद। इधर उसके लिए दो ज्ञान भी बिलकुल शून्यता में पहुंच रहे थे, मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान और जैसे ही देव पर्याय मिली, एक अंतरमुहर्त में जैसे ही पर्याप्त हुआ तो मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान और अवधि ज्ञान सब मिल गया। सब कुछ जानने, देखने लगेगा। मैं कहाँ से आया हूँ, कहाँ बैठा हूँ? एकदम से फिर ज्ञान काम करने लग जाएगा। वो अवधि ज्ञान भी क्या है? क्षयोपशमिक ज्ञान है। जो प्रकट भी हो जाता है, कम भी हो जाता है, कभी अगली पर्याय में जाता भी है, कभी नहीं भी जाता है। ये सारे के सारे ज्ञानों का काम ऐसा ही है। इसलिए जितने भी ये इन्द्रिय ज्ञान है, ये सब कमती बढ़ती होते रहते हैं। जब तक बादाम खाओगे तब तक दिमाग ठीक चलेगा।नहीं कहा जाता है? डॉक्टर बताते है ना। तो कुछ न कुछ हमें बाहरी कारण भी अपनी उस याद को, अपने ज्ञान को बनाए रखने के लिए लगाने पड़ते हैं।

इन्द्रिय ज्ञान क्षयोपशमिक ज्ञान के साथ ही होता है

और देखो ! इन्द्रिय ज्ञान कितनी जल्दी शिथिल पड़ जाता है? अगर पौष्टिक पदार्थ खाने को न मिले तो इन्द्रियज्ञान ढीला पड़ जाए। एक दो दिन का उपवास हो जाए तो इन्द्रिय ज्ञान ढीला पड़ जाए। ये होता है कि नहीं होता? इन सब चीजों से पता पड़ता है कि ये जो कमती बढ़ती हो रहा है, होता रहता है, ये सब क्या कहलाता है? क्षयोपशमिक ज्ञान कहलाता है। इसीलिए ये क्षयोपशमिक ज्ञान जब तक रहता है तब तक ही इन्द्रिय ज्ञान काम करता है और इन्द्रिय ज्ञान क्षयोपशमिक ज्ञान के साथ ही होता है। माने कर्मों का क्षयोपशम है तो ये इंद्रियां अपने लिए काम कर रही हैं।

भगवान के क्षयोपशमिक ज्ञान नहीं रहते हैं।

लेकिन भगवान के लिए क्या होता है? ये क्षयोपशमिक ज्ञान नहीं रहते हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान,कुछ नहीं रहता। उनके पास क्या रह जाता है? एक मात्र केवलज्ञान होता है जो सबका बाबा कहलाता है, सबसे बड़ा। जिसके आगे कोई कुछ है ही नहीं। चारों ज्ञान उसके आगे बिल्कुल कुछ नहीं है। सब जीरो बराबर हैं। तो ऐसा जो क्षायिक ज्ञान उत्पन्न हुआ है, वह अधिगतेजो शब्द से यहां कहा गया है। जिस प्रकार से हर चीज प्रकाश में हमें देखने, जानने में आती है।ऐसे ही उन आत्मा के अंदर अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन प्रकट हो जाता है तो फिर उन्हें इंद्रियों से कुछ भी देखने और जानने की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

भगवान के बारे में आजकल के बच्चो की भ्रान्ति

अब आपके बच्चे आपसे पूछे। क्या पूछे? कि भगवान इंद्रियों से नहीं जानते, इंद्रियों से नहीं देखते, अपने कान से नहीं सुनते। इन आंखों से नहीं देखते तो कैसे देखते हैं? कैसे जानते हैं? क्या बताओगे? बता पाओगे कि

नहीं? बेटा ! कान से तो थोड़ा सा सुना जाता है। कभी सुनने में आता है, कभी नहीं आ पाता है। कहीं कोई दूर से कहे तो सुनाई नहीं पड़ता है। कहीं दूर का हो तो दिखाई नहीं पड़ता है। लेकिन भगवान तो बहुत बड़ी शक्ति वाले होते हैं। तो वह छोटे मोटे इन्द्रिय ज्ञान से, आँख से, कान से जान कर के और देख कर वो कुछ नहीं काम करते हैं। वो तो अपनी आत्मा के अनंत ज्ञान और अनंत दर्शन से दुनिया के हर पदार्थ को जानते हैं और हर पदार्थ को देखते हैं। बेटा ! इसलिए भगवान का ज्ञान बहुत बड़ा होता है। समझाया करो अपने बच्चों को थोड़ा बहुत। ताकि उनमें भी कुछ भगवान के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो, कुछ भगवान की धारणा उनके अंदर बचपन से आ जाये।नहीं तो फिर वे बड़े हो कर के, फिर वैसे ही प्रश्न करेंगे और बड़े हो कर के तो कुछ भी समझाना बडा मुश्किल होता है। ये भी बताया जा सकता है कि देखो ! इन्द्रिय ज्ञान तो बहुत छोटा सा ज्ञान है और dependent knowledgeहै वो। किस पर depend है? हमारे कान पर depend है। कभी कान खराब हो गए, आंख खराब हो गई, सुनते सुनते भी मान लो बीच में दीवार आ गई तो उधर की दीवारका इधर न सुनाई पड़े। कांच लगाया तो सुनाई ना पड़े। देखने के लिए भी सामने कोई व्यवधान आ गया तो दिखाई न पड़े। यह तो छोटा मोटा ज्ञान है बेटा। भगवान तो अपने ज्ञान से पूरे जगत को एक साथ जानते हैं, देखते हैं। ऐसी लोरी में उन्हें पढ़ाया करो, सुनाया करो ताकि उनमें भी कुछ भगवान की श्रद्धा पैदा हो जाए। अभी माँ में ही नहीं हुआ है तो बेटे में कहाँ से होगा? ऐसी बातें अगर बचपन से ही की जाए तो कितना अच्छा हो।

ज्ञान केवल दो ही प्रकार का होता है – क्षयोपशमिक और क्षायिक

क्या पूछ रहे हो आप? **औपशमिक ज्ञान कहाँ होता है**? कहाँ सुन लिया आपने? ज्ञान तो केवल दो ही प्रकार का होता है - क्षयोपशमिक और क्षायिक। औपशमिक कोई ज्ञान नहीं होता है। औपशमिक भाव में केवल औपशमिकसम्यग्दर्शन और औपशमिकचारित्र रहता है, ज्ञान नहीं आता है। सम्यग्दर्शनऔपशमिक होता है, चारित्रऔपशमिक होता है, ज्ञान कभी भी औपशमिक नहीं होता है। ज्ञान में केवल दो ही भाव होते हैं - क्षयोपशमिक और क्षायिक।

जब इन्द्रिय ज्ञान छूट जाता है तो वह क्षायिक ज्ञान बन जाता है

जब तक संसार अवस्था रहेगी, इन्द्रिय ज्ञान रहेगा, शरीर से संबंध जुड़ा रहेगा तब तक वह क्षयोपशमिक ज्ञान है और जब इन्द्रिय ज्ञान छूट जाता है तो वह क्षायिक ज्ञान बन जाता है।शरीर में तो रहेगा लेकिन शरीर से काम नहीं लेगा। कोई भी इंद्रियां उसकी काम नहीं करेंगी। आत्मा से direct उनका देखना, जानना होने लग जाता है। इसी को अतीन्द्रियज्ञान कहते हैं। माने इंद्रियों के परे, अतीन्द्रियज्ञान। इसी को क्षायिक ज्ञान कहते हैं और इसी को केवलज्ञान कहते हैं।

अतीन्द्रियज्ञान, क्षायिक ज्ञान, केवलज्ञान, अनंत ज्ञान

अतीन्द्रियज्ञान, क्षायिक ज्ञान, केवलज्ञान, अनंत ज्ञान - ये सब एकार्थवाची हैं। और इन ज्ञान को जो धारण करने वाला है, उसी को हम सर्वज्ञ कहते हैं। उन्हीं को हम अरिहंत या सिद्ध कहते हैं। ये उस ज्ञान को धारण करने वाली आत्मा के नाम हो जाते हैं। उन्हीं को हम भगवान कहते हैं। तो इस तरह से यह अनंत शक्ति, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन,अधिक तेज उनमें उत्पन्न हो गया।**जादो**और वो कैसे हो गए? **अदिंदिओ**वोअतीन्द्रियहो जाते हैं।सो माने, वह स्वयम्भू भगवान कैसे हो गए? अतीन्द्रियहो गए यानी इंद्रियों से परे हो गए, इंद्रियों के पार चले गए। इंद्रियों से उन्हें कोई भी प्रयोजन नहीं रहा। अब तो समझ में आ गया? जब मैं पहले कहता था कि भगवान सुनते नहीं हैं, आपको देखते नहीं हैं तो आपको विश्वास नहीं होता था। अब तो लिखा है न।भगवान कैसे हो गए? अतीन्द्रियहो गये। जब अतीन्द्रियहो गए तो क्या आपकी सुनेंगे? आप प्रश्न पूछो तो वह आपको उत्तर देंगे? फिर भी पूछोगे कि नहीं? पूछते तो रहना ही हैं। चाहें उत्तर दें या न दें, उन की मर्जी। अपना काम क्या है? पूछना।

भक्त का क्या काम हैं?

अपना काम भक्ति करना हैं। चाहे वो सुनें या न सुनें। ऐसे अच्छे भक्त बन जाओ। बिलकुल निरपेक्ष। तो ही आपका कल्याण होगा। और अगर सापेक्ष भक्त बने रहोगे? सापेक्ष माने - अपेक्षा से सहित। सुनो तो भक्ति करें आपकी? नहीं तो क्यों time खराब करें अपना। तो न तुम भक्ति कर रहे हो और ना तुम भक्त बन कर के सही भगवान को समझ रहे हो। समझ में आ रहा है? जब सही भगवान को समझने लगोगे तो भक्त भी सही बन जाएगा अपने आप। देखो इसमें दोनों का फायदा हो रहा है। भगवान को सही ढंग से समझ लेने से भगवान को सही ढंग से समझने का भी फायदा हो गया और हम भी सही भक्त बन गए। उसमें दो फायदे हो गये। और जब तक भगवान को सही नहीं समझा तब तक हम भी सही भक्त नहीं रह पाते हैं। भगवान को सही ढंग से समझ लोगे तो फिर कभी अपेक्षा नहीं रहेगी। मंदिर में ही भगवान की स्तुति करें कि भगवान सामने हो तभी करें। क्या फर्क पड़ रहा है? जहाँ आपका मन आ जाए वहां कर लो। भगवान तो हर जगह से सुन सकते हैं, अगर सुनना हैतो। नहीं सुनना है तो बिलकुल नहीं सुनेंगे। आप का काम आप करो, उनका काम वो कर रहे हैं। यही भगवान ने कहा है। और यही होता रहेगा तो अपने आप आपको भी आनंद आता रहेगा। भगवान हमारी अपेक्षा नहीं रखते कि हम सामने हों, हम भगवान को देखें तभी हम भगवान की भक्ति करने वाले होंगे। ऐसी भगवान अपेक्षा नहीं रखते। यानि कहीं पर भी रह कर के भगवान की भक्ति करोगे, आपके लिए भक्ति फलदायी होगी।

भगवान ज्ञान में और सुख में अतीन्द्रियहोकर के परिणमन कर जाते हैं

णाणंसोक्खं च परिणमदिजैसे ही वोअतीन्द्रियहो गए, उनकी आत्मा कैसी हो गई? ज्ञान में परिणमन कर गई। माने जो हम कहते थे, आत्मा कैसा है? ज्ञान स्वभाव वाला है। वह आत्मा का ज्ञान स्वभाव पूर्णतया प्रकट हो गया, अपनी शक्ति के साथ। अब उस ज्ञान पर कोई भी आवरण नहीं रहा। किसी भी प्रकार का कोई आवरणीय कर्म उस ज्ञान पर नहीं रहा। दुःख देने के लिए कोई भी कर्म, जो मोहनीय आदि कर्म थे, वो भी उनके लिए नहीं बचे। इसलिए वह ज्ञान में और सुख में अतीन्द्रियहोकर के परिणमन कर जाते हैं। यानि इंद्रियों के बिना ज्ञान और सुख में वह लीन रहते हैं। सिद्ध भगवान क्या करते हैं? तो यह उत्तर देने का -**णाणंसोक्खं च परिणमदि**क्या करते हैं भगवान? अपने ज्ञान में और अपने ही सुख में परिणमन करते रहते हैं। कितना ज्ञान है? अनंत ज्ञान है। कितना सुख है? अनंत सुख। बस उसी में लीन रहते हैं। बाहर आने की जरूरत तो तब पड़ती हैं न, जब कोई छोटी चीज हो अपने पास में। capacity कम हो और रुका टिका नहीं जा रहा हो तो उस चीज से फिर बाहर आना पड़ता है। जब अनंत शक्ति प्राप्त हो गई है, अनंत ज्ञान प्राप्त हो गया, अनंत सुख हो गया है तो कहाँ बाहर आना है? भीतर ही रहना है। जो है, उसी का आनंद लेना है।

भगवान में किंचित मात्र भी दुनिया के दुःख से कोई दुःख उत्पन्न नहीं होता है

ऐसे में भगवान हमेशा ज्ञानमय और सुखमय हो कर के, अतीन्द्रियहो कर के, सब पदार्थों को जानते देखते हैं लेकिन किसी से भी अपने कोदुःखी नहीं बनाते हैं। क्या सुन रहे हो? अगर ज्यादा भगवान की, थोड़ी सी disectionकरेंगे तो कहीं आप लोगों के मन की श्रद्धा बढ़ने की बजाय गड़बड़ ना हो जाये? हम तो सोच रहे हैं कि श्रद्धान बढ़ेगा, पक्का होगा। और कई बार थोड़ा सा सत्य ज्यादा जान लेते हैं तो कहीं ऐसा नहीं हो कि लोगों की श्रद्धा और कम हो जाए। क्यों ऐसा तो नहीं हो रहा हैं ना? एक और विशिष्टता बता दें? देखो ! भगवान दुनिया का दुःख देख रहे हैं। क्या देख रहे हैं? दुनिया को दुःखी देख रहे हैं, दुनिया का दुःख देख रहे हैं और भगवान यह भी देख रहे हैं कि दुनिया में कितने जीव, सब दुःखी हैं। क्या सुन रहे हो? आप क्या बोलते है भगवान को? हे दयानिधान दया करो, हे करुणा के सागर थोड़ी करुणा करो। अब reality क्या है? भगवान दुनिया का दुःख देख रहे हैं लेकिन उन के अंदर किंचित मात्र भी दुनिया के दुःख से कोई दुःख उत्पन्न नहीं होता है। सुन लेना। हाँ अपने भगवान तो बिलकुल ऐसे हैं, पसंद आए तो ले लेना, नहीं आये तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा। सुनलो पहले, समझ लो। दुनिया का सारा दुःख देख कर के भी उनके अंदर किंचित मात्र भी किसी भी जीव से दुःख उत्पन्न उनके अंदर नहीं होता। और वह हमेशा अपने ही सुख में लीन रहते हैं। उनके सुख में कोई कमी नहीं आती कभी भी। क्या कहोगे? बहुत स्वार्थी हैं। कुछ तो करुणा करनी चाहिए थी। थोड़ा सा हमारे दुःख में दुःखी होना चाहिए था। अगर वो हमारे दुःख में दुःखी हो जाते हैं तो क्या हो गया? उनके अंदर मोहनीय कर्म का सद्भाव मानना पड़ेगा कि वो अभी भी मोह को अपने पास में रखे हैं। और जो मोह को अपने पास रखे

होगा, उसके पास में केवलज्ञान नहीं होगा। और जिसके पास में केवलज्ञान नहीं होगा, वह कभी भी भगवान के रूप में कहला नहीं सकता है। आ गया समझ में? भगवान किसी के ऊपर मोह के कारण से न कभी करुणा करते हैं और न कभी कोई दया दिखाते हैं। भगवान दया नहीं दिखाते और जो दया दिखाते हैं, वो भगवान नहीं होते। एक बार जो भगवान बन गया फिर उसके अंदर करुणा, दया उत्पन्न होने के लिए, उन्हे मोह करना पड़ेगा और मोह आ गया तो वह भी संसार हो गया। और एक संसारी जीव, दूसरे संसारी जीव का क्या भला करेगा? क्या समझ में आ रहा है? तो फिर वैसा ही हो गया वो। फिर मोही हो गया। उसके अंदर फिर से संसार आ गया। तो क्या आप चाहोगे कि भगवान हम संसारी जीवो पर इतनी करुणा करे कि वो फिर से संसारी बन जाए? न आपके चाहने से बन सकते है और न इस प्रकार का परिणमन उनके अंदर संभव हो सकता है। यह वस्तु स्थिति है।

दुःख भगवान पर श्रद्धा रखने से खुद दूर होते हैं

ये जब हमारे श्रद्धान में बनता चला जाता है तभी हमें समझ में आता है कि भगवान वास्तव में क्या होते हैं? सुन रहे हो? जब से दिल्ली आया हूँ आपकी रोहिणी में, तब से भगवान, भगवान समझा रहा हूँ मैं आपको।भगवान, आत्मा कुछ तो समझ जाओ। शुरू से यही चर्चा चल रही है। न जाने कितने भ्रम पड़े हैं भगवान के नाम पर। एक शक्ति, परम शक्ति, ब्रह्म शक्ति। न जाने, क्या क्या लोग सोचते हैं, क्या क्या बोलते हैं? और वह भगवान जब इस प्रकार का स्वीकार करने में आ जाता है तो आपके अंदर भी सही श्रद्धा उत्पन्न होने से दुःख दूर हो जाते हैं। भगवान को आपके दुःख दूर नहीं करना। आप अपने दुःख भगवान को मान कर के खुद दूर कर लोगे, यह सिद्धांत है। क्या समझ आ रहा है? भगवान को आपके ऊपर करुणा करके आपको सुखी नहीं बनाना है। भगवान सुखी नहीं बनाएंगे आपको। आप स्वयं भगवान को मान कर के,उनके ऊपर यथार्थ श्रद्धा रख कर के अपने आपको सुखी बना लोगे और आप भी भगवान को एक न एक दिन प्राप्त कर लोगे यानी स्वयं भी भगवान बन कर के भगवान को देख सकेंगे।

इन्द्रिय सुख का लोभ छोड़ कर ही अतीन्द्रियसुख की प्राप्ति होती है

जान सकोगे, ऐसा हमने सुना था प्रवचनसार में -**अणंतवरवीरिओअधिगतेजो**। अब वह तेज हमारा प्रकट हुआ है। ऐसा वह अतीन्द्रियमेरा आत्मा ज्ञान और सुख में परिणमन कर रहा है। ऐसा वह आनंद है कि उस आनंद के लिए और किसी भी बाह्य साधन की कोई ज़रूरत नहीं पड़ती है। उन्हें न light की जरूरत है, न हवा की जरूरत है, न गर्मी की जरूरत है, न ठंडी की जरूरत है। क्यों नहीं है? क्योंकि वोअतीन्द्रियहो गए।**जादोअदिंदिओ सो णाणं**कैसे हो गये वो? अतीन्द्रियमाने? इन्द्रिय ज्ञान से रहित हो गये। अब तुम बाहर कुछ भी करते रहो। उन्हें कुछ भी फर्क पड़ने वाला नहीं है। उन्होंने अपनी पूर्ण safety कर ली है। दुनिया से

अपने आपको बचा लिया है। यही ज्ञान स्वभाव और सुख स्वभाव में परिणमन करने का भाव सम्यकदृष्टि जीव में आता है कि मैं भी अपनी आत्मा को ऐसे ज्ञान स्वभाव और सुख स्वभाव से परिणमन कराऊँ।इन्द्रिय सुख में नहीं लुभाऊँ।क्या समझ में आ रहा है? जब तक इन्द्रिय सुख का लोभ नहीं छोड़ोगे तब तक अतीन्द्रियसुख की भी प्राप्ति नहीं हो सकती है। और**उसका श्रद्धान ज्ञान होने के बावजूद भी उस अतीन्द्रियसुख के लिए कोई भी पुरुषार्थ बन नहीं सकता है**।

भगवान महाभोगी हैं ! कैसे?

तो ऐसे ये भगवान क्या कर रहे हैं? अनंत अनंत सिद्ध हो चुके हैं और सभी सिद्ध एक ही काम कर रहे हैं। सभी भगवान एक ही काम में लगे हुए हैं।क्या कर रहे हैं वो? अपनी आत्मा के अनंत ज्ञान, अनंत सुख का निरंतर उपभोग कर रहे हैं। वो भी सुख का उपभोग कर रहे हैं। क्या सुन रहे हो? छोटे मोटे भोगी नहीं रहे वो। बहुत बड़े भोगी हो गए वो। आप लोग तो छोटे मोटे सुख में ही सुखी हो जाते हैं। वो कैसे हो गए? महाभोगी। महाराज ! आप कैसीकैसी बातें कर रहे हो? हमने तो सुना था अभी तक, महायोगी कहा जाता है। आप महाभोगी कह रहे हो। एक शब्द भी मैं अन्यथा नहीं बोलूंगा। सुन रहे हो? हाँ। भगवान का एक नाम महाभोगी भी होता है। सहस्त्रनाम उठा कर के पढ़ लेना।एक हजार आठ नामों में, एक नाम उनका महाभोगी है।**महाज्ञानीमहादानीमहाभोगीमहायमः**।वो क्या भोग रहे है? सुख ही तो भोग रहे हैं। आप तो छोटे मोटे सुखों में ही कह लेते हैं कि भोगी हैं। वह तो महाभोगी हैं। ऐसे भगवान के अंदर जब ऐसा महाभोग हो रहा है, महासुखी हैं तो उन्हें जरूरत क्या है कि वोइन्द्रियों के माध्यम से किसी को देखें, किसी को जाने और किसी के इन्द्रिय ज्ञान के माध्यम से दूसरा ज्ञान या सुख प्राप्त करने की इच्छा करें। अब ये ground बिलकुल पक्का हो गया न। पक्का हो गया कि इन्द्रिय सुख की उन्हें कोई भी अभिलाषा नहीं है। अब देखो एक और इसी का स्पष्टीकरण आगे की गाथा में किया जा रहा है क्योंकि हो सकता है कि अभी भी आपकी धारणा न बन पाई हो। अतीन्द्रियकहने से आपको अभी भी कुछ स्पष्ट न हो पाया हो तो आचार्य महाराज और अच्छे ढंग से समझाते हुए कहते हैं

सोक्खंवापुणदुक्खंकेवलणाणिस्सणत्थिदेहगदं।
जम्हा अदिंदियत्तंजादंतम्हादुतंणेयं ॥ २१ ॥

धारे अनन्त वर केवलज्ञान प्यारे, होते न कायिक उन्हें सुख दुःख खारे!
वे चूंकि शाश्वत अतीन्द्रिय हो चुके हैं, सर्वज्ञ तो सकल इन्द्रिय खो चुके हैं।

अन्वयार्थ- (केवलणाणिस्स)केवलज्ञानी के**(देहगदं)**शरीर सम्बन्धी **(सोक्खं)**सुख**(वापुणदुक्खं)**या दुःख**(णत्थि)**नहीं हैं**(जम्हा)**क्योंकि**(अदिंदियत्तंजादं)**अतीन्द्रियता उत्पन्न हुई है**(तम्हादुतंणेयं)**इसलिए ऐसा जानना चाहिए।

क्या कहा जा रहा है? अब अतीन्द्रियहो गए फिर भी और समझाने की जरूरत रह जाती है।**जम्हा**माने चूकिं, **तम्हा**माने इसलिए।**सोक्खं**माने सुख।**दुक्खं**माने दुःख।**केवलणाणिस्स**मानेकेवलज्ञानी के नहींहैं। क्या नहीं हैं? **देहगदं**मानेदेहगत।देहगत जो सुख और दुःख होता है, वह केवलज्ञानी के नहीं होता है। क्यों नहीं होता? **जम्हा अदिंदियत्तंजादं**। इससे पिछली गाथा में क्या बताया? वह अतीन्द्रियहो गए हैं। चूंकि वह अतीन्द्रियहो गए हैं, इसलिए उनके अंदर देहगत कोई भी सुख या दुःख नहीं होता है।**तंणेयं** - उसको तुम इसी प्रकार से जानो। शरीरगत कोई भी सुख या दुःख उनको नहीं होगा। केवलज्ञान होने के बाद स्वयंभू बन गए। केवलज्ञान हो गया। माने सब प्रकार के घाति कर्मों का नाश हो गया लेकिन अघाति कर्म तो अभी बचे हैं। शरीर भी बचा है और शरीर से वह विहार करते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं, उपदेश देते हैं, समोवशरण में बैठते हैं। उनके दर्शन का सभी भव्य जीव लाभ लेते हैं। लेकिन कुछ भी करते हुए उन्हें कभी भी देहगत सुख या दुःख नहीं होगा। आप कहते हो बाकी सब ठीक है महाराज ! कूलर पंखा नहीं हो तो सब चल जाएगा।

अरिहंत भगवान बनते ही उनको देहगत सब सुख और दुःख छूट जाते हैं

ये बात बताओ, आपका कहना है कि अरिहंत भगवान बनते ही उनको देहगत सब सुख और दुःख छूट जाते हैं तो कोई भी पीड़ा इत्यादि नहीं होती है? और मान लो कोई ऐसे भगवान हैं जो एक पूर्व कोटी की आयु वाले हैं। विदेह क्षेत्र में यह अधिकतम आयु होती है। एक पूर्व तो बहुत बड़ी संख्या है और कोटी माने करोड़ उसमें और जुड़ जाते हैं। ऐसी करोड़ वर्ष की जिनकी आयु है और उनको आठ वर्ष अंतर्मुहर्त में केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। क्या हो गया हो? आठ वर्ष अंतर्मुहूर्त में एक साथ गृह त्याग करके और उन्हें सब कुछ सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान, सम्यक चारित्र हुआ। अंतर्मुहूर्त में चुटकियों में उनको केवलज्ञान हो कर के अरिहंत दशा प्राप्त हो जाती है। क्या समझ में आ रहा है? ऐसे चक्रवर्ती कई हो चुके हैं। एक भरत चक्रवर्ती के पीछे मत पड़े रहो। समझ में आ रहा है? हम ऐसे धर्म चक्रीयकी बात बता रहे हैं जो आठ वर्ष में ही अंतर्मुहूर्त के माध्यम से ही

केवलज्ञान को प्राप्त हो जाते हैं। और ऐसे अनंत हो गए।क्या समझ में आ रहा है? तो ऐसे जीव जिसके लिए इतनी कम उम्र में, अंतर्मुहूर्त में, आठ वर्ष के बाद केवलज्ञान हो गया। अब उम्र कितनी बची? पूरी की पूरी उम्र पड़ी है करोड़ों वर्ष की। और आपने कह दिया देहगत उनको कुछ भी सुख और दुःख नहीं होता। तो क्या उनकी देह पूर्व कोटि वर्ष तक यूं ही बनी रहेगी? सूखेगी नहीं? क्या सुन रहे हो? सूखेगी क्यों? कुछ खाते पीते तो होंगे? ये एक पूर्व कोटि वर्ष तो कुछ भी नहीं खायेंगे, पीयेंगे? और फिर भी वैसे के वैसे ही बने रहेंगे? ये बात तो बिल्कुल समझ में नहीं आती है। समझ लो आप।कितने ही लोग यहां पर भी भटके हुए हैं। आपकी समझ में आ रही है? हमारी समझ में तो नहीं आ रही है।

भ्रान्ति – असातावेदनीय के कारण से भगवान को भूख लगती होगी

एक तरफ ये भी शर्त लगा रखी है, ***क्षुत्पिपासा – जरातङ्क – जन्मान्तक – भयस्मयाः। न रागद्वेषमोहश्च, यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते।।***भगवान में क्षुधा नहीं, पिपासा नहीं। और इधर करोड़ों करोड़ों वर्ष तक बिना खाए पीए रह जाते हैं भगवान? विश्वास बढ़ाना है अब अपने को। क्या करना है? केवलज्ञान हो गया, तो क्या करेंगे? ज्ञान को खाएंगे कि पीएंगे? ज्ञान का क्या किया जाएगा? पेट तो है। शरीर तो है। भूख तो लगेगी कि नहीं लगेगी जब तक शरीर है? ज्ञान ज्ञान से सब काम हो जाएगा क्या? कुछ खाना पीना तो पड़ेगा कि नहीं पड़ेगा? बड़ा मुश्किल है। सुन रहे हो? इसी एक समझ और ना समझ में अंतर होने के कारण से बहुत बड़े बड़े जैन धर्म के अंदर difference पैदा हो चुके हैं। समझ में आ रहा है? हाँ बहुत बड़े बड़ेsect जो बन चुके हैं, वो इसी कारण से बन गए। जैसे हम कह रहे न, हमको समझ नहीं आ रहा है। ऐसे ही कइयों को समझ नहीं आता। जब भगवान का शरीर है और सबसे बड़ी बात क्या है? अभी तो अघातिय कर्मों में वेदनीय कर्म का उदय भी है। मोहिनीय कर्म का नाश हुआ है, वेदनीय कर्म का नाश नहीं हुआ है। अगर सिद्धांत नहीं जानते हो तो हम बता रहे हैं आपको। ऐसे भी पढ़ाने वाले लोग हैं, आपको पढ़ा देंगे। क्या सुन रहे हो? वेदनीय कर्म के कारण से ही तो दुःख होता है न। असातावेदनीय का उदय चल सकता है, चल रहा है और असातावेदनीय के कारण से ही भूख लगती है तो भगवान को भूख लगेगी? उन्हें खिलाओगे कि नहीं खिलाओगे? खायेंगे कि नहीं खायेंगे? देखो साता का भी उदय हो सकता है, असाता का भी उदय हो सकता है। उदय में कोई बाधा नहीं है। क्योंकि असाता का उदय चौदहवें गुणस्थान के अंत तक रहता है। क्योंकि वेदनीय कर्म में से कोई भी साता या असाता, किसी का भी उदय चल सकता है। इसमें कोई बाधा नहीं है। और असाता का उदय उनके लिए रहता है। क्षुधा वेदनीयअसाता के कारण से ही होती है। और जब क्षुधा वेदनीय है तो उस वेदना को दूर करने के लिए भगवान को भोजन करना पड़ेगा? क्या सुन रहे हो? जिन्होंने भगवान को भोजन करा दिया है वो एक तरह से अलग कट गए।

भ्रान्ति का निवारण – क्योंकि भगवान का शरीर परम औदारिक हो जाता हैं

और जिन्होंने भगवान को भोजन नहीं करा कर के भी जिंदा रखा। किस कारण से? कि भगवान को भोजन करने की कोई जरूरत पड़ती है नहीं। क्यों नहीं पड़ती? क्योंकि जैसे ही केवलज्ञान हो जाता है, हम और आप की तरह वह सामान्य देह नहीं रह जाती है। औदारिक होते हुए भी परम औदारिक शरीर कहलाने लगता है। औदारिक शरीर में जो भी खाया पिया जाएगा, उससे शरीर में वृद्धि होगी, हड्डी, मांस, खून सब बढ़ेगा। लेकिन जब परम औदारिक शरीर बन जाता है तो उसमें धातुओं का परिणमन नहीं होता हो। वह धातु से रहित हो जाता है। जो हड्डी, मांस, रक्त आदि सात धातु होती है, उनसे वह शरीर बिल्कुल अलग हो जाता है। उनका उसमें परिणमन होता ही नहीं है। कौन सा शरीर? परम औदारिक।

और जो रही बात असातावेदनीय कर्म की, वह कर्म तो छोटा सा रह जाता है।

अकेला वेदनीय कर्म पीड़ा नहीं दे सकता

असाता की वेदना तभी तक होती है जब तक मोहनीय कर्म उस वेदनीय कर्म का साथ देता है। क्या कहा? अकेला वेदनीय कर्म कभी आपको पीड़ा नहीं दे सकता और कभी आपका शरीर से मोह उत्पन्न नहीं कर सकता।वेदनीय कर्म जब तक मोहनीय के साथ रहता है तभी तक दुःख देता है और जितनी मोहनीयकर्म का शक्ति होगी, अनुभाग होगा, वेदनीय कर्म उतना ही आपको दुःख देगा। समझ में आ रहा है? उनका मोहिनीय कर्म नष्ट हो चुका हैं। वेदनीय में भी अगर असातावेदनीय का उदय है तो वह उदय भी इतना मंद है कि उनके अंदर जो निरंतर ईर्यापथआस्रव से जो सातावेदनीय कर्म का आस्रव होता है, वह तो इतना अधिक होता है कि उसके आगे ये जो असाता का उदय भीतर से चल रहा है, वो उसके आगे कोई भी काम नहीं कर पाता है।

भगवान के लिए असाता का उदय कोई काम नहीं करता है

एक तो भीतर से कर्म का उदय होना, वोअसाता का उदय हो सकता है। लेकिन जो वर्तमान में वह ग्रहण कर रहे हैं, साता का ग्रहण कर रहे हैंऔर वह साता का उदय इतना अधिक होता है कि असातावेदनीय कर्म उनके सामने अपना कुछ भी काम नहीं कर पाता है। किसके सामने? जो सातावेदनीय कर्म का निरंतर ईर्यापथआस्रव होता है। ईर्यापथआस्रव क्या होता है? हर समय उनके अंदर सातावेदनीय कर्म का आना और जाना, इसको बोलते हैं - ईर्यापथआस्रव।हर समय वह आस्रव हो रहा है और साता का ही हो रहा है। लेकिन असाता का उदय यदि रहता है तो वह साता का उससे कई गुना सुख भोगते हैं। असाता का उदय उसमें बिल्कुल मंद पड़ जाता है, कोई काम नहीं करता है।इसलिए भगवान को कभी भी क्षुधा की वेदना नहीं होती।

असाताअतीन्द्रियज्ञान में कोई बाधा नहीं डालती

अनंत सुख मिलने के बाद में, अनंत सुख की अनुभूति होने के बाद में, देहगत सुख या दुःख, कुछ भी उनके लिए नहीं होते। क्या समझ में आ रहा है? जब लिख दिया न, देहगत दुःख नहीं है।क्षुधा का दुःख देहगत है कि आत्मा का है? आत्मा में तो पीड़ा होने का सवाल ही नहीं क्योंकि अनंत सुख से भरा हुआ है।मोहनीय कर्म का अभाव हो गया तो देह से कोई मोह नहीं। अब दुःख किस बात का? देह में अगर कहीं असातावेदनीय कर्म का उदय भी हो जाएगा और देह में अगर कहीं कुछ थोड़ी सी असाता की लहर आ भी जाएगी तो वह उनके अतीन्द्रियज्ञान में कोई बाधा डालने वाली नहीं है।और इधर उनकी आत्मा में सातावेदनीय कर्म का आस्रव इतना भर भर के होता है कि वह असाता का उदय उसी में दब जाता है। कोई फायदा उसका नहीं होता है। जैसे बहुत शक्कर का बोरा और उसमें एक छोटी सी नीम की बून्द डाल दो।कुछ फर्कपड़ेगा उसमें? उसकी मधुरता का इतना प्रभाव है कि उसमें कटुता का कोई भी असर नहीं आएगा।इसी तरह से भगवान के अंदर केवलज्ञान, अतीन्द्रियज्ञान, अनंत सुख आ जाने के बाद में उन्हें देहगत सुख की कोई भी अभिलाषा नहीं रहती।क्योंकि वह अभिलाषा तो मोह के कारण से होती है।अगर तुमने भगवान को भोजन करने वाला मान लिया तो तुम्हारा भगवान भी मोह से सहित हो गया।केवलज्ञानी नहीं रहा। सुन रहे हो?

परम औदारिक शरीर में कभी कोई रोग नहीं होते

ये उनके अंदर का जो सातावेदनी का सुख है और उनका जो अनंत आत्मिक सुख है ये बहुत सशक्त होता है। इसलिए भगवान को कभी क्षुधा नहीं, पिपासा नहीं। अगर कोई कहे, भगवान को रोग हो जाते हैं तो**परम औदारिक शरीर में कभी कोई रोग नहीं होते**। जब उनका शरीर सात धातुओं में परिणमन करता ही नहीं हैं तो उनके लिए कभी भी, किसी भी प्रकार का कोई रोग होने की कोई संभावना नहीं होती है।रोग का कारण, जो असातावेदनीय है, वो तो बहुत मंदसा रह गया।वो उनके लिए कोई भी वेदना उत्पन्न नहीं कर सकता।इसलिए भगवान को कभी भी खाने पीने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।क्या सुन रहे हो?

भगवान के अंदर कोई भी ऐसा कारण नहीं बचता है, जिसके लिए वह भोजन करें

फिर भी आपका मन नहीं माने।फिर कहीं आप कह बैठो महाराज ! शरीर है तो खाना पीना तो पड़ता ही होगा। खाने पीने का भी कुछ प्रयोजन तो होता है। बिना वजह तो कोई भी नहीं खाता है। आप भी कुछ वजह से खाते हो, हम भी कुछ वजह से खाते हैं।और आप बिना वजह तो भलेही खा लो लेकिन हम तो कभी बिना वजह नहीं खाएंगे। अगर सामान्य से मुनि महाराज भी होते हैं तो वह भी छह कारणों से भोजन करते हैं। अपनी क्षुधा का

शमन करने के लिए तो एक सामान्य बात हो गई, लेकिन उसके साथ साथ ज्ञान ध्यान की सिद्धि के लिए, वैयावृत्ति करने के लिए और धर्म की चिंता से उनका भोजन होता है।लेकिन भगवान के अंदर कोई भी ऐसा कारण नहीं बचता है, जिसके लिए वह भोजन करें।और अगर एक सामान्य मुनि महाराज भोजन करते हैं तो वह भी अंतराय का पालन करते हैं। केवलज्ञानी कैसे कर लेंगे भोजन, जब सामने सब कुछ दिख रहा होगा केवलज्ञान में? क्या समझ रहे हो आप केवलज्ञान के बारे में? जितनी भी दुनिया में गंदगी है, वो भी उनको ज्ञान में दिखाई दे रही है कि नहीं दे रही है? जब हर चीज दिखाई दे रही है तो सब दिखाई दे रहा है कि नहीं दिखाई दे रहा है? सब उनके ज्ञान में दिखाई दे रहा है,पुदगल,जीव, गंदा, अच्छा, जो कुछ भी आप समझते हो।लेकिन उनके ज्ञान में कोई भी चीज आ रही है, दिखाई दे रही है तो किसी भी चीज से उनके अंदर, न घृणा उत्पन्न हो रही है, न राग उत्पन्न हो रहा है।लेकिन अगर भोजन करने की बात सामने आएगी तब तो फिर ये भी कहना पड़ेगा कि वो बिना अंतराय के इतनी गंदगी देखते हुए भी भोजन कर रहे हैं।समझ आ रहा है न? भगवान की हालत बहुत खराब हो जाएगी। भगवान के अंदर बहुत आसक्ति माननी पड़ेगी। एक सामान्य व्यक्ति भी थोड़ी गंदगी देख ले तो भोजन नहीं करता है और वह अनंत गंदगी देख के भी भोजन कर लेंगे?

केवलज्ञानी को कवला अहार करने की कोई जरूरत नहीं होती

इन सब बातों से समझ में आता है कि**केवलज्ञानी को कवला अहार करने की कोई जरूरत नहीं होती**।उनके लिए हमेशा लाभ अंतराय कर्म का क्षय हो जाने से, अनन्त जो कर्म परमाणु अच्छे अच्छे वाले होते हैं, वो सब उनके शरीर में प्रति समय आते हैं और प्रति समय उनसे निकलते रहते हैं।इस कारण से भी अगर पूर्व कोटी वर्ष तक भी अपना जीवन निकालें तो बिना कवला आहार के, बिना ग्रास के, बिना आहार के उनका पूरा का पूरा जीवन निकल जाता है।समझ में आ रहा है? यह भी अपनी धारणा में रख लेना।काम की चीज है।ताकि कोई भी आपके भगवान को कुछ और भी न बना पाए और आपकी श्रद्धा कहीं की कहीं न बह पाए।

धारे अनन्त वर केवलज्ञान प्यारे, होते न कायिक उन्हें सुख दु:ख खारे!
वे चूंकि शाश्वत अतीन्द्रिय हो चुके हैं, सर्वज्ञ तो सकल इन्द्रिय खो चुके हैं।

प्रवचन १२ - केवलज्ञानकास्वरुप (गाथा ०२२-०२३)

परिणमदोखलुणाणंपच्चक्खासव्वदव्वपज्जाया।
सो णेवतेविजाणदिओग्गहपुव्वाहिकिरियाहिं ॥ २२ ॥

प्रत्यक्ष-ज्ञान धरते जिन भव्य होते, प्रत्यक्ष पर्यय उन्हें सब द्रव्य होते।
ईहादि पूर्वक क्रिया कर ना कदापि, वे जानते गत विकल्प सदा अपापी।

अन्वयार्थ-(**खलु**)वास्तव में (**णाणंपरिणमदो**) ज्ञान रूप से (केवलज्ञान रूप से) परिणमित होते हुए केवलीभगवान् के (**सव्वदव्वपज्जाया**) सर्व द्रव्य-पर्यायें (**पच्चक्खा**) प्रत्यक्ष है, (**सो**) वे (**ते**) उन्हें (**ओग्गहपुव्वाहिंकिरियाहिं**) अवग्रहादि क्रियाओं से (**णेवविजाणदि**) नहीं जानते।

संसारी का ज्ञान इन्द्रियों पर निर्भर

अगर कान काम करना बंद कर दें और भीतर से सुनने की इच्छा भी करें तो सुन नहीं सकते। यह सब इंद्रियों पर depend ज्ञान है। कभी अगर हमारी इन्द्रियां गड़बड़ हो जाए तो हम चाहते हुए भी नहीं देख सकते हैं, न सुन सकते हैं। और मान लो, आपकी इन्द्रियां सही काम कर रहीं हैं तो भी कितने तरह की dependancyहोती है। अभी देखो थोड़े से बादल होने वाले हैं। और थोड़ा सा गहरे हो जाए। जबबिलकुल ही काला सा हो जाता है फिर देखो। आपको फिर इधर उधर की light खोलनी पड़ेगी। देखना तो हमें चाहिए था, हमारी आँखें खुली हैं। लेकिन हमारी आँखें खुली होते हुए भी जब तक प्रकाश नहीं होगा तब तक हम देख नहीं सकते। तो हम कितनी चीजों पर depend हो गए? light पर depend हैं। अपने senses पर depend हैं। जो सामने हमारे object है, वह भी अपने सामने होना चाहिए। अगर मान लो, हम आपको पढ़ा रहे हैं गाथा नंबर बाईस। आप किताब तो खोले हो लेकिन दूसरा पन्ना खोल लिया। क्या समझ आया? किताब तो खुली लेकिन जो देखना चाहिए था, वो आपको नहीं दिखाई दे रहा है और आप किताब पूरी ढूँढ रहे हो। लेकिन आपको पता नहीं है कि जो पढ़ाया जा रहा है वो गाथा कहाँ है। तो आपको सब कुछ दिखता नहीं है, इसका मतलब यह हो गया। और जो भी दिखता है, वह कैसा दिखता है? बहुत सारी चीजों पर depend हो कर के दिखता है। ऐसे ही सुनने में आता है। ऐसे ही हर एक इन्द्रिय के ज्ञान में आता है। तो हमारे लिए कुछ भी जो प्रत्यक्ष है, वो इस तरह से है ही नहीं, जैसेहम समझ रहे हैं।

सिद्धांत में प्रत्यक्ष ज्ञान का अर्थ

जो सिद्धांत में कहा जा रहा है, वो प्रत्यक्ष तो कुछ अलग बात है। अगर हम आपके ज्ञान को या अपने ज्ञान को प्रत्यक्ष कहने लग जाए तो फिर ये भगवान के ज्ञान में और अपने ज्ञान में क्या अंतर रह जाएगा? यहाँ कह रहे हैं कि जब भगवान ज्ञान स्वरूप परिणमन कर गए, उनका ज्ञान पूरा का पूरा ज्ञान के रूप में ही परिणमन हो गया। माने जो ज्ञान था, वो पूरा का पूरा प्रकट हो गया। बहुत अच्छा शब्द है**परिणमदोखलुणाणं**। ज्ञान परिणामित हुआ है जिनका, उनके लिए कहा जा रहा है। क्या परिणामित हुआ? परिणामित होने का मतलब? वो पहले कुछ और रूप में था, अब कुछ और रूप में हो गया। पहले ज्ञान इन्द्रिय ज्ञान था, अब ज्ञान अतीन्द्रिय ज्ञान हो गया। इन्द्रिय ज्ञान अतीन्द्रिय ज्ञान के रूप में परिणमन कर गया। माने बिलकुल divert हो गया। changes उस में आ गए। और वह इन्द्रिय ज्ञान जब इस तरीके से अतीन्द्रिय ज्ञान के रूप में परिणमनकर गया तभी उन्हें सभी द्रव्य और सभी पर्याय प्रत्यक्ष हो गई। प्रत्यक्ष होने का मतलब क्या हो गया? उन्हें इंद्रियों के बिना, मन के बिना, अपनी ही आत्मा में सब कुछ, अपनी ही आत्मा के ज्ञान से जानना और देखना होने लगा। क्या समझ में आया?

इंद्रियों के बिना भी कुछ जाना जा सकता है, देखा जा सकता है। आत्मा का श्रद्धान भी अगर नहीं होता है तो भी इतना श्रद्धान हो सकता है कि इन्द्रियों के बिना भी कुछ जाना जा सकता है, देखा जा सकता है। और जब ये होने लगेगा, तो अपने आप समझ में आने लगेगा कि फिर वो जानने वाला और देखने वाला कौन होगा, जो इंद्रियों के बिना जानेगा और देखेगा। तो आपके अंदर अपने आप उस अदृश्य शक्ति पर श्रद्धान हो जायेगा। उसी को चेतना, आत्मा कहा जाता है। उस आत्मा का इस तरीके से प्रत्यक्ष हो जाना। माने वो आत्मा किसी के लिए प्रत्यक्ष नहीं हुई लेकिन आत्मा में सब प्रत्यक्ष हो रहा है। देखो बड़ी रहस्य की बातें हैं। बातें बढ़ती चली जा रही है, भगवान तक पहुँचती चली जा रही हैं, लेकिन आप कहोगे महाराज दिख तो कुछ नहीं रहा है। सब कुछ दिख नहीं सकता है।लेकिन इतना जरूर है कि अगर आपके पास में अच्छी बुद्धि होगी तो आप अपने अनुभव से, अपने अनुमान से, तर्क के माध्यम से भी इस चीज को समझ सकते हैं कि- नहीं, इसमें कोई बाधा नहीं है। क्योंकि जब हमारी इंद्रियां काम नहीं करती है तब भी हम भीतर सोचते तो हैं। हमारी इंद्रियां काम नहीं कर रही हैं लेकिन हमारे पास ज्ञान तो होता है। लेकिन वह ज्ञान बाहरी साधन में कमी आने के कारण से कुछ काम नहीं कर पाता है। तब पता पड़ता है कि यहाँ भीतर भी कुछ ज्ञान है। और वो ज्ञान कहाँ है?

ज्यादातर लोग क्या समझते हैं? जानते हो? दुनिया के अधिकतर लोग जो आत्मा को नहीं मानते है, नहीं जानते, वो समझते हैं, यह सिर्फ mind का function है। उसी mind के अलग अलग तरीके के division करते रहते हैं। conscious mind, the unconscious mind, subconscious mind। समझ आ रहा है? उनकी गति mind के अलावा कहीं और जाती नहीं है। mind के अलावा चीजें स्वीकार

कर ही नहीं पाते हैं। उनके अंदर आत्मा की जैसी कोई श्रद्धा वाली बात होती ही नहीं है। क्योंकि उन्हें दिमाग के अलावा और कुछ समझ में नहीं आता है। हमें अगर नहीं दिख रहा है, कोई बात नहीं। क्योंकि हमारा mind तो भीतर काम कर रहा है, वो कहेंगे। तो mind अलग चीज है और जो आत्मा है, वो अलग चीज है। ज्ञान mind में नहीं रहता है। ज्ञान आत्मा में रहता है। आत्मा का खजाना, आत्मा का भंडार जो है, वो ज्ञान है। और उस ज्ञान में, जब इन्द्रिय ज्ञान से अतीन्द्रिय ज्ञान रूप परिणमन हो जाता है, तब उसके अंदर सब कुछ प्रत्यक्ष हो जाता है। लेकिन वह किसी को भी प्रत्यक्ष नहीं होगा। क्या सुन रहे हो? अब क्या सोचोगे? जब हमें अभी ना कुछ दिख रहा है और ना आगे कुछ दिखेगा, तो हम कैसे विश्वास कर ले कुछ भी? आपको तो अभी नहीं दिख रहा है, कोई बात नहीं। लेकिन आपको आगे सब कुछ दिखने लगेगा, अगर विश्वास करके चलोगे। लेकिन आपको कोई नहीं देख पाएगा। समझ आया? कोई भी संसारी जीव आपको देख नहीं सकता। आपकी आत्मा में प्रत्यक्ष हो रहा है, इस बात का अंदाजा तो लगा सकते हैं। लेकिन आत्मा को प्रत्यक्ष रूप से देख नहीं सकते। अगर केवलज्ञानी ही हमारे समक्ष प्रत्यक्ष बैठे हों, तो भी हम उनके उस प्रत्यक्ष ज्ञान को किसी भी दृष्टि से नहीं देख सकते। लेकिन वोसबको देख सकते हैं। तो आखिर अपने को क्या चाहिए? यही तो चाहिए।कोई हमें देखे या न देखे, कोई बात नहीं। हम अंधेरों में उजालों के साथ बैठे हैं। उजाला कहां है? उजाला तो अपने अंदर हैं। बाहर अंधेरा पड़ा है, तो कोई बात नहीं। बाहर अंधेरा पड़ा रहे, कोई बात नहीं। अंधेरे में भी मान लो, आपको बिलकुल सही दिख रहा हो तो आपको अंधेरे से क्या दिक्कत होगी? कुछ नहीं। इसी तरीके से केवलज्ञानी को सब कुछ प्रत्यक्ष हो जाता है। लेकिन संसारी जीव उन्हें नहीं देख सकता है। दूसरा केवलज्ञानी तो उन्हें देखेंगे, लेकिन संसारी प्राणी उन्हें नहीं देख सकता। ऐसा आत्मा का जो प्रत्यक्ष ज्ञान रूप परिणमन होता है, अतीन्द्रिय ज्ञान रूप परिणमन होता है, तो उसमें सभी द्रव्य और सभी पर्याय दिखाई देते हैं प्रत्यक्ष। कोई उसमें किसी भी तरीके की बाधा नहीं आएगी। हमेशा जैसा देख रहे हैं, वैसा ही देखेंगे। कोई dependence ही नहीं है। ऐसा भगवान का वह ज्ञान, जब प्रत्यक्ष प्रकट होता है तो सभी द्रव्य और उनकी सब पर्याय दिख जाती हैं। **"सर्व – द्रव्य – पर्यायेषुकेवलस्य"** तत्वार्थ सूत्र प्रथम अध्याय।

केवलज्ञानी का ज्ञान प्रत्यक्ष होता हैं

केवलज्ञानी किसको जानते हैं? उनका विषय क्या है? सभी द्रव्यों में और उन द्रव्यों की सभी पर्याय, माने जितनी भी परिणतियां हैं उस द्रव्य की, वो सारी की सारी उनके ज्ञान में प्रत्यक्ष होती हैं। जो अनन्तकाल में पहले हो चुका है, वह भी उनके लिए प्रत्यक्ष है और आगे जो भी होगा, वह भी उनके लिए प्रत्यक्ष है। क्योंकि द्रव्य की कोई भी पर्याय उनसे छूटने वाली नहीं है। और वे हर एक पदार्थ की, हर एक द्रव्य की सभी पर्यायों को एक साथ जान रहे हैं। इसलिए आगे कहा जा रहा है**सो णेवतेविजाणदिओग्गहपुव्वाहिकिरियाहिं**माने वह केवली भगवान। णेव माने नहीं। उन पदार्थों को भी जानते हैं। वे उन पदार्थों को ऐसे नहीं जानते हैं। किसके द्वारा? **ओग्गहपुव्वाहिकिरियाहिं**। अवग्रह पूर्वक जो क्रिया होती है, उसके माध्यम से नहीं जानते हैं। ये अवग्रह

क्या हो गया? जैसे आप लोग मतिज्ञान में कोई भी चीज को जानने देखने के लिए तैयार होते हैं तो मतिज्ञान के ये सब अवयव है। तत्वार्थ सूत्र के प्रथम अध्याय में यह भी एक सूत्र मिलेगा**अवग्रहेहावाय –धारणा!**क्या हुआ? हम जब किसी चीज को जानते हैं तो क्रम क्रम से ही जानते हैं। एक साथ नहीं जान पाते हैं। संसार का हर प्राणी इन्द्रिय ज्ञान से किसी भी चीज को जानेगा तो वह एक क्रम क्रम से ही उसको आगे बढ़ाबढ़ा करके जान पाएगा। एक साथ पूरा नहीं जान पाएगा। और वह क्रम किस तरीके से है? तो उसी क्रम के नाम हैं जो आचार्यों ने बताए हैं।

<u>अवग्रह</u>

पहला अवग्रह कहलाता है। किसी भी वस्तु का दर्शन होने के बाद में, दिखने के बाद में, सबसे पहला जो ज्ञान होता है। मति ज्ञान की सबसे पहली faculty है, उसका नाम अवग्रह है। सबसे पहले क्या होगा? अवग्रह। और उस अवग्रह में क्या होता है? बस यह एक आभास होता है। यह ज्ञान हो जाता है कि हाँ यह है। यह मनुष्य है या यह कोई पक्षी है या यह कुछ वस्तु है। जो है रूप में, एक पहले ज्ञान हो जाता है कि यह कुछ है। यह कुछ भी है। वह कुछ है, तो यह सारा का सारा क्या है? ये सब अवग्रह है। ये शुरुआतहै। सबसे पहले कहाँ से शुरू होगा? यह कोई है। यह कुछ है।

<u>इहा</u>

फिर उसके आगे अगला ज्ञान जो आता है, वो क्या होता है? उसको बोलते हैं, इहा। इहा माने? अब उसको जानने की इच्छा। पहले तो क्या था? बस यह है। अब इहा में क्या होगा? ये क्या है? भीतर से ज्ञान उत्पन्न होता है, अवग्रह के बाद में। ये क्या है या यह कौन है या यह कैसे है। ये सारे के सारे प्रश्न इहा से शुरू होंगे।

<u>अवाय</u>

फिर एक ज्ञान आएगा आगे।**अवाय**। वो उसको decide करेगा कि ये क्या है?

<u>धारणा</u>

और वह decide होने के बाद में फिर एक ज्ञान आता है आगे। धारणा। जिसे हम कहते हैं कि वह चीज हमारे बिलकुल concept में आ गई।उस धारणा में, जिसको उसने अपने अंदर निश्चित कर लिया है कि यह यह है। उसको जितने समय तक नहीं भूलेगा, वह उसका धारणा ज्ञान होगा।

क्रम क्रम से होने वाले ज्ञान का उदाहरण

ये सब ज्ञान क्रम क्रम से होते हैं। कोई एक नया व्यक्ति आया। सभा में आते ही आपके दिमाग में सबसे पहले आएगा कि यह व्यक्ति। फिर एकदम से आएगा, दिल्ली का तो नहीं लग रहा है, रोहिणी का तो लगता ही नहीं। कहाँ का है? मान लो, उसने कुछ उसका रूप देखा तो कुछ ऐसा लगा कि भाई दक्षिण भारत का है। या उसने कुछ बोला, तो अपने आप समझ में आया कि ये महाराष्ट्रियन बोल रहा है कि तमिल बोल रहा है। तो फिर आपने सोचा कि दक्षिण भारत का लग रहा है, अपने इधर का नहीं है। तो ये क्या हो गया? यह हो गई है, **अवाय।** अब आपने उस व्यक्ति को देख लिया और decide कर लिया कि दक्षिण भारत का है। अब अगली बार वो जब कभी महीने, दो महीने में या दो चार दिन में कभी आपको मिलता है तो आपके लिए सब याद आ जाता है। इसको बोलते हैं, **धारणा**। वो आपकी धारणा में बैठ गया कि यह वही व्यक्ति है जो चार दिन पहले या एक महीने पहले मिला था। ये क्या हो गया? धारणा। और ये सब एक एक कर के होते हैं। एक साथ नहीं होते हैं। मतलब अवग्रह, इहा, अवाय, धारणा सब हो जाते हैं लेकिन हमको पता नहीं पड़ते हैं। हमें ऐसा लगता है कि हमने तो बस तुरंत ही सब कुछ कर लिया। लेकिन सब में एक एक अंतर मुहूर्त का काल निकल गया।

केवली भगवान का अक्रम ज्ञान

तो यहां ये बताया जा रहा है कि भगवान जो जानते हैं, वो ऐसा मत समझना कि हम लोगों की तरह ही जानते हैं। क्योंकि ज्यादातर लोग यही समझते हैं कि जैसा हम देख रहे हैं वैसे ही भगवान देखेंगे। जैसे हम जान रहे हैं, वैसा भगवान जानेंगे। स्वयंभू होने के बाद, केवली होने के बाद, अवग्रह, इहा,अवाय और धारणा, इन क्रियाओं के बिना, यह क्रम क्रम से होने वाले ज्ञान के बिना, अक्रम से, युगपत (simultaneously) एक साथ जानते हैं। उनको ज्ञान का प्रयोजन यह है कि उनका ज्ञान पूर्ण हो गया और जब ज्ञान पूर्ण हो गया तो उन्हें उस ज्ञान के साथ में पूर्ण सुख की प्राप्ति हो गई। अब उनका प्रयोजन तो पूर्ण हो गया। हमारा प्रयोजन उनसे जुड़ा हुआ है। हम भी तो समझें कि वह भगवान को क्या जानने में आ रहा है? भगवान को क्या देखने में आ रहा है? उनका कोई प्रयोजन नहीं है। उन के प्रयोजन तो सब पूर्ण हो गए। आप कह रहे हो कि भगवान को क्या प्रयोजन है या भगवान का क्या प्रयोजन है? भगवान के प्रयोजन तो सब पूर्ण हो गए। वो तो बिलकुल संपूर्णता में ढल गए। ज्ञान पूर्ण हो गया, ज्ञान के साथ सुख पूर्ण हो गया। इच्छा का वहाँ पर अभाव हो गया। उनके लिए कोई प्रयोजन अब बचा ही नहीं है। लेकिन वस्तुस्थिति तो जाननी पड़ेगी कि आखिर ज्ञान का परिणमनइन्द्रिय से अतीन्द्रिय रूप में हो गया, तो क्या different हो गया? वो हमें तो जानना है न।अब आप कहोगे कि इससे क्या प्रयोजन होगा? इसका प्रयोजन क्या होगा? कि हमें केवलज्ञान होता है और केवलज्ञान का nature यह होता है। इस बात का हमारे अंदर जो दृढश्रद्धान बैठेगा तो हम समझेंगे कि ज्ञान ऐसा भी

होता है। ये हमारा प्रयोजन है। केवलज्ञान को यथार्थ रूप से समझना, केवलज्ञानी हुए बिना नहीं समझा जा सकता है। लेकिन फिर भी हम अपने मतिज्ञान से, श्रुतज्ञान से जितना समझ सकते हैं, उतना हम केवलज्ञान के बारे में जानें तो कि क्या difference है? जो हम जान रहे हैं, उसमें और जो भगवान जान रहे हैं, उसमें।

<u>हमारे जानने और केवली भगवान के जानने में अंतर</u>

संसार सार और असार से रहित है; संसार तो संसार है। संसार को देखने का उनके अंदर भाव नहीं हैं लेकिन वो उस ज्ञान की शक्ति है, उस ज्ञान का वह कमाल है कि वह सब कुछ उनके ज्ञान में देखने में आ जाता है। सूर्य है, बादल उसके प्रकाश को ढ़क रहे हैं और जब सब कुछ उसके सामने से हट जाए, जब वो अपने पूर्ण प्रताप और प्रकाश के साथ होता है। तो उसका प्रयोजन क्या होता है? उसे अपने स्वभाव में आना ही उसका प्रयोजन है। हम हैं, तो हमारे सामने कोई भी आवरण नहीं होना चाहिए। हमारे पास ज्ञान है, ज्ञान हमारी निधि है, ज्ञान हमारा स्वभाव है तो उसके ऊपर यह आवरण क्यों? तो हम जो प्रयास करेंगे, वो अपने ज्ञान निधि को प्रकट करने के लिए, अपने ज्ञान स्वभाव को अपनी यथार्थ स्थिति में लाने के लिए। इसलिए नहीं कि भाई मुझे दुनिया जानने में आएगी, बड़ा आनंद आएगा। ऐसा नहीं। क्योंकि जो चीज हमारी है, वो साफ सुथरी तो होनी चाहिए। तो वही ज्ञान को शुद्ध बनाने के लिए हर व्यक्ति के अंदर भावना कब आएगी? जब वह देखता है कि ऐसा ज्ञान होता है और वास्तव में अभी ऐसा है। कितना बड़ा difference है? तो उसकी समझ में आता है कि वास्तव में ये जो ज्ञान है, यह कुछ भी नहीं है। यह सब केवल इन्द्रिय ज्ञान मोह उत्पन्न करने वाला है। और जब यह मोह से रहित होकर के अतीन्द्रिय ज्ञान की ओर ढ़लता है तो उसके केवलज्ञान में सब कुछ अपने आप दिखता है। माने यथार्थ जगत उसके सामने आ जाता है। जो पदार्थ जैसा है, वह वैसा उनके ज्ञान में दिखेगा।

ये अपने अंदर समझ में आना कि हमारा भी ज्ञान का स्वभाव इतना विराट रूप लिए हुए है। लेकिन ज्ञानावरणी कर्मों ने उसज्ञान की विराटता को ढ़क रखा है, दबा रखा है। समझ में आ रहा है? तो वही आचार्य समझाने की कोशिश कर रहे हैं कि अपने ज्ञान की विराटता को इस रूप में समझो। और ये मत समझो कि हम जितना जान रहे हैं, बस दुनिया में सब इतना ही जानते हैं। क्योंकि ऐसा मान लोगे तब तो आपका अरिहंत भगवान के स्वरूप के प्रति कोई ज्ञान ही नहीं है, ऐसा समझा जाएगा। तो अरिहंत भगवान का स्वरूप, सिद्ध भगवान का स्वरूप, उनकी आत्मा का स्वरूप कैसे समझ में आएगा? तो शब्दों के माध्यम से ऐसे ही समझाया जाएगा। हम जैसे अवग्रह आदि ज्ञान करते हैं, ऐसे वो नहीं करते। हम जैसे पराधीन होकर के पदार्थ को जानते हैं, वैसे वो नहीं जानते। और इस तरह से वो अक्रम से, युगपत एक साथ बिना किसी की सहायता के अपनी आत्मा से, हर समय पदार्थों को जानते हैं। यही कहलाती है प्रत्यक्ष ज्ञान की विशेषता। ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान, जो उन्हें प्रकट हुआ है, वह हमारे श्रद्धा का विषय बनना चाहिए। ये यहाँ पर मुख्य प्रयोजन है। हमारी श्रद्धा का विषय तो बने। उनके लिए कोई प्रयोजन नहीं हैं। प्रयोजन किसके लिए? हमारे लिए।

लेकिन हम ऐसी श्रद्धा कहाँ ला पाते हैं। हम तो साइंस से बढ़कर के कोई चीज मानते ही नहीं है। उससे बढ़कर के कुछ जानते नहीं, मानते नहीं। तो ये श्रद्धा हमारी बदलनी चाहिए कि हमारा ही ज्ञान इतना विशाल है कि उसके लिए किसी radar और satellite की भी कोई जरूरत नहीं पड़ती है। और वह ज्ञान अपने आप में इतना पूर्णता के साथ प्रकाश के साथ प्रकट होता है कि वह तो दुनिया को देखता है लेकिन दुनिया में कोई भी संसारी प्राणी उसको नहीं देख सकता। ये जब ज्ञान की विशेषताएं आती है तभी तो हमारा interest उधर होगा। किधर? अरिहंत बनने के लिए, सिद्ध बनने के लिए, अपने ज्ञान को अतींद्रिय बनाने के लिए और ज्ञान की पूर्णता प्राप्त करने के लिए।

भ्रान्ति

हर व्यक्ति तड़फता है। complete knowledge चाहिए। बिलकुल absolute knowledge चाहिए अपने को तो। और उसके लिए सब तरीके के mind में pressure डालेगा। आज का science क्या सिखाता है? ये दवाई खाओ, ये खाओ, ये एक्सरसाइज करो, ये इंजेक्शन लगाओ। दिमाग के ये function खोलो। बस दिमाग में ही घूमता रहेगा। दिमाग के अलावा कुछ जानता ही नहीं। तो हमे भी तो अपनी science बतानी पड़ेगी कि भाई दिमाग के अलावा भीकुछ है। हम कहेंगे आवरणीय कर्म जब तक नहीं हटेंगे तब तक कोई ज्ञान भीतर से आएगा नहीं। और वो कहेगा, जब तक दिमाग में ये function नहीं चलेगा तब तक दिमाग में दिखेगा नहीं। science भी मानता है, past का भी हम जान सकते हैं, future का भी हम जान सकते हैं। जब हमारे दिमाग का ये हिस्सा active हो जाए। सब totally depend on mind। लेकिन यहां क्या कहते हैं? नहीं ये सब mind में तो आता है। mind तो उसके function करने का एक instrument है। लेकिन होता काम कहाँ है? वह आत्मा में होता है। आत्मा के ऊपर से आवरण कर्म हटेंगे, ज्ञान उतना ही प्रकट होगा। वो हमारे लिए बाहर आएगा। कभी mind के माध्यम से भी आता है तो कभी वो एक तरीके से incomplete ही कहलाता है। लेकिन जब हमारा ज्ञान केवल अपनी आत्मा के माध्यम से प्रत्यक्ष जानेगा तो वह complete ज्ञान कहलाएगा। तो उस ज्ञान के ऊपर पहले अपना विश्वास होना, श्रद्धान होना। तब तो उस ज्ञान की प्राप्ति का कोई उपाय करेगा। तो यही समझना है कि यह आत्मा की बहुत बड़ी विराट स्थिति है जो स्वयं हर एक मनुष्य के अंदर छिपी हुई है और संसार के हर प्राणी के अंदर छिपी हुई है।

णत्थिपरोक्खंकिंचिविसमंतसव्वक्ख-गुणसमिद्धस्स।
अक्खातीदस्स सदा सयमेवहिणाणजादस्स ॥ २३॥

आत्मीय सर्व गुण आकर हो तना है, पूरा अतीन्द्रिय हुआ निज में सना है।
प्रत्यक्ष ज्ञान जिसमें प्रकटा सही है, होता परोक्ष कुछ भी उसको नहीं है।

अन्वयार्थ-(**सदा अक्खातीदस्स**) जो सदा इन्द्रियातीत (**समंतसव्वक्ख-गुण-समिद्धस्स**) जो सर्व ओर से इन्द्रिय गुणों से समृद्ध हैं (**सयमेवहिणाणजादस्स**) और जो स्वयमेवज्ञानरूप हुए है, उन केवली भगवान् को (**किंचिवि**) कुछ भी (**परोक्खंणत्थि**) परोक्ष नहीं है।

णत्थिपरोक्खंकिंचिवि -अब उसी को और समझा रहे हैं। अलग अलग तरीके से समझा रहे हैं। ज्ञान में आ जाए, विश्वास में आ जाए। और क्या होता है उन भगवान के, उस ज्ञान की विशेषता में? **किंचि**माने कुछ भी।**परोक्खंणत्थि माने**कुछ भी उनके लिए परोक्ष नहीं हैं।**णत्थि**माने नहीं होता है। और ज्ञान को क्या बोलते हैं? **णाणं।**अपना ज्ञान तो परोक्ष रूप है और केवलज्ञानी का ज्ञान प्रत्यक्ष है। तो यह समझना है कि भगवान के लिए कुछ भी परोक्ष होता है क्या? किसी भी प्रकार नहीं। किसके लिए? केवलज्ञानी के लिए। फिर क्या होता है? **समंतसव्वक्ख-गुण-समिद्धस्स**देखो यह बहुत अच्छी चीज है।**समंत**माने होता है,सब ओर से। जो इंद्रिया हैं, उनके गुण जो है, उनसे वह समृद्ध हैं। माने इंद्रियों के लिए जो भी गुण होते हैं, उन इन्द्रिय गुणों के द्वारा जो हम ज्ञान करते हैं, उस ज्ञान से वह समृद्ध माने परिपूर्ण हैं। हम क्या करते हैं अपनी इंद्रियों के माध्यम से? यह स्पर्श ठंडा है, ये स्पर्श गर्म है, यह हल्का है, यह भारी है। यह स्पर्श इन्द्रिय से जानते हैं। रसना इन्द्रिय से हम क्या जानते हैं? यह खट्टा है, ये मीठा है इत्यादि। घ्राण इन्द्रिय से क्या जानते हैं? यह सुगंध है, ये दुर्गंध है। चक्षु इन्द्रिय से क्या जानते हैं? यह काला है, यह नीला है इत्यादि। कर्ण इन्द्रिय से हम क्या जानते हैं? ये क्या बोल रहा है, क्या कह रहा है? इस शब्द का जो अर्थ है वो सब हम अपनी इंद्रियों से जान लेते हैं। तो भगवान क्या करेंगे? अब उनके पास तो इन्द्रिय ज्ञान रहा नहीं। लेकिन जो इंद्रियों से जानने में आ रहा है वह सब कुछ जानने की क्षमता उनके अंदर है।

यह एक बहुत अच्छा विषय है। यह बहुत अच्छी चीज समझने लायक है। क्या कहा जा रहा है? हम जैसे इंद्रियों से जानते हैं तो हम ये समझे कि इन्द्रियॉं ज्ञान के माध्यम से जान रही है कि यह खट्टा, मीठा है। भगवान को इन्द्रिय ज्ञान हैं नहीं। उनको तो अतींद्रिय ज्ञान हो गया। तो उन्हें कैसे पता पड़ेगा कि खट्टा होता है या मीठा होता है। क्योंकि रसना इन्द्रिय का विषय है और उन्हें रसना इन्द्रिय से काम कुछ लेना नहीं है। क्या समझ में आ रहा है? तो वह भी भगवान की उस आत्मा के एक एक प्रदेश में, ये इन्द्रियज्ञान का गुण, परिपूर्ण है।

मतलब क्या हुआ? taste तो नहीं लेंगे लेकिन जानेंगे जरूर कि इस पदार्थ में खट्टापन होता है, इस पदार्थ में मीठापन होता है, इसमें कड़वापन होता है। क्या समझ आ रहा है? यानि कोई भी पदार्थ है तो उस पदार्थ को जानेंगे और उस पदार्थ की पर्यायों को भी जानेंगे। उसके गुणों के स्वभाव को भी जानेंगे। जब पर्याय जानने में आ रही है तो क्या उसके गुणों का स्वभाव नहीं जानने में आएगा? गुणों की ही तो पर्याय होती है। तो जो जानने में आ रही है वो किस रूप में जानने मे आ रही है? सब रूप में जानने में आएगी। पुदगल पदार्थ को जानेंगे तो स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, कर्ण इन्द्रिय वाला जो पुदगल पदार्थ है उसकी हर एक पर्याय को वह जानेंगे। क्या समझ में आ रहा है? वह इतना अच्छा जानेंगे कि आपको पता भी ना पड़े। आप तो मुंह में रखने के बाद भी नहीं जान पाते हो कि इस मीठे में भी कुछ जहर मिला हुआ है। क्या सुन रहे हो? लेकिन उन्हें अपने ज्ञान से सब समझ में आएगा कि इस मीठे में, ये कड़वापन भी मिला हुआ है। लेकिन इसको इस कड़वेपन का आभास नहीं हो रहा है। वो तो जब पेट में जाएगा, उल्टी करोगे तब पता पड़ेगा कि कुछ जहर खा लिया। आया समझ में? तो भगवान को इन्द्रिय ज्ञान नहीं होता, ऐसा नहीं समझना। इन्द्रियों से जो जानने में आने वाली चीजें हैं वह भी सब भगवान जानते हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो फिर तो जितना भी इन्द्रिय व्यापार होता है या इंद्रियों की प्रवृत्तियां होती हैं, उनके बारे में कुछ जान ही नहीं सकते वो। फिर तो प्रथमानुयोग कुछ होगा ही नहीं। उसमें कोई सच्चाई बचेगी ही नहीं। भगवान किसी कहानी को कुछ बता ही नहीं पाएँगे कि क्या सोच रहा था, क्या कह रहा था। अगर भगवान नहीं बताएंगे तो फिर हम जो भी सुनेंगे, वो हमारे लिए यथार्थ नहीं होगा।

अब सुभौम चक्रवर्ती ने खीर खाई। खीर कैसी थी? गर्म थी। किसने देखी? किसने जानी? अगर भगवान ने नहीं देखी, भगवान ने नहीं जानी तो हम किसी की कही बात को कैसे सच मानेंगे? क्या समझ आ रहा है? और वह खीर गरम थी, यह अहसास तो भगवान को नहीं हो रहा है ना। लेकिन भगवान के ज्ञान में दिख रहा है कि कोई सुभौम चक्रवर्ती है,खीर खा रहा है और गर्म होने के कारण से इसकी जीभ जल गई है और जलने के कारण से उसको गुस्सा आ गया और उसने उठा कर के एक थाली उसी रसोइये के ऊपर पटक दी। रस का ज्ञान हुआ कि नहीं भगवान को? स्पर्श का ज्ञान हुआ कि नहींभगवान को? क्या समझ में आ रहा है? कई लोग ऐसा समझते हैं कि भगवान को इन्द्रिय विषयों का कोई ज्ञान नहीं हैं। लेकिन उन्हें इन्द्रियविषय का भी पूरा का पूरा ज्ञान होता है और यहाँ क्या लिखा है? **समंत**का मतलब होता है, सब ओर से। आत्मा के जितने प्रदेश होते हैं, उन एक एक प्रदेश में भगवान को पूर्ण ज्ञान के साथ में हर एक विषय का पूरा का पूरा उन्हें आभास होता है। भगवान के लिए अपनी आत्मा के एक एक विषय का, एक एक प्रदेश का ज्ञान, अपनी पूरी शक्ति के साथ में और पूरे के पूरे ज्ञेय को जानने के साथ में होता है। ये इस शब्द से बताया गया।**समंतसव्वक्ख-गुणसमिद्धस्स**आ गया समझ में?

अक्खातीदस्स सदा सयमेवहिणाणजादस्सवह भगवान कैसे होते हैं? अक्षातीत होते हैं। देखो एक ही आचार्य अलग अलग अर्थ में, एक ही शब्द का प्रयोग भी कर सकते हैं। जैसे हमने कहा, प्रत्यक्ष, परोक्ष। तो यहाँ प्रत्यक्ष का मतलब क्या हो गया? **अक्ष**, माने यहां पर इंद्रिय नहीं है। अक्ष माने यहां पर क्या हुआ? आत्मा।**अक्षंअक्षंप्रतिवर्तते इति प्रत्यक्षं**। जो आत्मा के पास आत्मा में रहता है, वह कहलाता है प्रत्यक्ष। तो यहाँ प्रत्यक्ष का मतलब क्या हुआ? आत्मा से होने वाला। समझ में आ रहा है? यहाँ**अक्ष**माने क्या हो गया? आत्मा। और जब हमने कहा**अक्खातीदंअक्ष**माने यहां पर क्या हो गया? **अक्ष**से अतीत।माने इंद्रियों से अतीत। यहाँ अर्थ क्या निकलेगा? **अक्ष**माने इंद्रियां। और प्रत्यक्ष में**अक्ष**का अर्थ क्या है? आत्मा। इसलिए एक ही शब्द को अलग अलग अर्थों में भी कहा जा सकता है। यहाँ**अक्ष**माने हो गया इंद्रियां। इंद्रियों से अतीत वह भगवान हमेशा स्वयं ही ज्ञानपने से जो प्राप्त हुए हैं, अपने आप को जो ज्ञान रूप बना लिए हैं, ऐसे वह भगवान**अक्षातीत**होते हुए सभी प्रकार के इंद्रियों के गुणों से समृद्ध होकर के भी, सब पदार्थों को जानते हैं और उनके ज्ञान से कुछ भी परोक्ष नहीं होता है। यानी संसार में जितने भी मूर्त पदार्थ हो या अमूर्त पदार्थ हो, कोई भी पदार्थ उनके ज्ञान से परोक्ष भूत नहीं होगा। यह उनके ज्ञान की सबसे बड़ी विशेषताहो जाती है। कोई भी पदार्थ हो, सूक्ष्म हो, स्थूल हो। जो देखने योग्य हो, नहीं देखने योग्य हो। बस होना चाहिए। अगर कोई भी पदार्थ है, किसी भी स्वभाव वाला हो तो आचार्य कहते हैं, वह पदार्थ ज्ञान का विषय जरूर बनता है। वह पदार्थ ज्ञान में जरूर आएगा।

ऐसा कोई भी lens नहीं बना आज तक जिसमें उसके सामने रखी हुई हर चीज बिलकुल दिख जाए। स्थूल चीजें तो दिख जाएंगी। लेकिन उसके बीच में भी बहुत कुछ रहता है, वो उसमें नहीं दिखता है। कोई भी lens होगा, उसमें सामने जो भी चीज आ रही है, वो तो reflected हो जाएगी। जो मूर्त रूप में, स्थूल रूप में हैं। लेकिन जो सूक्ष्म रूप में है, जो दिखाई नहीं देती है, वो उस lenseका विषय नहीं बनती। बहुत सारी waves होती हैं, बहुत सारी sound energy होती है, magnetic energy होती है। वह सब कुछ उस lens में नहीं आ सकता। लेकिन भगवान का ज्ञान lens कितना बड़ा हो गया है, ये आत्मा की महिमा है। इसको समझो कि यह आत्मा इस प्रकार से अनंत ज्ञान और अनंत सुख स्वभाव वाला है। ये जो कहा जाता है, अभी तक तो हमने केवल सुना है। वास्तव में इसके उस अनंत ज्ञान सुख पर हमने कभी विश्वास नहीं किया है। आपको इसमें क्या कठिन लग रहा है? लगता है आपको ऐसा कि प्रवचनसार का विषय बड़ा कठिन है। सब समझ में आ रहा है कि नहीं आ रहा है? मति ज्ञान में ऐसा होता है और केवलज्ञान में ऐसा होता है, इतना ही तो समझना है। और जो समझा है, बस उस पर विश्वास करना है। तो यही समझ हमारे लिए जब आने लग जाती है तो अपने को फिर ये विषय कठिन नहीं लगते और यह रोचक लगने लग जाते हैं। ज्ञानी तो ज्ञान की बात ही करेगा न। सुनो ज्ञान की बातें। और इतना बड़ा ज्ञान है तो उस ज्ञान की बातें करते करते कभी उस ज्ञान की कमी तो नहीं हो सकती। और न वह ज्ञान की बातें करते करते कभी थक सकता है। यही तो इस ज्ञान की विशालता है। जब हम अपने छोटे मोटे ज्ञान में इतनी विशालता देख लेते हैं तो भगवान के केवलज्ञान

की विशालता का तो क्या पार लगा सकते हैं। ऐसे ये ज्ञान की महिमा को जानना ही आत्मा की महिमा को जानना है।

सब लोग कहते हैं, कुछ आत्मा के बारे में बताओ। कुछ आत्मा के ज्ञान के बारे में सुनाओ, समझाओ। कुछ आत्म स्वभाव की हमें प्राप्ति कैसे हो, इसके लिए कुछ बताओ। पहले समझो तो कि आत्मा है क्या? आत्मा में कितनी शक्तियां हैं? कितनी विराटता आत्मा के अंदर है? और आत्मा किस रूप में परिणमन कर सकता है। अशुद्ध से शुद्ध रूप में परिणमन होने के बाद यह सब अपने आप होने लग जाता है। और वह शुद्ध परिणमन किससे होता है? तो वह शुद्धोपयोग के भावों से, शुद्धोपयोग से ही वह आत्मा शुद्ध रूप परिणमन करके, यह स्वयंभू दशा को प्राप्त कर लेता है। ये आत्मा के परिणमन की जो प्रक्रिया है, उस प्रक्रिया को पूरा जब हम जान लेते हैं तो हमें ये समझ में आ जाता है कि अशुभोपयोग हमारे लिए छोड़ देने योग्य है। शुभोपयोग हमारे लिए ग्रहण करने योग्य है और शुद्धोपयोग हमारे लिए उस शुभोपयोग से भी बढ़कर के ग्रहण करने योग्य वस्तु है। क्यों है? क्योंकि शुभोपयोग से भी हम केवल दूसरे को अनुभव में ला सकते हैं, जान सकते हैं। लेकिन अपना अनुभव, अपना ज्ञान तो शुद्धोपयोग से ही होगा।

अभी किस उपयोग में हो? शुद्धोपयोग की बात भी सुनोगे, शुद्धोपयोग की चर्चा भी करोगे तो भी वह अपना उपयोग क्या कहलाएगा? शुभोपयोग। क्यों है? क्योंकि हमें आपकी बातों में, आपके शब्दों में या आपके ज्ञान में क्या हो रहा है? परिणमन हो रहा है। हमारा परिणमन पर में हो रहा है अभी, स्वयं में नहीं हो रहा है। शुद्धोपयोग किसको होगा? जो स्वयं में परिणमन करेगा। और अभी आप क्या कर रहे हो और हम क्या कर रहे हैं? पर में परिणमन। ऐसा क्यों? आप भी पर मेपरिणमन कर रहे हो और हम भी। पर में नहीं कर रहे हैं? ये ज्ञान का परिणमन पर में ही हो रहा है न। किताब सामने है, शास्त्र सामने है। शास्त्र के अर्थों को जानना, शास्त्र के अर्थों को बोलना, ये पर का परिणमन नहीं है? और ये भी सब पर के साथ परिणमन हो रहा है। आप बैठे हो, इसीलिए सुना रहा हूँ। और यहाँ कोई भी न हो तो, अकेले बैठे सुना सकता हूँ? पर में ही परिणमन होता है। बोलना, सुनना इन्द्रिय के जितने भी काम होंगे, ये सब क्या होंगे? पर परिणमन कराने वाले होंगे। देखो सिद्धांत कभी भी, किसी के साथ में पक्षपात नहीं करता है। समझ आ रहा है? आप भक्ति से कुछ भी कहो कि महाराज आप तो स्वयं में परिणमन कररहे हैं और हम पर में परिणमन कर रहे हैं। लेकिन सिद्धांत: कोई भी भक्ति इस बात का समर्थन नहीं करेगी।मतलब सिद्धांत सबके लिए एक जैसा होता है। जो इन्द्रिय के विषयों को काम में ले रहा है या इंद्रियों को काम में ले रहा है, वो सब क्या कर रहा है? पर रूप परिणमन कर रहा है। और वोपरिणमन इतना जरूर है कि अशुभोपयोगनहीं है। यह क्या है? शुभोपयोगी होगा। क्योंकि अशुभोपयोग का मतलब विषय कषायों के और इन्द्रिय के विषयों की तुष्टि के लिए होता है। और ये किसके लिए है? यह हमें अपने आत्म स्वभाव की प्राप्ति के लिए और सम्यक ज्ञान की वृद्धि के लिए है। तो इसलिए ये क्या कहलाएगा? शुभोपयोग कहलाएगा। चाहे आप समयसार जी ग्रंथ की चर्चा करें, चाहे आप प्रवचनसार

जी ग्रंथ की चर्चा करें। सारा का सारा उपयोग आपका क्या कहलाएगा? शुभोपयोग कहलाएगा। शुद्धोपयोगमत समझ लेना।

कुछ लोग समझ लेते हैं। शुद्धोपयोग में क्या होगा? मुंह बंद होगा, इंद्रियां काम करना बंद कर देंगे और स्वयं आत्मा का स्वयं में ही परिणमन प्रारंभ हो जायेगा। और वह कैसे होगा? कपड़े पहने हुए, कि छोड़ कर के? छोड़ कर के। घर में भी छोड़ कर के ,कर लोगे? तो कैसे होगा? संकल्पपूर्वक सब प्रकार के परिग्रह को छोड़कर के, पूर्ण संयम को अपना कर के, वह शुद्धोपयोगी बनता है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि शुद्धोपयोग के माध्यम से केवलज्ञान होता है। क्योंकि जब उपयोग शुद्ध होगा तो ही वह केवलज्ञान में परिणमन करेगा। और वह शुद्धोपयोग, जब केवलज्ञान के अनुरूप हो गया तो इस तरह से अपनी आत्मा से सब पदार्थों को प्रत्यक्ष देखता है। कुछ भी उससे परोक्ष नहीं रहता है। जो भी उस आत्मा ने किया, वो भी दिखेगा और जो पर की आत्माएं कर रही हैं, वो भी देखेगा। लेकिन प्रयोजन देखने का नहीं है। प्रयोजन क्या है? केवल स्वयं को जानना और स्वयं को देखना। पर को जानना और पर को देखना, उनका प्रयोजन नहीं है। इसलिए वो जानने देखने में भी आएगा तो कोई प्रयोजन नहीं है। इतना जरूर है कि अगर उसके साथ जो दिव्य ध्वनि होगी तो उसमें जो उपदेश के रूप में निकल जायेगा, वो हमारे काम का हो जाएगा। आ गया समझ में? वही चीजें हमारे लिए शास्त्र बन जाएँगी और उन्हीं को हम दूसरों को पढ़ा सकते हैं, बता सकते हैं।इसलिए यह केवलज्ञान का प्रयोजन क्या है? अपने लिए प्रयोजन तो यह है कि हम अपने ज्ञान को केवलज्ञान की तरह बनाने के लिए, उतना विराट बनाने के लिए निरंतर प्रयत्नशील हों। और भगवान के लिए उसका प्रयोजन सिर्फ दुनिया को जानना और देखना है, इसके अलावा कुछ भी करना नहीं है।

प्रवचन१३ - आत्मा,ज्ञान,ज्ञेयकासम्बंध (गाथा०२४-०२६)

आदाणाणपमाणंणाणंणेयप्पमाणमुद्दिट्ठं।
णेयंलोयालोयंतम्हाणाणंतुसव्वगयं ॥ २४ ॥

आत्मा तथापि वह ज्ञान प्रमाण भाता, है ज्ञान भी सकल ज्ञेय-प्रमाण साता।
है ज्ञेय तो अमित लोक अलोक सारा, भाई अतः निखिल व्यापक ज्ञान प्यारा॥

अन्वयार्थ- (**आदा**) आत्मा (**णाणपमाणं**) ज्ञान प्रमाण है, (**णाणं**) ज्ञान (**णेयप्पमाणं**) ज्ञेय प्रमाण (**उद्दिट्ठं**) कहा गया है, (**णेयंलोयालोयं**) ज्ञेय लोकालोक है, (**तम्हा**) इसलिए (**णाणंतु**) ज्ञान (**सव्वगयं**) सर्वगत-सर्वव्यापक है।

आत्मा और ज्ञान में कौन छोटा होता है, कौन बड़ा होता है? किसका प्रमाण किसके बराबर होता है?

तो आचार्य यहाँ उसी का उत्तर देते हुए कहते हैं कि**आदाणाणपमाणं**।**आदा**माने आत्मा।**णाणपमाणं**यानि ज्ञान प्रमाण वाला है। आत्मा को नापना है तो ज्ञान से नापना। और ज्ञान का जितना प्रमाण है, वही आत्मा का प्रमाण है।प्रमाण का मतलब? उसकी जो भी हम समझे - लंबाई, चौड़ाई। कहाँ कहाँ वह आत्मा अपने ज्ञान के साथ में रहता है? तो उसके लिए यह कहा जा रहा है कि वह आत्मा ज्ञान प्रमाण वाला है।यानि जहाँ जहाँ ज्ञान है, वहीं वहीं पर आत्मा है।ज्ञान प्रमाण का यह तात्पर्य हुआ।क्योंकि आत्मा कभी ज्ञान को छोड़कर नहीं रहता और ज्ञान भी कभी आत्मा को छोड़कर नहीं रहता। आत्मा कहाँ है? इसका संवेदन आपको कैसे होगा? जहाँ जहाँ तक आपको अपने ज्ञान का संवेदन होगा, वहीं वहीं तक आप आत्मा समझ लेना। इसीलिए जब हम कभी ध्यान कराते हैं, तो आपसे कहते हैं कि पूरे शरीर में अपनी चेतना का अपने ज्ञान से अनुभव करो। चेतना का अनुभव ज्ञान के बिना नहीं होगा और ज्ञान का अनुभव जहाँ तक होगा, वहीं तक अपनी चेतना विद्यमान है, यह सिद्ध हो जाएगा। अब भले ही आपको यह सूत्र नहीं मालूम हो कि ऐसा कहा गया है -**आदाणाणपमाणं**। तो भी इतना तो अनुभूति में आता ही है कि जहां तक हमें अपने शरीर के अंदर ज्ञान यानि ऐसा अनुभव होना कि यहां पर भी संवेदन अपने को हो रहा है, यहां पर भी स्व संवेदन अपना हो रहा है, ऐसा ज्ञान का अनुभव जहाँ तक होता है, वहीं तक आत्मा होती है। आत्मा को पकड़ना हो, तो ज्ञान को पकड़ लो।

आत्मा और ज्ञान के तादात्म संबंध का उदाहरण

अग्नि को पकड़ना है तो उष्णता को पकड़ लो। अग्नि कहाँ कहाँ तक है? जहाँ पर उष्णता है, वहां अग्नि है और जहां अग्नि है, वहां उष्णता है। ये जो संबंध है, वह संबंध ही उसका उस प्रमाण को बताने वाला है।और यही संबंध तादात्म संबंध कहलाता है।इसको क्या बोलते हैं? तादात्म संबंध। तादात्म का मतलब होता है "**तदएव आत्मा यस्य तत् तादात्म**" वह ही जिसकी आत्मा है। आत्मा का मतलब? जिसका प्राण या जिसका स्वरूप, वह ही उसके लिए है, वह ही उसका साथ में उसका तादात्म संबंध बताने वाला हो जाता है। तो अग्नि का उष्णता के साथ में तादात्म संबंध होता है। जहां पर अग्नि है, वहीं पर उष्णता है।क्योंकि अग्नि उष्णता के बिना होगी तो ठंडी कहलाएगी और अग्नि कभी ठंडी होती नहीं। उसी तरह से आत्मा का ज्ञान के साथ में तादात्म संबंध है। कैसा संबंध है? तादात्म संबंध। फिर हमें जब यह पता पड़ जाता है कि आत्मा ज्ञान प्रमाण है तो हम यह भी समझ लें कि आत्मा का और ज्ञान का बिल्कुल तादात्म संबंध बना हुआ है। हमें अगर आत्मा को पकड़ना है या उसका अनुभव करना है तो किसको पकड़ना? ज्ञान को। ज्ञान के बिना कभी आत्मा पकड़ने में नहीं आ सकता क्योंकि आत्मा और ज्ञान का तादात्म संबंध है।

जहां ज्ञानानुभूति है, वहीं आत्मानुभूति होती है

समयसार जी में, अमृतचंद जी महाराज एक कलश में बड़ा अच्छा भाव लिखते हैं -

आत्मानुभूतिरितिशुद्धनयात्मिका या
ज्ञानानुभूतिरियमेवकिलेतिबुद्ध्या।

जो आत्मानुभूति हमें शुद्ध नयसे हो रही है, वहीं हमारी ज्ञानानुभूति है और जो शुद्ध नय से हमें ज्ञानानुभूति हो रही है, वही हमारी आत्मानुभूति है।इन दोनों में अंतर नहीं है। तो जब हम इस ज्ञान के अनुसार अपने शुद्ध नय के माध्यम से अपने ज्ञान की अनुभूति करेंगे तो ही वह ज्ञानानुभूति हमारे लिए आत्मानुभूति कहलायेगी। एक तो आत्मानुभूति वह होती है, जो सामान्य से हर व्यक्ति अपने अंदर महसूस करता है। मैं आत्मा हूँ, मैं अपनी आत्मा का अनुभव कर रहा हूँ। यह आत्मानुभूति तो सामान्य हो गई। शुद्ध नय से जो आत्मानुभूति होगी, वह शुद्ध होगी। अभी हमको जो ये आत्मानुभूति हो रही है, सामान्य से, ये कैसी है? ये तो सामान्य से, अशुद्ध नय से कह लो।व्यवहार नय से कह लो। क्योंकि यह अनुभूति तो कोई भी समझ सकता है। 'मैं आत्मा हूँ' अगर हम उससे कह देंगे, आत्मा ज्ञान प्रमाण है तो वह यह भी कहने लगेगा - मैं ज्ञानमय हूँ। मेरा आत्मा ज्ञान स्वभाव वाला है। तो यह जो एक सामान्य अनुभव है, यह अनुभव तो किसी को भी हो सकता है।

शुद्ध नय से आत्मानुभूति

जब आत्मा शुद्ध नय का विषय बनेगा तो उस समय पर वो आत्मा कैसा होगा? शुद्ध आत्मा ही शुद्ध नय का विषय बनता है। क्या कहा? शुद्ध नय का विषयभूत पदार्थ क्या होगा? शुद्ध आत्मा। आत्मा शुद्ध कब होगा?

जब उसका उपयोग शुद्ध हो। जो उपयोग से विशुद्ध हो गया, वह अपने अंदर शुद्धता ले आया और वह उपयोग की शुद्धि अगर अंतरमुहर्त तक बनी रहती है तो वह सब ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय कर्मों का नाश कर डालती है। तो वह उपयोग विशुद्धि के साथ में, वह आत्मा की शुद्धि जो होगी वास्तव में, वह कब होगी? वह तो सम्पूर्ण राग और मोह का अभाव होने पर ही होगी। आचार्य अमृतचंद जी महाराज समयसार जी में जिस ज्ञानानुभूति और आत्मानुभूति की बात कहते हैं तो वह शुद्ध नय से होने वाली आत्मानुभूति, ज्ञानानुभूति कब होगी? जब आत्मा मोह और राग से बिलकुल रहित होकर के, अपने शुद्ध स्वभाव में शुद्ध उपयोग के साथ में आ जाएगा तब उसकी जो अनुभूति है, वही वास्तव में ज्ञानानुभूति है और वही आत्मानुभूति है।

मोह और राग के साथ में आत्मानुभूति नहीं होती

अगर हम आपसे कहें कि आपका आत्मा ज्ञान स्वभाव वाला है और देखो आप अपनी आत्मा का अनुभव करो। तो आप ये तो महसूस कर लेंगे कि हाँ मुझे अपनी आत्मा का अनुभव हो रहा है। लेकिन जैसे ही आपके शरीर में कुछ भी प्रतिकूल होगा तो आपकी वह अनुभूति भी छूट जाएगी, जो सामान्य से होने वाली है। क्यों छूट जाएगी? क्योंकि अपना संबंध शरीर के साथ में जुड़ा हुआ है। और हम जो कह रहे हैं कि आत्मा ज्ञान प्रमाण है, आत्मा ज्ञान स्वभाव वाला है, ये तो हमारे लिए केवल अभी श्रद्धा का विषय बन रहा है और ज्ञान का विषय बन रहा है। आचरण का विषय नहीं बन रहा है। ज्ञान को और श्रद्धा को जानना। अभी तो हमने केवल ये अपने आप में जानकार के श्रद्धा बनाई है कि हाँ हमारा आत्मा ज्ञान प्रमाण है, ज्ञान स्वभाव वाला है। इसलिए**आदाणाणपमाणं,**ये कह कर के अभी तो हमारी क्या बनती है? श्रद्धा बनती है।लेकिन अनुभूति तो हमारी मोह के साथ ही होती है।

अब मोह से रहित अनुभूति करने के लिए क्या करना?

बार बार अपनी आत्मा को शुद्ध नय से जैसा अनुभव होगा, वैसा शुद्ध नय का विचार अपनी आत्मा में पहले से लाना। क्या कहा? शुद्ध नय से आत्मा ज्ञान मात्र है, शुद्ध नय से आत्मा ज्ञान स्वभाव वाला है। जो ज्ञान की अनुभूति है, वही आत्मा की अनुभूति है। तो शुद्ध नय का जो विषय भूत आत्मा है, उसकी हम पहले भावना कर सकते हैं। अनुभूति नहीं होगी अभी। अभी क्या होगा? भावना होने लग जाएगी और यही भावना, उसके लिए, उसको शुद्ध नय की ओर बढ़ाने की रुचि पैदा करेगी। अब आप कहो - महाराज ! हम गृहस्थ हैं। हम क्या कर सकते हैं? शुद्ध नय से जो आत्मा की अनुभूति होती है वो तो हमको होने वाली नहीं क्योंकि उतना तो शुद्धोपयोग और शुद्ध आत्मा का परिणमन हमारा होने वाला नहीं। किसी का भी नहीं होने वाला। सर्वथा मोह और राग से हटकर के होने वाली शुद्धात्मा की अनुभूति तो पंचम काल में किसी को होना ही नहीं। तो क्या करना है फिर? तो आचार्य कहते हैं - शुद्ध नय से जैसे आत्मा का स्वभाव बताया गया है, उस स्वभाव की

भावना करो। मेरा आत्मा शुद्ध नय से परम शुद्ध ज्ञायक स्वभाव वाला, केवल ज्ञान मात्र ही है। और कुछ नहीं है आत्मा में। जो आत्मानुभूति, वही ज्ञानानुभूति और जो ज्ञानानुभूति, वही आत्मानुभूति। इस तरह की जो भावना करता है कि मैं तो केवल ज्ञान मात्र हूँ। तो क्या होगा? उसकी उस भावना से ही उसका राग मोह कुछ कम होगा। क्योंकि उसका उपयोग बार बार कहाँ लग रहा है? अपने ज्ञान अनुभव में लग रहा है। बीच बीच में उसको राग का भी अनुभव उसके साथ चल रहा है, मोह का अनुभव भी उसके साथ चल रहा है। लेकिन वो उसको अपने उपयोग से हटाता है। नहीं ! यह मेरा स्वभाव नहीं। मेरा स्वभाव तो मात्र ज्ञानमयहै। ज्ञानानुभूति करना है। तो वही ज्ञानानुभूति उसके लिए आत्मानुभूति का एक साधन बन जाती है और वही आत्मानुभूति हमारे लिए आत्मा की शुद्धि कराने का भी एक माध्यम बन जाती है।

शुद्ध नय से ज्ञानानुभूति की भावना

इसलिए यह ज्ञानानुभूति शुद्ध नय से भले ही हमारे सामने न हो, लेकिन हमें शुद्ध नय की भावना करनी ही होती है। तो पहले विश्वास किया जाता है। फिर ज्ञान के साथ में उस विश्वास को जमाया जाता है और फिर विश्वास जमाते जमाते ही वह भावना भी की जाती है। क्योंकि उसके बिना हमें कभी भी अपना स्वयं संवेदन, जो ज्ञान मात्र है, वो होने वाला नहीं है। और ये बीच में जो सूत्र मिल जाते हैं, ये अपने लिए बड़ा सहारा देते हैं।**आदाणाणपमाणं**। अब भले ही दादा बन गया है और वह**आदाणाणपमाणं,**ऐसा सोच रहा है और वहीं पर उसका नाती पोता चिल्लाने लग जाता है - दादा जी, दादा जी क्या कर रहे हो? आप क्यों आँखे बंद किए बैठे हो? उसकी गोदी में आकर बैठ जाता है। और इधर वो कहता है कि**आदाणाणपमाणं**।यह सुनने में भी आ रहा है ,कि हम से कह रहा है - दादा ! तुम्हारा ध्यान कहाँ हैं? हमारी तरफ देख ही नहीं रहे हो। तो दोनों के बीच में वो झूलता रहता है। यह भी सोचता है कि देखो ! ये मोह के कारण से अपने स्वभाव में स्थिरता बनती नहीं और थोड़ी बहुत बनती है तो ये हिला देता है। ये बीच में आ जाता है। तो ये भावना भी मन से करेगा तो थोड़ी सी उसके अंदर श्रद्धा बनेगी कि मेरा आत्मा कैसा है? ज्ञान प्रमाण है, ज्ञान स्वभाव वाला है। आखिरकार शरीर को छोड़ने के बाद में जो चला जाएगा और जो रहेगा, वो तो मैं ही हूँ ना। और वो मैं कौन हूँ? वह मैं आत्मा हूँ। और वह आत्मा जो ज्ञान की अनुभूति कर रहा है, बस वही मैं आत्मा, जानने वाला हूँ और अगले जन्म में भी कहीं जाऊँगा तो वहां पर भी ऐसी अनुभूति करूँगा।और यहाँ पर जो मोह है, ये मोह तो केवल अभी इन संयोगो और संबंधों के कारण से हो रहा है। हमारा इस मोह से तादात्म संबंध नहीं है। इतना तो mind में differentiation हो जाना चाहिए कि तादात्म संबंध क्या होता है? और संयोग संबंध क्या होता है?

तादात्म संबंध कभी भी नष्ट नहीं होता

तादात्म संबंध तो यह है कि जहाँ आत्मा गया, वहीं ज्ञान गया। लेकिन जहाँ आत्मा गया, वहीं पर दादा गया क्या? वहीं पर हमारा नाती गया क्या? नहीं ! वो यहीं छूट जाएगा। क्यों छूट जाएगा? क्योंकि मोह से हमारा तादात्म संबंध नहीं है। तादात्म संबंध किससे? ज्ञान से। इसलिए जहां आत्मा जाएगा, वहाँ मेरा ज्ञान हमेशा

साथ में रहेगा। अब बताओ ! कितनी निश्चिंतता आ जानी चाहिए। हमारा तो हमसे कभी छूटने वाला ,है ही नहीं और जो हमारा नहीं है, वो छूटेगा। वो तो छूटेगा ही। वो हमारा नहीं है, इसलिए छूटेगा। ज्ञान हमारा है, इसलिए हमसे नहीं छूटेगा। तो किसकी आराधना करना? मोह की या ज्ञान की? फंस गए। दिन भर तो time मोह की आराधना में ही निकलता है न। तो वह समय ज्ञान की आराधना में निकले। कैसे निकलेगा? तो इसी भावना से निकलेगा कि मेरा आत्मा के साथ में तादात्म संबंध, केवल ज्ञान का है और किसी का नहीं है। इसके अलावा हमको अपने अंदर निश्चिंतता देने वाला कोई भी ज्ञान नहीं है। और जब ज्ञान के साथ में ऐसा जुड़ाव होगा तो अपने आप वह मोह को छोड़ने का भाव भी करेगा और मोह छूटेगा भी। यह भी कहा है कि जितना आप इस तरीके से ज्ञान की भावना करोगे, उतना आपका मोह कम होगा, राग कम होगा। आपके मोह और राग का उपशमन होता चला जाएगा।यही चीज है कि जो तादात्म संबंध है। वह कभी भी नष्ट नहीं होता। कोई कितना भी आत्मा को जलावे की कोशिश करे, ज्ञान को मिटाने की कोशिश करें लेकिन ज्ञान अपना संबंध आत्मा से कभी छोड़ेगा नहीं।सबको छोड़ देगा। शरीर को छोड़ देगा, परिवार को छोड़ देगा लेकिन ज्ञान कभी भी आत्मा से अपना संबंध नहीं छोड़ेगा। ज्ञान को कितना ही पीटो। क्या समझ में आ रहा है? ज्ञान को कितना ही पीटो लेकिन ज्ञान कभी भी आत्मा से हटने वाला नहीं। कितना ही उसको काटो, कितना ही उसको विभाजित करो, ज्ञान कभी भी आत्मा से अलग होने वाला नहीं है। ऐसा अपने मस्तिष्क में, श्रद्धा में, एक ठोस विचार आ जाना चाहिए कि ज्ञान और आत्मा का तादात्म संबंध होता है और तादात्म संबंध किसी भी चीज का कभी भी हटता नहीं है।

<u>तादात्म संबंध कभी भी नष्ट नहीं होता – उदाहरण</u>

अग्नि को पिटोगे तो अग्नि कब पिटेगी? केवल अग्नि को नहीं पिट पाओगे आप कभी भी। अकेली अग्नि को मार पाओगे? अब अग्नि को पीटना है तो क्या करना पड़ेगा? उसको किसी ठोस वस्तु के अंदर प्रवेश करा दो। जैसे लोहा है, लोहे में अग्नि प्रवेश कर गई। आप क्या कहते हैं? लोहा गर्म हो गया। अब चोट मारो गरम लोहे पर। समझ में आ रहा है? अग्नि अगर पिटेगी तो कब पिटेगी? लोहे का संपर्क हुआ है तो ही अग्नि को पीटा जा सकता है अन्यथा शुद्ध अग्नि को आप कभी भी पीट नहीं सकते। क्योंकि वह आपके पिटने के लिए संपर्क में नहीं आ सकती है। लेकिन अगर उसका संपर्क किसी ऐसी वस्तु से हो गया जिस पर आपका हथोड़ा पड़ सकता है तो अग्नि का संपर्क लोहे से होने पर, लोहे की पिटाई होती है लेकिन अग्नि भी उसके साथपिटती है और अग्नि को पीटने का यही एक मात्र तरीका है। क्या सुन रहे हो? ज्ञानी आत्माओं? आपके ज्ञान कीपिटाई होती है कभी कि नहीं होती है? ज्ञानी आत्मा की भी पिटाई होती है कि नहीं होती है? कब होती है? जब वह शरीर के संपर्क में हैं तो ज्ञानी आत्मा को भी पिटना पड़ता है। ज्ञानी आत्मा के ऊपर भी प्रहार हो जाता है और वह ज्ञानी आत्मा भी उस प्रहार को सहन करता है। उसको तोड़ने का प्रयास किया जाता है। लेकिन जो अंदर से ज्ञानी बन गया होता है तो वह उस प्रहार को देखता रहता है कि ये प्रहार मेरे ऊपर नहीं हो सकता। इससे

क्या टूटेगा? शरीर टूटेगा। जो ठोस वस्तु है, वो टूटेगी। लेकिन जो अज्ञानी होता है तो वह उस शरीर के साथ में पिटता है। तो वह उस शरीर के साथ महसूस करता है कि मैं पिट रहा हूँ, मैं जल रहा हूँ, मैं कट रहा हूँ। कौन? इतना ही कहा जा सकता है ज्ञानी और अज्ञानी में अंतर्। आप समझ लो ज्ञानी और अज्ञानी में कितना बड़ा अंतर है? एक तो ज्ञानी वह गज कुमार मुनि हैं जिनके ऊपर सिगड़ी रखी हुई है गरम गरम।सिर जल भी गया है और फिर भी वो क्या सोच रहे हैं? कि कोई भी सिगड़ी की आग मेरे ज्ञान स्वभाव को छू नहीं सकती है। सुन रहे हो?

अनुभूति और श्रद्धा में अंतर

अपनी स्थिति क्या है? आप की बात तो समझ में आ जाती है महाराज लेकिन फिर ऐसा लगता है कि समझे, न समझे, बराबर हैं। वहीं की वहीं बात बनी रहती है। यही अंतर होता है - अनुभूति में और श्रद्धा में। हैं न। हम अनुभूति जब भी करेंगे तो चारित्र के साथ करेंगे और जब अनुभूति होगी तो उस समय पर हमारे अंदर इसी प्रकार का ज्ञानमय भाव आएगा। और जब तक अनुभूति नहीं होती है तब तक हम केवल विश्वास रखते हैं, श्रद्धा रखते हैं। लेकिन अगर कहीं पर थोड़ी सी भी आग की लपट आती हुई अपने पास में दिखाई दे जाती है, तो तुरंत दूर बैठने का भी साहस कर लेते हैं। होता है कि नहीं होता? यही एक संबंध, ज्ञानी और अज्ञानी के बीच का बहुत बड़ा अंतर बताने वाला है। इसलिए आचार्य कहते हैं, **ज्ञानी को हमेशा ज्ञान स्वभाव में रहना होता है और अज्ञानी हमेशा अज्ञानस्वभाव में ही रहता है**। अब यहां पर अज्ञानी से मतलब क्या समझना? समयसार ग्रंथ में भी अज्ञानी की बात आती है। तो वही अज्ञानी की बात है जो मोह के साथ जुड़ रहा है और मोह के साथ पिट रहा है तो वह यह समझता है कि यह मेरी पिटाई हो रही है। किसकी पिटाई हो रही है? वस्तुत: तो उसे समझना चाहिए कि ज्ञान की तो कभी पिटाई हो नहीं सकती। ज्ञानी की तो कभी पिटाई हो नहीं सकती है। लेकिन वो क्या समझ रहा है? मैं पिट रहा हूँ। और जहाँ ये भाव आ गया, वहीं अज्ञानता का भाव हो गया। क्या समझ आ रहा है?

लोहे के संपर्क में आकर के अग्नि पिटती है लेकिन अगर अग्नि लोहे से भिन्न रहते हुए, केवल यह समझे किनहीं ! ये लोहे के ऊपर ही वार हो रहा है।मेरे ऊपर तो कभी कुछ हो नहीं सकता। तो हम यह भी कह सकते हैं कि अग्नि की पिटाई नहीं हो सकती है। दोनों ही बातें हैं न। कथंचित्अग्नि पिटती भी है और कथंचित्अग्नि नहीं भी पिटती।फिर भी आप कह सकते हो - महाराज ! इसी तरीके से तो कथंचित्आत्मा की पिटाई होती है और कथंचिन्नहीं होती है। होती तब है, जब वह यह कहता है कि हाँ, मैं पिट रहा हूँ। मुझे मारा जा रहा है तो आत्मा की पिटाई हो रही है। और जब वह कहेगा - नहीं ! मेरे को तो कभी कोई भी अस्त्र शस्त्र छू ही नहीं सकता तो उसकी कभी पिटाई नहीं होती हैं। समझ में आ रहा है? तो पहले ये श्रद्धान कर लो।

आत्मा और ज्ञान का संबंध कैसा है? तादात्म

तादात्म का मतलब? कभी भी टूटने वाला नहीं, कभी भी अलग होने वाला नहीं है। आत्मा का और ज्ञान का यह जो संबंध है, इस संबंध पर श्रद्धान होने से ही हम शरीरगत अनेक कष्टों को सहन कर सकते हैं। यह भी एक बात है। है न। और इस तरह का अभ्यास भी किया जा सकता है। क्योंकि यही भावना हमारे लिए उस अभ्यास को बढ़ाती है।**आदाणाणपमाणं।**आत्मा कैसा है? ज्ञान प्रमाण है। देखो इस अध्यात्म ग्रंथ में ये नहीं लिखा**आदादेहपमाणं।**ये भी तो कह सकते थे? क्योंकि जितनी देह है, उतना ही आत्मा है। क्या सुन रहे हो? जितनी देह हैं, उतना ही तो आत्मा है। देह के बाहर तो कहीं भी नहीं है न। आत्मा तो जितना देह है, उतना ही है ना। तो ये भी तो कह सकते थे कि**आदादेहपमाणं**।न छंद बिगड़ता, न कुछ होता। लेकिन आत्मा का प्रमाण बताने का यह बिल्कुल सही तरीका नहीं होता। ये व्यवहार नय से बताने का तरीका होता। है न। आत्मा का ज्ञान के साथ में जो संबंध है, वह देह के साथ में नहीं है। क्योंकि देह में भी कुछ ऐसी जगह होती है, पोल होती है, देह में कहीं कहीं। एक कान में पोल होती है, नाक में पोल है तो ऐसे स्थानों पर तो आत्मा के प्रदेश भी नहीं होते हैं। लेकिन वह सब आएगी उस देह के प्रमाण में ही। नहीं समझ आ रहा है? ये जो नाक में पोल है, आँख में पोल है, इन जगहों पर आत्मा के प्रदेश तो नहीं है। लेकिन यह सब प्रमाण उसी में गिना जाएगा।

व्यवहार नय से आत्मा शरीर प्रमाण है और निश्चय नय से आत्मा ज्ञान प्रमाण

तो यह व्यवहार नय से कहा जाता है कि आत्मा शरीर प्रमाण है, देहप्रमाण है। लेकिन यथार्थ में, निश्चय नय में कहेंगे तो आत्मा ज्ञान प्रमाण है। सुन रहे हो? व्यवहार भी काम में आता है कि नहीं आता है? आता तो है। अब किसी भी आत्मा को हमें बुलाना है या किसी भी आत्मा को कहीं से उठा कर के कहीं बिठाना है तो बिना देह के तो वो नहीं बैठेगा। उसकी देह जहाँ जाएगी, वही तो उसकी आत्मा जाएगी। समझ आ रहा है? तो व्यवहार से तो आत्मा देह प्रमाण है और वही काम में आती है। लेकिन निश्चय से आत्मा ज्ञान प्रमाण है।**देह प्रमाण आत्मा तो दूसरे के काम में आ सकती है लेकिन ज्ञान प्रमाण आत्मा किसी के काम में नहीं आती। वो तो सिर्फ अपने ही काम में आएगी**। आ रहा है समझ में? तो दोनों बातें याद रखना कि आदाणाणपमाणंऔरआदादेहपमाणं। णाणपमाणं तोतादात्म संबंध के साथ में हैं और देहपमाणं सहयोग संबंध के साथ। देह प्रमाण वहाँ बताया है तो वह व्यवहार से समझाया है। लेकिन वहाँ पर भी जब उसका खुलासा किया है तो यह भी तो लिखा है**णिच्छयणय दो दूअसंखदेसोवा**निश्चय नय से आत्मा का प्रमाण कितना है? असंख्यात प्रदेश बराबर है।हम उसको देह बराबर भी नहीं कह सकते। हैं न। क्योंकि समुदघात जब होता है तो उस समय पर देह के बाहर भी प्रदेश चले जाते हैं। लेकिन आत्मा के असंख्यात प्रदेशों में कभी कोई कमी नहीं आती। ज्ञान अनंत है, ज्ञान के अंदर की जो शक्ति है, वह अनंत रूप में है। लेकिन आत्मा का जो प्रदेशों का विभाजन है या आत्मा के प्रदेशों की जो संख्या है, वोअसंख्यात हैं। प्रदेश का मतलब? आत्मा जितनी जगह

घेरती है, वो उसके लिए असंख्यात प्रदेशों के बराबर जगह घेरती है। इसलिए एक एक प्रदेश में आत्मा के जो ज्ञान है, वो अनंत अनंत हो सकता है लेकिन आत्मा अपने आप में हमेशा असंख्यात प्रदेश वाला ही रहता है। तो**यह जो आत्मा के असंख्यात प्रदेश बताना, यह उसके परिमाण की अपेक्षा से है। और आत्मा का ज्ञान के साथ जो प्रमाण बताना, यह उस के गुण की अपेक्षा से है।**जैसे सोना है तो हमने कहा - सोना कितना है? तो जहाँ तक वह सोना है वहीं तक उसका पीलापन हैं। जितना सोने का प्रदेश है उतना ही उस पीलेपन के भी स्थान है, प्रदेश है। तो वह सोना पीलेपन के बराबर हो गया। वह उसका गुण है इसलिए। इसी तरीके से आत्मा का गुण ज्ञान है। तो गुणकी अपेक्षा से जब हम आत्मा का संबंध बनाते हैं तो आत्मा ज्ञान प्रमाण है।और जब हम केवल आत्मा के प्रदेशों की संख्या देखेंगे तो आत्मा केवल असंख्यात प्रदेश प्रमाण है। वह क्षेत्र की अपेक्षा से हो गया। उस क्षेत्र नापने की अपेक्षा से हो गया।इस तरीके से ये आत्मा के बारे में सब तरह से समझना। व्यवहार से, निश्चय से। और व्यवहार में भी असद भूत व्यवहार से भी आप समझ सकते हो।अब आगे पढ़े क्या लिखा है?

<u>आत्मा ज्ञान के बराबर और ज्ञान ज्ञेय के बराबर</u>

णाणंणेयप्पमाणक्या कहा है? ज्ञान कैसा होता है? आत्मा ज्ञान के बराबर है। और ज्ञान किसके बराबर है? **ज्ञेयपमाणं**। ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है। यहाँ पर आत्मा की शक्ति बताई जा रही है, ज्ञान की शक्ति बताई जा रही है कि ज्ञान किसके बराबर है? ज्ञेय के बराबर है। अब ज्ञान ज्ञेय के बराबर कैसे हो सकता है? जो ज्ञान की शक्ति है वो इतनी अधिक है कि वह सब ज्ञेयो को जान सकता है। ज्ञेय का मतलब? जानने योग्य जितने भी पदार्थ हैं -जीव,अजीव, चर, अचर जो भी पदार्थ समूह है, वह सारा का सारा ज्ञेय कहलाता है और वह ज्ञेय को जानने की शक्ति केवल ज्ञान में है। इसलिए ज्ञान ज्ञेय के बराबर है। क्या समझ में आ रहा है? ऐसा नहीं कहा कि ज्ञान आत्मा के बराबर है। ये भी एक समझने की बात है। आत्मा ज्ञान बराबर है लेकिन ज्ञान ज्ञेय के बराबर क्यों कहा? क्योंकि यहां पर ज्ञान की शक्ति बताई जा रही है। और वह ज्ञान की शक्ति इसी तरह से समझना जैसे आपसे कहा कि अग्नि तो उष्णता के बराबर है। लेकिन उष्णता किसके बराबर है? अग्नि के बराबर? अगर अग्नि के बराबर होती है तो फिर अग्नि के अलावा जो कुछ भी है, उसके ऊपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। तो वह जिस जिस चीज को पकड़ रही है। क्या? अग्नि नहीं।अग्नि तो उष्णता के साथ में हैं, इसलिए अग्नि कहने में आ रही है। लेकिन उसकी उष्णता जिस जिस चीज को पकड़ रही है, वह उसी के बराबर कहलाएगी। इसी तरह से ज्ञान जिस जिस चीज को पकड़ेगा, वहीं उसके लिए उसका प्रमाण कहलाएगा। इसलिए ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है क्योंकि ज्ञान के आगे कोई भी ज्ञेय बचता नहीं है। और ज्ञेय क्या होता है? लोक और अलोक, तीन लोक, ये पूरा ज्ञेय बन जाता है। और इस लोक के बाहर जितना भी अनंत अलोकाकाश होता है, वह अलोकाकाश भी ज्ञेय बन जाता है। वह सारा का सारा लोक और अलोक उनके ज्ञान में आ जाता है। इसलिए वह ज्ञान, लोक और अलोकज्ञेय प्रमाण हो जाता है।

अब जब ज्ञान इतना हो गया, इतना बड़ा हो गया और इस ज्ञान ने सब कुछ जान लिया तो यहाँ कहा गया - **तम्हाणाणंतुसव्वगयं**। इसलिए ज्ञान कैसा है? सर्वगत है। माने सर्वत्र व्याप्त है, व्यापक है। समझ में आ रहा है? क्योंकि ज्ञान ने सब कुछ अपने में व्याप्त कर लिया। अब इसी चीज को दूसरे लोग क्या समझते हैं? अपने यहाँ भी कहा गया कि भगवान सर्वगत है। क्यों है? क्योंकि उनके ज्ञान में सब कुछ आ चुका होता है।और अन्यत्र भी कहा जाता है, भगवान सर्वत्र व्याप्त है। क्या समझ में आ रहा है? वो वाली बात तो सबको मालूम है - भगवान कण कण में व्याप्त हैं। सर्वत्र व्याप्त है। और ये बात किसी को नहीं मालूम कि भगवान का ज्ञान सर्वत्र व्याप्त है। तो ज्ञान पूरे लोकअलोक में व्याप्त हो सकता है तो इसका मतलब क्या है? कि उस ज्ञान में पूरा लोक और अलोक जानने में आ रहा है। जो जानने में आ गया, हमने उसको पकड़ लिया।और केवल उतना ही नहीं पकड़ा, पिछला आगे का सब कुछ वह पकड़ने में आ गया क्योंकि उस ज्ञान के अंदर इतनी शक्ति है कि वह सब द्रव्य, गुण, पर्यायों को जानने लग जाता है। तो इसलिए ज्ञान सर्वगत होता है। ज्ञानी सर्वगत नहीं होता है।

भगवान का ज्ञान सर्वगत है। भगवान सर्वगत नहीं है।

भगवान सर्वत्र व्याप्त नहीं है लेकिन भगवान का ज्ञान सर्वत्र व्याप्त है। वह भी इसलिए कहने वाला है क्योंकि जो सर्व जगत है, वो उनके ज्ञान में व्याप्त हो गया। ज्ञान कहीं बाहर निकल के नहीं गया व्याप्त होने के लिए। किन्तु बाहर की सब चीजें उनके ज्ञान में आ गई। इसलिए वह ज्ञान ही सर्वगत है, ऐसा कहने में आ जाता है। आ गया समझ में? भगवान को सर्वगत कहने वालों, सुन लो। भगवान सर्वगतनहीं होता है, ज्ञान सर्वगत होता है। भगवान सब जगह नहीं जाता, ज्ञान सब जगह चला जाता है। यहाँ बैठे हो। आपका ज्ञान घर के कोने कोने में चला जाता है कि नहीं चला जाता? अरे वो किचन में अभी तो दूध रख कर के आए थे गर्म होने के लिए और हम चले आए यहाँ। कहाँ क्या चल रहा है? ये आपका इन्द्रिय ज्ञान है। छोटा सा मति ज्ञान है। श्रुत ज्ञान भी इतना दौड़ता रहता है, तो समझो, केवलज्ञान की तो बात ही क्या है? तो ऐसा ज्ञान जिससे हमें चलाना नहीं पड़ता।ये तो हम चला रहे हैं, जानने की कोशिश कर रहे हैं तब जानने में आ रहा है। लेकिन भगवान के ज्ञान में तो बिना इच्छा के सब कुछ उनके ज्ञान में आ रहा है। सुन रहे हो? इसीलिए जब हम अपना ज्ञान चलाते हैं तो हम तो थक जाते हैं लेकिन भगवान कभी भी थकते नहीं है।क्योंकि चलाते नहीं है। समझ आ गया? हमें तो चलाना पड़ता है। सुनना है तो भी चलाना है। बोलना है तो भी चलाना है। सोचना है तो भी चलाना है। है न। ज्ञान चलता है तो थकान आती है। और उनको थकान क्यों नहीं आती? क्योंकि उनका ज्ञान स्थिरहो गया। जगत अपने आप चल कर के उनके ज्ञान में आ रहा है। और लोगों को बात जब समझ में नहीं आती तो कहते हैं - भगवान ही चलकर के जगत में व्याप्त हो जाता है।

बस थोड़ा सा अंतर रहता है मिथ्या बुद्धि में और सम्यक बुद्धि में। ज्यादा अंतर नहीं होता है। बस ऐसे ही उल्टा सीधा होता रहता है।जब तक हम ये जानते रहे कि भगवान कण कणमें व्याप्त है तब तक अपनी बुद्धि उल्टी।

जब हमने जान लिया कि भगवान कहीं व्याप्त नहीं, भगवान तो अपने ज्ञान स्वभाव में, ज्ञान में व्याप्त हैं। भगवान के ज्ञान में जगत व्याप्त है तो आपकी बुद्धि सीधी हो गयी। करना तो उल्टी को सीधा है न। आप देखो जगत में सीधी बुद्धि वाले कहीं मिलेंगे आपको? सीधी बुद्धि वाले कहीं नहीं मिलेंगे। जगत में सब कैसे मिलेंगे? अरे जब उल्टी को सीधा करना है तो तभी ऐसे ही लोग मिलेंगे न। सीधा को तो उल्टा किया नहीं जा सकता। इसलिए सीधी बुद्धि वाले मिलते ही नहीं हैं। सब कैसे मिलते हैं? उल्टी बुद्धि वाले। तो इससे सिद्ध होता है कि जगत की बुद्धि उल्टी है। उल्टी बुद्धि वाले सब मिल रहे हैं। और जब उल्टी को सीधा कर सकते हैं तो इसका मतलब है कि हम, जो गलत था, उसको तो सही बना सकते हैं। लेकिन जो सही है? ऐसे लोग तो दिखते ही नहीं हैं। इसलिए उनके लिए कोई प्रयास नहीं किया जाएगा, जो सही है। उनको कोई गलत नहीं बना सकेगा। गलत को सही बनाने के लिए प्रयास किया जाता है। इससे भी समझ में आता है कि जगत की बुद्धि कैसी चल रही है? उल्टी चल रही है। इसलिए उनमें से जितनों की बुद्धि सीधी हो जाए, बस समझ लो, उतनाे का कल्याण हो गया। इतना ही तो श्रद्धा करना है कि भगवान कण कण में व्याप्त नहीं है।लेकिन भगवान का ज्ञान कण कण में व्याप्त है।और वहभी व्याप्त होने का मतलब ऐसा नहीं है कि ज्ञान कण कण में घुस गया है। कण कण भगवान में घुस गया है। बात सब वही घूमती है। समझने का फेर रहता है। इसी का नाम सम्यक ज्ञान और इसी का नाम मिथ्या ज्ञान। भगवान का ज्ञान कण कण में नहीं घुस गया। एक एक परमाणु को, एक एक द्रव्य को भगवान ने जान लिया। उसके अनंत गुणों के साथ, उसकी अनंत पर्याय के साथ ऐसा उसको पकड़ा कि पहले ये किस रूप में था, आगे किस रूप में होगा, वह सब उनके ज्ञान में, पकड़ में आ गया। अब वो कहीं नहीं जा सकता। वह ऐसा व्याप्त हो गया ज्ञान, उस ज्ञेय में।

<u>ज्ञान ज्ञेय प्रमाण होता हैं</u>

इसलिए ज्ञान किस प्रमाण होता है? ज्ञेय प्रमाण होता है। और ज्ञेय लोकालोक होता है इसलिए ज्ञान को सर्वगत कहा जाता है और उस ज्ञान के साथ रहने वाला आत्मा, वो ज्ञानी भी सर्वगत हो जाएगा। लेकिन सर्वगत का मतलब ऐसा नहीं समझ लेना कि वो चल चल के सब जगह जाए तो सर्वगत हो जाएगा। एक जगह ही बैठा बैठावोसर्वगत कहलाएगा। और दूसरों का भगवान हर जगह चल चल के जाता है। सब में घुस चुका होता है। इसलिए वह जो भगवान का मानना और ये जो भगवान का समझना यही हमारे अंदर बहुत बड़ा एक मिथ्या और सम्यक का अंतर ले आता है। आ रहा है समझ में? बुद्धि उल्टी हो रही है या सीधी हो रही है? उल्टी को सीधा करना है। जितनी हम कर दे ठीक है नहीं तो बाकी का काम आप कर लेना थोड़ा बहुत। नहीं कर सकते आप लोग? ये भी एक पुरुषार्थ है। अगर हमारी सीधी हो जाए तो हमारे अंदर ये भी भाव आ जाना चाहिए कि भाई दूसरों की बुद्धि हम सीधी कर दें। ये भी करने का विचार करना चाहिए। इसलिए कहा गया है कि यह आत्मा, ज्ञान और ज्ञेय का संबंध आपस में हमेशा बना रहता है।

णाणपमाणंआदा ण हवदिजस्सेहतस्स सो आदा।
हीणोवाअधिगोवाणाणादोहवदिधुवमेव ॥ २५ ॥
हीणोजदि सो आदातण्णाणमचेदणं ण जाणादिं।
अधिगोवाणाणादोणाणेणविणाकधंणादि ॥ २६॥ जुगलं

आत्मा कदापि नहिं ज्ञान प्रमाण होता, ऐसा त्वदीय मन में अनुमान ढ़ोता।
तो ज्ञान से वह बड़ा लघु या रहा है, होता सुनिश्चय यही भ्रम जा रहा है।।
है ज्ञान से वह बड़ा यदि आतमा है, तो ज्ञान के बिन कथं वह जानता है।
मानो रहा लघु, अचेतन ज्ञान होगा, तो ज्ञान, चेतन बिना, अनजान होगा।।

अन्वयार्थ- (**इह**) इस जगत में (**जस्स**) जिसके मत में (**आदा**) आत्मा (**णाणपमाणं**) ज्ञान प्रमाण (**ण हवदि**) नहीं है, (**तस्स**) उसके मत में (**सो आदा**) वह आत्मा (**धुवमेव**) अवश्य (**णाणादोहीणोवा**) ज्ञान से हीन (**अधिगोवाहवदि**) अथवा अधिक होना चाहिए।
(**जदि**) यदि (**सो आदा**) वह आत्मा (**हीणो**) ज्ञान से हीन हो (**तत्**) तो वह (**णाणं**) ज्ञान (**अचेदणं**) अचेतन होने से (**ण जाणादि**) नहीं जानेगा,(**णाणादोअधिगो**) और यदि ज्ञान से अधिक हो तो (**णाणेणविणा**) ज्ञान के बिना (**कधंणादि**) कैसे जानेगा?

देखो ! इतने बड़े बड़े ग्रंथों में भी सिर्फ ज्ञान की चर्चा है और कुछ नहीं है। समझ आ रहा है न? दिमाग अपने आप कही ओर से हट कर के अपने आप ज्ञान आत्मा में क्यों नहीं जुड़ेगा? जब इतनी ज्ञान की चर्चा आप सुनोगे, पढ़ोगे, चिंतन करोगे तो आपके मन में भी, आदाणाणपमाणं। बस यही होगा। अब यहाँ कहते हैं, देखो कुछ ऐसे भी लोग हैं जो ऐसा नहीं मानते कि आदाणाणपमाणं।

आत्मा ज्ञान प्रमाण होता है, ऐसा कोई जरूरी है नहीं। ऐसे भी लोग हैं दुनिया में। तो उनके लिए यहाँ उत्तर दे रहे हैं -**णाणपमाणंआदा ण हुवदि**यानि जिसके लिए आत्मा ज्ञान प्रमाण नहीं है, जो ये मानने वाला है कि आत्मा ज्ञान प्रमाण नहीं होता, उसके लिए आत्मा फिर कैसा होगा? **हीणोजदि सो आदा**यानि कम होगा और अधिक होगा। अगर आत्मा ज्ञान के बराबर नहीं है तो फिर क्या होगा? आत्मा कम होगा अथवा अधिक होगा। किस से कम अधिक होगा? **णाणादोहवदि**ज्ञान से। फिर आत्मा ज्ञान से या तो कम हो गया या ज्ञान से अधिक हो गया। ज्ञान बराबर नहीं रहा तो क्या हो गया? आत्मा ज्ञान से या तो कम हो गया या ज्ञान से

अधिक हो गया। जैसे आप सफेद कपड़ा पहने हो और हमने कहा कि आपके कपड़े की सफेदी, कपड़े के बराबर नहीं है। इसका मतलब क्या हो गया? वह कपड़ा या तो सफेदी से कम है या सफेदी से ज्यादा है। फिर क्या होगा?

हीणोजदि सो आदाअगरवह आत्मा हीन हो गया तो क्या होगा? **तण्णाणमचेदणं**। अगर आत्मा ज्ञान से हीन हो गया तो वह ज्ञान कैसा हो गया? अचेतन हो गया। क्योंकि आत्मा ज्ञान से कम हो गया तो ज्ञान ने आत्मा को छोड़ दिया। तो आत्मा जब ज्ञान से कम हो गया तो वह ज्ञान जो रहा बिना आत्मा के रहा। पर आत्मा चैतन्य है तो ज्ञान कैसा रह गया? अचेतन हो गया। ये दोष आ जाएगा।**अधिगोवाणाणादो**। और अगर वह अधिक हो जाता है तो क्या होगा? ज्ञान से यदि वह आत्मा अधिक हो गया**णाणेणविणाकधंणादि**। अगर आत्मा ज्ञान से अधिक हो गया, ज्ञान के बराबर नहीं है तो आत्मा तो छूट गया और ज्ञान से वह अधिक हो रहा है। आत्मा ज्ञान से भी और बड़े प्रमाण वाला है तो क्या हो गया? वह आत्मा फिर ज्ञान के बिना जानेगा कैसे जो अधिक हो गया है? ज्ञान से जो अधिक हो गया, वह आत्मा फिर किसी भी पदार्थ को ज्ञान के बिना कैसे जानेगा? तो जब आत्मा ज्ञान से कम हो गया तो ज्ञान अचेतन हो गया और जब आत्मा ज्ञान से अधिक हो गया तो आत्मा ज्ञान से शून्य हो गया। और ऐसा होता नहीं है क्योंकि यह बात अनुभव विरुद्ध है, प्रत्यक्ष विरुद्ध है। प्रत्यक्ष प्रमाण से ये अनुभव विरुद्ध बात कहलाएगी। इसको क्या बोलते हैं? प्रत्यक्ष प्रमाण।

ये तो आत्मा स्वयं समझ सकता है न कि आत्मा जहाँ जहाँ पर है वहाँ वहाँ पर हमें ज्ञान का अनुभव होता है। उससे कम होने पर तो फिर ज्ञान अचेतन हो जाएगा। तो क्या करेगा फिर वो आत्मा? और अचेतन ज्ञान किसको जानेगा? और अगर अधिक हो गया तो फिर आत्मा बिना ज्ञान के कैसे जानेगा? इसीलिए हमने आपसे कहा, यह कम और अधिक की बात इसलिए नहीं हो सकती क्योंकि आत्मा का और ज्ञान का कैसा संबंध है? तादात्म संबंध।तादात्म संबंध में ऐसा नहीं हो सकता कि आप अपने कपड़े को कहीं इतना खींच दो कि वो सफेदी तो अलग रहें और कपड़ा अलग रहे। अग्नि को तो बढ़ा दो और उषणता अलग हो जाए, अग्नि अलग हो जाए।ऐसा नहीं हो सकता है न। ये तादात्म संबंध वाले पदार्थों के साथ में उनके गुण कभी भी द्रव्य से हीनाधिक नहीं होते। गुण कभी भी द्रव्य को छोड़ते नहीं। और जितना द्रव्य होता है, उतने ही प्रमाण गुण कहलाते हैं।गुण कैसे होते हैं? द्रव्य के आश्रय से रहने वाले होते हैं। द्रव्य जितने है उतने ही गुण होते हैं और द्रव्य से न गुण कम होते हैं और न अधिक होते हैं। द्रव्य प्रमाण ही गुण हमेशा रहते हैं। ये दोष कब आ जाते हैं? जो लोग आत्मा को ज्ञान से कम और ज्यादा मानते हैं उसी के लिये नीचे पद्यानुवाद भी पढ़ते हैं

है ज्ञान से वह बड़ा यदि आतमा है, तो ज्ञान के बिन कथं वह जानता है।
मानो रहा लघु, अचेतन ज्ञान होगा, तो ज्ञान, चेतन बिना, अनजान होगा।।

आत्मा कदापि नहिं ज्ञान प्रमाण होता, ऐसा त्वदीय मन में अनुमान ढ़ोता।
तो ज्ञान से वह बड़ा लघु या रहा है, होता सुनिश्चय यही भ्रम जा रहा है।।

आत्मा का चैतन्य स्वभाव और ज्ञान स्वभाव सभी उस आत्मा के साथ में मिले हुए हैं। आत्मा का अगर कोई भी स्वभाव हम एक अलग कर देंगे तो वह निष्स्वभाव वस्तु हो जाएगी और निष्स्वभाव वस्तु किसी भी प्रमाण का विषय नहीं बनती है। इसलिए वह न हम प्रत्यक्ष प्रमाण से जान पाएँगे, न हम उसको अनुमान प्रमाण से सिद्ध कर पाएँगे और ऐसी वस्तु का कोई भी ज्ञान नहीं होता। वह वस्तु भी अवस्तु कहलाती है।यानि वह पदार्थ ऐसा होता ही नहीं है। कोई आपसे कहे कि ज्ञान तो हो और आत्मा न हो। मान लोगे? कोई कहे कि यहां ज्ञान तो है लेकिन आत्मा नहीं है या कोई कहे यहाँ पर आत्मा छोटी है और ज्ञान बहुत बड़ा है।ऐसा भी नहीं हो सकता है। ये अपने आप में प्रमाण से विरुद्ध जाने वाली बातें हैं। इसलिए प्रमाण तो यही कहता है कि आत्मा और ज्ञान का तादात्म में संबंध होने से आत्मा ज्ञान प्रमाण है।

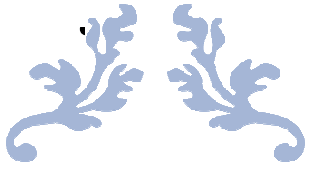

खंड 2—महत्वपूर्ण बिंदु

Compiled by Team Arham

मंगलाचरण (गाथा००१-००२)

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदंधोदघादिकम्ममलं।।
पणमामिवड्ढमाणंतित्थंधम्मस्सकत्तारं ॥ १॥

अन्वयार्थ -(**एस**) यह में (**सुरासुरमणुसिंदवंदिदं**) जो सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों और नरेन्द्रों से वदित है तथा जिन्होंने (**धोदघादिकम्ममलं**) घातिकर्म मल को धो डाला है, ऐसे (**तित्थं**) तीर्थरूप और (**धम्मस्सकत्तारं**) धर्म के कर्ता (**वड्ढमाणं**) श्री वर्धमानस्वामी को (**पणमामि**) नमस्कार करता हूँ।

1. आचार्य कुन्दकुन्द ने मंगलाचरण में वर्धमान भगवान को अरिहंत रूप में नमस्कार किया है (हालांकि भगवान उनके समय तक सिद्धावस्था को प्राप्त कर चुके थे)
2. वर्धमान भगवान का स्वरूप
    a. घाति कर्म (दर्शनवरणीय, ज्ञानावरणीय, मोहनीय एवं अंतराय) नष्ट कर दिए हैं
    b. तीर्थ रूप हैं - यह भगवान महावीर का ही तीर्थ चल रहा है
    c. धर्म के कर्ता हैं
    d. सुर, असुर, मनुष्यों के इंद्रों से वन्दित हैं
3. भगवान धर्म के कर्ता कैसे हुए? नय की अपेक्षा से समझते हैं:
    a. कर्ता होने के लिए कर्तापन का भाव होना होगा (करने का भाव)
    b. जहाँ कर्तापन होता है वहाँ भोक्तापन भी होगा और स्वामित्व भी
    c. समयसार -**जंकुणदिभावमादाकत्ता सो होदितस्सभावस्स**निश्चय नय
        i. "आत्मा जो भाव करता है वह उसी भाव का करता होता है।" [समयसार गाथा २४] परन्तु अरिहंत भगवान तो किसी भी भाव को नहीं कर रहे अतः वो किसी भी भाव के कर्ता नहीं हो सकते
        ii. वोधर्ममय हो गए हैं परन्तु अरिहन्त अवस्था में किसी धर्म को नहीं धारण कर रहे और न ही भाव कर रहे। यहाँ धर्म का तात्पर्य उत्तम क्षमादि धर्म, अहिंसा आदि धर्म, चारित्र आदि धर्म, वस्तु स्वरूप आदि धर्म लगा सकते हैं।
        iii. कर्ता होने के लिए कर्तापन का भाव होना होगा, परन्तु अरिहंत भगवान तो कोई भी भाव नहीं कर रहे अतः कर्ता नहीं हैं
    d. द्रव्य संग्रह -**पुग्गलकम्मादीणं, कत्ताव्यवहारदोदुणिच्चयदो।चेदणकम्माणादा, सुद्धण्यासुद्धभावाणं**
        i. अशुद्ध निश्चय नय

1. राग द्वेष आदि भावों के कर्ता नहीं हैं

ii. शुद्ध निश्चय नय

1. वह तो मात्र शुद्ध रूप परिणमन कर रहे हैं - शुद्ध भाव के कर्ता हैं

iii. व्यवहार नय

1. पुद्गल आदि कर्मों के वह कर्ता नहीं हैं
2. चूँकि वे पर को उपदेश देते हैं, इस अपेक्षा से उनमें कर्तापन होता है (पर की वजह से व्यवहार का आलम्बन)
    a. सातावेदनीय कर्मों के वोभोक्ता और कर्ता होते हैं
    b. तीर्थंकर नाम कर्म के भोक्ता हैं (समवशरण, अष्ट प्रातिहार्य, अष्ट मंगल आदि की उपस्थिति)
3. धर्म का उपदेश देते हैं, अतः धर्म के कर्ता कहलाते हैं (पर अपेक्षा से, स्वयं के लिए वे धर्म के कर्ता भी नहीं हैं)

4. **भ्रान्ति नय / एकांत नय**
    a. जो कहते हैं कि कर्तापन तो आत्मा में होता ही नहीं है उन्हें थोड़ा समझना है कि कर्तापन तो होता है लेकिन वह अलग अलगनयों के माध्यम से घटित होता है और वह कर्तापन तो भगवान अरिहंत देव का भी अगर आचार्य कुन्दकुन्द देव स्वीकार कर रहे हैं।
    b. चौथे गुणस्थान में अविरत सम्यग्दृष्टि जीव का भी कर्तापन नहीं होता, नाहींभोक्तापन होता है - यह एक बहुत बड़ी भ्रान्ति है
    c. चारित्रमोहनीय के कारण जीव संयम नहीं ले पाता
5. कर्ता भोक्ता स्वामित्व किसी का गृहस्थ अवस्था में चाहे सम्यग्दृष्टि हो, चाहे मिथ्यादृष्टि हो किसी का नहीं छूटता।
6. हमारे अंदर कर्तापन उतना ही छूटेगा जितना हम कषाय को छोड़ेंगे
7. मुनि महाराज जब शुद्धोपयोग में होंगे तो उन्हें कोई सुख दुःख भोगने में नहीं आएगा

सेसेपुणतित्थयरेससव्वसिद्धेविसुद्धसब्भावे।
समणे य णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे॥ २॥

अन्वयार्थ- (पुण)और (**विसुद्धसब्भावे**) विशुद्ध सत्ता वाले (**सेसेतित्थयरे**) शेष तीर्थंकरों को (**ससव्वसिद्धे**) सर्व सिद्ध भगवन्तों के साथ ही (**य**) और (**णाणदंसणचरित्ततववरियायारे**) ज्ञानाचार, दुर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार तथा वीर्याचार युक्त (**समणे**) श्रमणों को नमस्कार करता हूँ।

1. आचार्य कुन्दकुन्द देव यहाँ पर शेष सभी तीर्थंकरों को, विशुद्ध भावों वाले सभी सिद्धों को और पंचाचार से युक्त सभी श्रमणों नमस्कार करते हैं।
2. सिद्ध विशुद्ध परिणाम वाले होते हैं। उनकी आत्मा बिल्कुल निर्मल, विशुद्ध हो गयी है, कोई कर्म कालिमा नहीं बची। जैसा शुद्ध स्वरूप आत्मा का है वो प्रकट होगया है।
3. श्रमण में आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी आते हैं
4. आचार का मतलब - आत्मा में इनको आचरण करना। आचारों से ही आत्मा को सज्जा, शोभा और श्रृंगार है
5. आचार पांच होते हैं और इन्हें पंचाचार भी कहते हैं :
    a. दर्शनाचार,
    b. ज्ञानाचार,
    c. चारित्रचार,
    d. तपाचार,
    e. वीर्याचार
6. पंचाचार, निश्चय और व्यवहारदोनों रूप होता है
7. जब केवल आत्म स्वरुप में आचरण होने लग जाता है तो वह निश्चय रूप कहलाता है
8. व्यवहार पंचाचार उनके भेद रूप होता है
    a. दर्शनाचार - व्यवहार सम्यग्दर्शन के आठ अंग
    b. ज्ञानचार - सम्यग्ज्ञान के आठ अंग
    c. चारित्रचार - १३ प्रकार के चारित्र या २८ मूल गुण
    d. तपाचार - १२ प्रकार का (छः अंतरंग, छः बहिरंग)
    e. वीर्याचार - अनेक प्रकार के नियमों का पालन करना। अपनी शक्ति को नहीं छिपाते हुए तप करना, यथोक्त समय पर करना।
9. श्वासोच्छ्वास - सहजता के साथ एक सामान्य श्वास लेना और छोड़ना।
10. कायोत्सर्ग - काय का उत्सर्ग करना और उस समय पर अपने आत्मीय गुणों का या जिनेंद्र भगवान के गुणों के स्मरण करना।काय से ममत्व छोड़कर, श्वासोच्छ्वास के माध्यम से, सत्ताईस श्वासोच्छ्वास के माध्यम से नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ा जाता है।
11. बिना उंगली चलाये कायोत्सर्ग में २७ गिनने के कुछ सुझाब
    a. आदिनाथ, अजितनाथ, .. पुष्पदंत भगवान के चरणों में ३ श्वासोच्छ्वास से णमोकार करना
    b. प्रतिमा / भगवान के अंगों पैर ध्यान देना, २ चरण, २ हाथ, अर्हं योग के पांच केंद्र
12. श्रावक उपयोगी ज्ञानाचार

a. जब भी ग्रन्थ पढ़ें - बहुमान के साथ पढ़ें, विनय के साथ पढ़ें
b. शब्द और अर्थ दोनों पढ़ें और उन पर ध्यान दें
c. जब तक ग्रन्थ का स्वाध्याय नहीं हो तब तक किसी चीज का त्याग
d. कपड़ों का, हाथ-पैर की शुद्धि का ध्यान रखो
e. अन्य सामान्य पुस्तकों की तरह ग्रंथों को लेटे हुए, बेड आदि पर नहीं पढ़ना चाहिए
f. शास्त्र पढ़ने से पहले ९ बार णमोकारमन्त्र पढ़ना, मंगलाचरण करना
g. विनय बढ़ेगी, बहुमान बढ़ेगा तो अंदर विशुद्धि बढ़ेगी

13. व्यवहार ज्ञानाचार से ही हमारी निश्चय (जो हमारा आत्मज्ञान है) की गति बनेगी। हमें अपने आत्म स्वरूप में स्थिर होने के लिए या आत्म स्वरूप की भावना करने के लिए भी व्यवहार साधन बनता है।
14. व्यवहार सम्यग्दर्शन के आठ अंग -नि:शंकित, नि:कांक्षित, निर्वि-चिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना

मंगलाचरण (गाथा००२-००५)

तेतेसव्वेसमगंसमगंपत्तेगमेवपत्तेगं।
वंदामि य वट्टंतेअरहंतेमाणुसेखेत्ते ॥ ३ ॥
किच्चाअरहंताणंसिद्धाणंतहणमोगणहराणं।
अज्झाावयवग्गाणंसाहूणंचेवसव्वेसिं ॥ ४॥
तेसिंविसुद्धदंसण-णाणपहाणासमंसमासेज्ज।
उवसंपयामिसम्मंजत्तोणिव्वाणसंपत्ती ॥ ५॥ जुगलं

अन्वयार्थ- (**तेतेसव्वे**) उन उनसबको(**य**) तथा (**माणुसेखेत्ते**) मनुष्य क्षेत्र में विद्यमान (**अरहंते**) अरहन्तों को (**समगंसमगं**) साथ ही साथ समुदाय रूप से और (**पत्तेगमेवपत्तेगं**) प्रत्येक प्रत्येक को व्यक्तिगत (**वंदामि**) नमस्कार करता हूँ।
इस प्रकार (**अरहंताणं**) अरहन्तों को (**सिद्धाणं**) सिद्धों को (**तहगणहराणं**) आचार्यों को (**अज्झाावयवग्गाणं**) उपाध्याय वर्ग को (**चेव**) और (**सव्वेसिंसाहूणं**) सर्व साधुओंको (**णमोकिच्चा**) नमस्कार करके।
(**तेसिं**) उनके (**विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं**) विशुद्ध दर्शन ज्ञान प्रधान आश्रम को (**समासेज्ज**) प्राप्त करके (**सम्मंउपसंपयामि**) मैं साम्य को प्राप्त करता हूँ (**जत्तो**) जिससे (**णिव्वाणसंपत्ती**) निर्वाण की प्राप्ति होती हैं।

1. ढाई द्वीप (जम्बूद्वीप, धातकी खंड द्वीप और आधा पुष्करार्ध द्वीप) को मनुष्य क्षेत्र कहा जाता है और यहाँ वर्त्तमान में भी तीर्थंकर विचरण करते हैं। यह 45 लाख योजन प्रमाण है
2. अरिहंत भगवान कर्मभूमि में होते हैं। इस ढाई द्वीप के उन क्षेत्रों में जहाँ काल का परिवर्तन होता है उन्हें अशाश्वत कर्मभूमि कहते हैं (जैसे भरत क्षेत्र, ऐरावत क्षेत्र आदि)। जिन क्षेत्रों में छः काल का परिवर्तन नहीं होता है और जहाँ हमेशा कर्मभूमि ही चलती रहती है (जैसे विदेह क्षेत्र) उन्हें शाश्वत कर्मभूमि कहते हैं
3. विदेह क्षेत्र में हमेशा ही तीर्थंकर भगवान बने रहते हैं। इनकी संख्या 20 से लेकर 160 तक हो सकती है। भगवान अजितनाथ के समय में सभी 170 कर्मभूमियां (160 विदेह, 5 भरत , 5 ऐरावत) तीर्थंकरों से शोभित थीं
4. **चिंतन:**अगर आचार्य कुन्दकुन्द देव ने सीमन्दर स्वामी के अगर साक्षात दर्शन किये होते तो वे मंगलाचरण में उनको नाम अवश्य लेते। आचार्य कुन्दकुन्द देव ने किसी भी ग्रन्थ में सीमंधर भगवान का कोई नाम नहीं लिया।
5. **भ्रान्ति**: मुनियों को नमोस्तु न बोल के वन्दामि बोलना चाहिए।

6. वंदना- मुनि महाराज के षटावाश्यक में से एक है। कृति पूर्वक की गयी (कृतिकर्म) वंदना में पहले 9 बार णमोकार मंत्र पढ़ते हैं, सामायिकदण्डक, 9 बार णमोकार मंत्र, थोस्सामि दंडक (24 तीर्थंकर स्तुति) और उसके पश्चात सिद्ध भक्ति या आचार्य भक्ति या योगी भक्ति करते हैं।
7. व्यवहार की विधि, जो की नीतिसार आदि शास्त्रों में लिखी है, उसमे मुनि महराज को नमोस्तु, आर्यका माता को वन्दामि, क्षुल्लक एवं ऐलक को इच्छामि, व्रती को वंदना और सामान्य साधर्मी को जय जिनेन्द्र बताया गया है।
8. श्रायस का मार्ग, भक्ति का मार्ग स्वाधीन हैं। भगवान पर भी आधीन नहीं है। चाहे कोई भी समय हो, कोई भी काल हो, कोई भी क्षेत्र हो, कोई भी स्थिति हो, कोई भी परिस्थिति हो; जब आप भगवान की वंदना करेंगे, उसी समय आपको भगवान की वंदना का फल मिल जाएगा (Without any delay)।
9. सिद्ध शिला पर मौजूद एक इंद्री जीव की अपेक्षा यहाँ बैठे बैठे अधिक पवित्रता अपने भावों में आ सकती है। उन जीवों की चेतना में कोई भान नहीं है कि वे कहाँ हैं
10. पंच परमेष्ठी की वंदना नमस्कार करके साम्यभाव प्राप्त करना है जिससे निर्वाण की प्राप्ति होती है।
11. वंदना द्रव्य और भाव रूप होती है। द्वैत और अद्वैत रूप होती है।
12. बिना ध्यान के कभी भी आप भाव नमस्कार और अद्वैत नमस्कार नहीं कर सकते हैं
13. आध्यात्मिक वंदना में हम पंच परमेष्ठी को उनके विशुद्ध दर्शन ज्ञान स्वभाव का आश्रय लेकर नमस्कार करते हैं।
14. **चिंतन:**द्रव्य नमस्कार में धारणा नहीं बनती है, नमस्कार में जब हम किसी भी तरीके का भगवान का ध्यान करें, कहीं पर भी किसी भी रूप में उनकी imagine करें बनती है।
15. साम्यभाव के अलग-अलग अर्थ
    a. **आत्मिक:**जब आत्मा बिलकुल साम्य रूप परिणमन कर जाता है तो फिर उसमें किसी भी प्रकार के कर्म जन्य भावों में उसके अंदर किसी भी तरीके का कोई भी बाधा उत्पन्न नहीं होती
    b. **मानसिक:**मन के समता भाव का अर्थ है अनुकूल और प्रतिकूल (जैसे कोई मारे पीटे)) परिस्थितियों में भी दुर्भाव न लाना और समता रखना
    c. **व्यावहारिक:**सब के प्रति समभाव रखना। किसी को छोटा-बड़ा, अमीर-गरीब, ऊंच-नीच आदि न समझना। किसी भी धर्म की निंदा ना करना
    d. **शाब्दिक:**सम का मतलब होता है - बिलकुल balanced। जो जहाँ है उस रूप में स्थिर रहे। समभाव में द्वेष भी नहीं होगा और उससे आशक्तिattachment और राग का भाव भी नहीं होगा।

16. **भ्रान्ति नय**: सर्व धर्म समभाव का अर्थ है सब धर्मों को एक समान मानना और फिर सब में लिप्त हो जाना - हम तो समभाव में हैं, हम तो यह भी कर रहे हैं और वह भी कर रहे हैं
17. पांचो मंगलाचरण की गाथाओं में किस-किस को नमस्कार किया है
    a. गाथा 1: वर्धमान भगवान - जिन्होंने घाति कर्म मल धो दिया है, तीर्थ रूप हैं, धर्म के कर्त्ता हैं और सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों और नरेन्द्रों से वन्दित हैं
    b. गाथा 2: शेष तीर्थंकरों को
    c. गाथा 2: विशुद्ध सत्तावाले सभी सिद्ध
    d. गाथा 2: पंचाचार से शोभित श्रमण
    e. गाथा 3: वर्तमान समय में ढाई द्वीप में मौजूद सभी अरिहंत भगवान
    f. गाथा 4: अरिहंत, सिद्ध, गणधर (आचार्य), उपाध्याय और सभी साधु
    g. गाथा 5: उनके (पांच परमेष्ठी) के विशुद्ध दर्शन-ज्ञान प्रधान आश्रम को प्राप्त करके मैं साम्य को प्राप्त करूँ
    h. गाथा 5: इसी साम्य से निर्वाण की संप्राप्ति / प्राप्ति होती है

निर्वाणकीप्राप्तिकासाधन (गाथा ००६)

संपज्जदिणिव्वाणंदेवासुरमणुयरायविहवेहिं।
जीवस्सचरित्तादोदंसणणाणप्पहाणादो ॥ ६॥

अन्वयार्थ- (**जीवस्स**) जीव को (**दंसणणाणप्पहाणादो**) दर्शन ज्ञान प्रधान (**चरित्तादो**) चारित्र से (**देवासुरमणुयरायविहवेहिं**) देवेन्द्र, असुरेन्द्र और नरेन्द्र के वैभवों के साथ (**णिव्वाण**) निर्वाण (**संपज्जदि**) प्राप्त होता है।

1. जीव को दर्शन ज्ञान की प्रधानता वाले चारित्त से देव, असुर और मनुष्य के राजाओं के वैभवों के साथ निर्वाण की प्राप्ति होती है।
2. साम्यभाव ही जीव का चारित्र होता है क्योंकि साम्यभाव जीव की चारित्र गुण की ही परिणति है।
3. जब कोई जीव निर्वाण की प्राप्ति करता है तो उससे पहले उसे बीच में ये वैभव भी मिलते हैं और फिर अंत में उसे निर्वाण की प्राप्ति होती हैं
4. गृहस्थ के सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हो सकता है परन्तु सम्यग्चारित्र नहीं हो सकता है।
5. सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र, सराग (राग सहित) और वीतराग (राग का पूर्णतः अभाव)
6. पंचम काल में मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, वीतरागचारित्र की मुख्यता नहीं है अतः यह गाथा यहाँ उपयुक्त है। चतुर्थ काल में एक ही भव से मोक्ष जाना संभव है - वहाँ वैभव के बाद निर्वाण मिलना नियामक नहीं है
7. गुणस्थान और राग दशा
    a. दसवें गुणस्थान तक शूक्ष्म राग का सद्भाव रहता है (सराग दशा)
    b. ग्यारहवें गुणस्थान (उपशांत मोह) में भी राग दशा रहती है नष्ट नहीं होती
    c. बारहवें गुणस्थान (क्षीण मोह) में मोह राग सब नष्ट हो जाता है - वस्तुतः इसको ही वीतरागचारित्र कहते हैं
    d. छठवें सातवें गुणस्थान को bypass करके सीधे बारहवें गुणस्थान पर पहुँचाना संभव नहीं
8. वर्तमान में मुनि महाराजों का गुणस्थान छठवां सातवां ही होता है
9. छियासठ सागर काल तक क्षयोपशमसम्यग्दर्शन आत्मा में बना रह रह सकता है। इसके लिए जीव बीच बीच में सरागचारित्र को धारण करता है
10. क्षायकसम्यग्दर्शन का काल तैंतीस सागर होता है

11. सर्वार्थसिद्धि वाले देवों के लिए तो नियमकता है कि उसी भव से मोक्ष जाएगा। दो पांडव सर्वाथसिद्धि में देव बन गए थे
12. सरागचारित्र का फल संसार है, निर्वाण नहीं है
    a. वह संसार तो है लेकिन अनंत संसार रूप उसका फल नही हैं। उसका फल सीमित संसार रूप है।
13. अध्यात्म ग्रंथ हमेशा गुरु के मुख से ही पढ़ना चाहिए।
14. **भ्रान्ति:**सराग दशा तो बंध की दशा है, सरागचारित्र तो हेय (छोड़ने योग्य) है। वीतरागचारित्रउपादेय (ग्रहण करने योग्य) है।
    a. आपके पास भी सरागचारित्र कहाँ है जो आप उसे छोड़ोगे?
    b. वह ग्रहण करने योग्य नहीं ऐसा नहीं है
    c. आचार्य अमृतचंद्र जी महाराज ने भी बताया हैं -**करमापतितं**। अर्थात वीतराग चरित्र सरागचारित्र के बाद क्रम से आता है
    d. जिस तरह ऊपर की सीढ़ी पर चढ़ने के लिए नीचे की सीढ़ी छोड़नी पड़ती है उसी तरह सरागचारित्र भी वीतरागचारित्र की अपेक्षा छोड़ने योग्य है
    e. लेकिन जिस तरह नीचे की सीढ़ी चढ़े बिना ऊपर आना संभव नहीं उसी तरह वीतरागचारित्र के लिए सरागचारित्र आवश्यक है
15. वीतरागचारित्र जब हो जाएगा तो अंतर मुहूर्त से ज्यादा इस संसार में टिकेगा नहीं
16. सरागचारित्र में व्रतों को धारण करते हैं - मुनि के महाव्रत या श्रावकों के अणुव्रत
17. मोक्ष मार्ग दो प्रकार का
    a. व्यवहार मोक्ष मार्ग - सराग रूप (सराग सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र)
    b. निश्चय मोक्ष मार्ग - वीतराग रूप(जो व्यवहार मोक्ष मार्गवीररागता की ओर ढलने लगे)
18. मोक्ष का वास्तविक कारण निश्चय मोक्ष मार्ग है और उसका वास्तविक कारण व्ययहार मोक्ष मार्ग है अतः व्यवहार मोक्ष मार्ग परंपरा से मोक्ष का कारण है
19. **स्याद्वाद शैली में**:सरागचारित्रकथंचित् संसार का भी कारण है और सरागचारित्रकथंचित् मोक्ष का भी कारण है
    a. अगर हम केवल सरागचारित्र में ही रह गए तो नियम से हमको देवादिगतियों की प्राप्ति होगी, इसलिए वोकथंचित् संसार का कारण है।
    b. क्योंकि इसके बिना कभी भी वीतरागचारित्र की प्राप्ति होती नहीं इसलिए यह वीतरागचारित्र के लिए कारण है, इसलिए ये कथंचित् मोक्ष का भी कारण है।

20. जो एकांतवाद को पकड़ेगा, वो उलझेगा और उलझायेगा। यह जैन दर्शन इतना बड़ा है कि नयों के बिना, स्याद्वाद के बिना हम क,ख ,गभी नहीं समझ सकते हैं। वही चीज सही भी है और वही चीज गलत भी है। सही किस अभिप्राय में हैं, गलत किस अभिप्राय में हैं

21. कोई व्यक्ति अगर सम्यग्चारित्र का पालन करते हुए अगर कभी निदान कर लेता है (किसी के वैभव को देख कर इच्छा करना कि हमें ऐसा मिले) तो वह असुर आदि देव बनता है।

22. **चिंतन:**अब आप कहो कि महाराज पहले कुछ छोड़ा, अब उससे ज्यादा मिलेगा। यह कौन सा बिजनेस है? देखो, आपने जो छोड़ा, वो इस भावना से तो नहीं छोड़ा कि बाद में ज्यादा मिलेगा। अगर इस भावना से छोड़ा जाएगा तो कभी भी वह सरागचारित्र भी नहीं कहला पायेगा। यह भावना नहीं है लेकिन यह उसके बीच में आने वाला एक फल है, जिस फल को हमें प्राप्त करना है। यह सिद्धांत है।

23. वीतरागचारित्र की शुरुआत सातवें गुणस्थान (ध्यान अवस्था) से होती है और पूर्णता बारहवें गुणस्थान में होती है

24. सरागचारित्र से जो वैभव मिलते हैं वे इन्द्रिय सुख देते हैं अतीन्द्रिय सुख नहीं।

धर्मकास्वरुप (गाथा००७)

चारित्तंखलुधम्मोधम्मो जो सो समोत्तिणिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणोपरिणामोअप्पणोधसमो॥ ७॥

अन्वयार्थ-(**चारित्तं**) चारित्र (**खलु**) वास्तव में (**धम्मो**) धर्म है (**धम्मो जो**) जो धर्म है। (**सो समो**) वह साम्य है (**त्तिणिद्दिट्ठो**) ऐसा शास्त्रों में कहा है। (**अधसमो**) साम्य (**मोहक्खोहविहीणो**) मोह क्षोभ रहित (**अप्पणोपरिणामो**) आत्मा का परिणाम भाव है।

1. धर्म क्या है?
    a. पांचवीं गाथा में साम्यभाव को निर्वाण का कारण बताया था, छठवीं गाथा में चारित्र को निर्वाण का कारण बताया गया था।
    b. इस गाथा में आचार्य कुन्दकुन्द देव एक बहुत बड़ी उद्घोषणा करते हैं कि "चारित्र ही वास्तव में धर्म होता है"
    c. आचार्य कुन्दकुन्द देव विरचित दर्शनपाहुड़ में लिखा है -**दंसणमूलोधम्मो**दर्शन धर्म का मूल है।
    d. आत्मा जिन गुणों को धारण करता है, उस गुण को धर्म कहते हैं। सम्यग्दर्शन और चारित्र आत्मा के गुण हैं और इनको स्वभावभूत धारण कर लेना या प्राप्त कर लेना ही धर्म है
    e. दान इत्यादि करना औपचारिक रूप से धर्म हो सकता है। जो शरीर से किया जाए, उसका नाम धर्म हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है।
    f. वस्तु का स्वभाव धर्म है और जो उसका विभाव है, वह उसका अधर्म है।
2. सम्यग्दर्शन बीज रूप/ मूल रूप/ जड़ रूप धर्म है, सम्यग्चारित्र फल रूप / चूल रूप धर्म है।
3. भले ही मूल दिखाई न दें और चूल दिखाई दे परन्तु मूल के बिना चूल नहीं होता इसी तरह सम्यग्दर्शन दिखाई नहीं देता परन्तु इसका आचरण (सराग / वीतराग) चारित्र रूप में होता है
4. **चिंतन:**इस जीवात्मा के साथ जो कर्मों का संबंध है और उसके कारण जीव का जो वैभाविकपरिणमन हो रहा है, उसके कारण से इसका स्वभाव दबा हुआ भी है और उल्टा चल रहा है
    a. चारित्र का वैभाविकपरिणमन क्या है? हम चारित्रवान नहीं है - न बाहर से और न भीतर से। चारित्र का उल्टा भाव आएगा तो - हम कषायवान, असंयमी हो जायेंगे।
5. चारित्र का मतलब अपने ज्ञाता दृष्टा स्वभाव में रमण करना और उसी में रहना।
6. धर्मात्मा कौन?

a. **अध्यात्म की दृष्टि से**: अगर आप अपने ज्ञाता दृष्टा स्वभाव में रमण करते हो और स्थिर रहते हो
b. **व्यवहार की दृष्टि से:**अगर आप मंदिर में प्रवचन सुनते हो, शास्त्र पढते हो आदि
c. चूँकि हम अपने स्वभाव में रुक नहीं पाते इसलिए उस स्वभाव तक जाने वाली सहायक वस्तुएं भी हमारे लिए धर्म कहने में आ जाती हैं जैसे जिन दर्शन, प्रवचन सुनना आदि। अतः पूजा, स्वाध्याय आदि क्रियाओं में हमारी दृष्टि निज स्वभाव की प्राप्ति होनी चाहिए
d. अध्यात्म का मतलब है जो अपनी आत्मा से संबंधित हो। हम दूसरे की भी आराधना इस भाव से करते हैं कि उनके जैसा विशुद्ध दर्शन ज्ञान स्वभाव हमें भी प्राप्त हो।
e. बिना अध्यात्म दृष्टि के की गयी क्रियाएँ से मात्र पुण्य बंध होगा और मन में शांति मिलेगी; इनसे आत्मा के वास्तविक दर्शन और चारित्र धर्म प्रकट नहीं होगा

7. आचार्य अमृतचंद्र जी महाराज की समयसार टीका में कहा है - जानना और करना ये दोनों बिल्कुल विपरीत हैं। जो करता है, वह कुछ भी जानता नहीं है और जो जानता है, वह कुछ करता नहीं है।
8. **प्रतिक्रमण:**पूर्व में किए गए पापों की आलोचना करना, उनका प्रायश्चित।
9. **प्रत्याख्यान:**हम भविष्य में ऐसा नहीं करेंगे। इससंकल्प को लेने का नाम वर्तमान में प्रत्याख्यान कहलाता है।
10. चारित्र धर्म है, धर्म साम्यभाव है या साम्यभाव धर्म है और धर्म चारित्र है
11. मोह और क्षोभ से रहित आत्मा का परिणाम / भाव ही साम्य है
12. **मोह:**अपने स्वभाव के अलावा अन्य वस्तु से मोहित होने का नाम ही मोह है (पर को अपना मानना, पर में अपनेपन को देखना)
13. **क्षोभ:**पर वस्तु को अपना मान जब हमने उसे अपना माना है तो उसके बाद में उससे कुछ न कुछ राग या द्वेष होगा। यह राग और द्वेष ही क्षोभ है।
14. क्षोभ राग से ही प्रारम्भ हो जाता है। राग के बिना द्वेष नहीं होता।
15. मोक्ष मार्ग में आपको एक तरह से निर्दयी बनना पड़ता है। आप इतने निर्दयी बन जाओ कि सामने वाले ने आपसे बोलना बंद कर दिया तो आप उसकी चिंता करना छोड़ दो। द्वेष या राग मेरा स्वभाव नहीं है। मैं ज्ञायक स्वभावी हूँ।
16. अपने भावों को पकड़कर और उसको मरोड़ कर अपने स्वभाव में लाने की जिसमें क्षमता होती है, वही अध्यात्मिक कहलाता है।
17. जहां मोहभाव होगा, वहां पर चारित्र का अंश भी नहीं होगा।
18. **"मोहक्खोहविहीणो"**मोह अर्थात दर्शनमोह और क्षोभ अर्थात चारित्र मोह
19. मोहनीय कर्म दो प्रकार का होता है

a. दर्शन मोहनीय कर पर में बुद्धि लगाए रहता है। जो भगवान नहीं है, उन्हें भगवान मानना। जो गुरु नहीं है, उन्हें गुरु मानना। जो शास्त्र नहीं हैं, उन्हें शास्त्र मानना।
b. चारित्रमोहनीय - आत्मा के अंदर पड़ी कषायों से सम्बंधितरागऔर द्वेष की परिणति

20. जब आत्मा में मोह और क्षोभ अभाव होगा, तभी साम्य परिणति का अनुभव होगा

21. पंचम काल में चूल रूप चारित्र संभव नहीं है।सम्यग्दर्शन की नींव, व्रत रूपीबाउंड्री के बीच में, भावनाओं की छत के नीचे बैठकर आप निश्चिंत हो जाओगे तो उस धर्म ध्यान से ही आपके अंदर इतनी योग्यता आ जाएगी कि शिखर बनाने योग्य जो शुक्ल ध्यान है, वह एकदिन आपको अवश्य प्राप्त हो जाएगा।

22. सरागचारित्रवीतरागचारित्र का सहयोगी तो बनता है, किन्तु वह सरागचारित्रवीतराग चरित्र की तरह निर्मल नहीं है।

23. जब आर्त ध्यान में थोड़ी तीव्रता आ जाती है, वह रौद्र ध्यान हो जाता है

धर्मात्माकाअर्थ (गाथा००८-००९)

परिणमदिजेणदव्वंतक्कालेतम्मएत्तिपण्णत्तं।
तम्हाधम्मपरिणदोआदाधम्मोमुणेदव्वो ॥ ८॥

अन्वयार्थ-(**दव्वं**) द्रव्य जिस समय (**जेण**) जिस भाव रूप से (**परिणमदि**) परिणमन करता है (**तक्काले**) उस समय (**तम्मए**) उस मय है (**तो**) ऐसा (**पण्णत्तं**) जिनेन्द्र देव ने कहा है (**तम्हा**) इसलिये (**धम्मपरिणदोआदा**) धर्म परिणत आत्मा को (**धम्मोमुणेदव्वो**) धर्म समझना चाहिए।

1. भाव पाँच प्रकार के होते हैं - औदयिक भाव, औपशमिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, क्षायिक भाव, पारिणामिक भाव
2. द्रव्य जिस समय पर, जिस पर्याय के साथ परिणमन करता है, वह उस समय पर उस रूप हो जाता है यानि उसी मय (तन्मय) हो जाता है। वह पर्यायमय हो जाता है। वह जिस भाव के साथ परिणमन करेगा, वह उस भावमय हो जाता है। जैसे जलेबी चाशनीमय हो जाती है।
3. जीव को अनुभूत तो वही होगा जो उसकी पर्याय है जैसे मनुष्य तो मनुष्य की अनुभूत होगी और पशु को पशु की; इसे द्रव्य का पर्याय के साथ में एकमेक / तन्मय हो जाना कहते हैं
4. मनुष्य आदि पर्याय आत्मा की वैभाविक द्रव्य व्यंजन पर्याय होती हैं
5. यह आत्मा जब जिस भाव से परिणमन करता है, वह उस भावमय हो जाता है।
    a. भाव और भाव वाला, ये दोनों एक कैसे हो गए? जिस प्रकार स्फटिक मणि अपने पास में रखी रंगीन वस्तु के रंग की दिखने लग जाती है; वह उसी रंग की हो जाती है
    b. आत्मिक गुणों जैसे ज्ञान गुण में परिणमन करने वाली आत्मा उसी गुणमय हो जाती है
    c. जैसे ज्ञान शून्य आत्मा, दुःखीआत्मा, रागीआत्मा
    d. आत्मा मोहादिजन्यरागादि भाव से हमेशा पूर्ण परिणमन करता है - अगर द्वेष हुआ तो पूरी आत्मा द्वेषमयपरिणमन करता है नाकि किसी प्रदेश में राग और किसी में द्वेष
    e. जब आत्मा धर्म रूप परिणमन करता है तो उस आत्मा को धर्मात्मा कहा जाता है
    f. जो आत्मा चारित्र रूप,साम्य भावरूप धर्म में ढल जाता है वह आत्मा ही धर्म है। अर्थात वह आत्मा और धर्म दोनों अलग-अलग नहीं है।
6. धर्म की अपेक्षा से कहना चाहें तो वीतरागचारित्र को हम निश्चय धर्म कह सकते हैं और सरागचारित्र को हम व्यवहार धर्म कह सकते हैं।
7. मुख्य और गौण की अपेक्षा

a. एक सिक्का है उसके दो पहलू हैं। हमने उसे उछाला और उछालने के बाद में जो सामने आ गया वह मुख्य हो गया और जो उसके पीछे है वह गौण हो गया।
b. जब आत्मा व्यवहार धर्म में परिणमन करता है तो उसमें व्यवहार की मुख्यता रहती है निश्चय उसमें गौण हो जाता है

8. जिसके पास व्यवहार चारित्र होगा(सरागचारित्र, व्रत, संयम, तप आदि) वही निश्चय चारित्र रूप परिणमन करेगा और जब वह उस ध्यान अवस्था से (निश्चय ध्यान चारित्र) से हटे तो फिर उसका परिणमन व्यवहार चारित्र रूप जाता है।
9. चारित्र के अभाव में श्रावक भी धर्मात्मा (धर्ममय) बन सकता है अगर उसकी आत्मा सम्यग्दर्शन रूप परिणमनकरे। चारित्र के अलावा दर्शन भी आत्मा का धर्म है।
10. सम्यग्दर्शन धारण कैसे करें?
    a. आत्म तत्त्व का श्रद्धान होना, सभी को अपने समान शरीर से भिन्न आत्मा मानना, किसी ब्रह्मा आदि की उत्पत्ति न मानकर अनादि काल से इसका अस्तित्व मानना
    b. परमार्थ भूत देव शास्त्र गुरु का श्रद्धान होगा
    c. जीवादि सात तत्वों का उसके लिए सही- सही श्रद्धान होगा

जीवोपरिणमदिजदासुहेणअसुहेणवासुहोअसुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धोहवदिहिपरिणामसब्भावो ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ-(**जीवो**) जीव (**परिणामसब्भावो**) परिणाम स्वाभावी होने से (**जदा**) जब (**सुहेणअसुहेणवा**) शुभ या अशुभ भाव रूप (**परिणमदि**) परिणाम करता है (**सुहोअसुहो**) तब शुभ या अशुभ स्वयं ही होता है (**सुद्धेण**) और जब शुद्ध भाव रूप परिणमित होता है (**तदा सुद्धोभवदिहि**) तब शुद्ध होता है।

1. **परिणाम**का अर्थ है - आत्मा का भाव और**परिणमन**का अर्थ है- आत्मा अपने अंदर जिस form में change ला रहा है जिस पर्याय के साथ अपने अंदर परिवर्तन ला रहा है उसको परिणमन कहा जाता है।
2. ये परिणाम स्वभाव वाला ही आत्मा होता है। परिणाम माने परिणमन (changes) स्वभाव वाला।
3. आत्मा का परिणमन तीन प्रकार से होता है
    a. शुभ भावों के साथ शुभ रूप
    b. अशुभ भावों के साथ अशुभ रूप
    c. शुद्ध भाव के साथ शुद्ध रूप
4. गुणस्थान का मतलब है अपने भावों का आकलन करना / नापना। भावों को नापने का थर्मामीटर

5. जैसे -जैसे कषायों की कमी होती चली जाती है वैसी-वैसी विशुद्धि बढ़ती चली जाती है। विशुद्धि बढ़ेंगी तो गुणस्थान बढ़ेंगे और गुणस्थान बढ़ेंगे तो आपका इस संसार में जो भाव है वह ऊपर ऊपर का होता चला जाएगा।
6. १४ गुणस्थानों के नाम
    a. अशुभ भाव -पहला मिथ्यात्व, दूसरा सासादन, तीसरा मिश्र
    b. शुभ भाव - चौथा अविरत सम्यग्दृष्टि, पांचवां संयमासंयम, छठवां प्रमत्त संयत, सातवां अप्रमत्त संयत (कुछअंश)
    c. शुद्ध भाव - सातवां अप्रमत्त संयत (कुछ अंश), आठवांअपूर्वकरण, नौवां अनिवृत्तिकरण, दसवां सूक्ष्मसाम्पराय, ग्यारहवां उपशांतमोह, बारहवां क्षीणमोह
    d. शुद्धभाव के फलस्वरूप केवलज्ञान स्वरूप - तेरहवां सयोग केवली, चौदहवां अयोगकेवली
7. आत्मा का जो परिणाम है उसी को उपयोग कहा जाता है
    a. अशुभोपयोग - एक से तीन (घटता हुआ)
    b. शुभोपयोग -चार से सात (बढता हुआ)
    c. शुद्धोपयोग -सात से बारह (बढ़ता हुआ)
    d. शुद्धोपयोग का फल - तेरह और चौदह (केवलज्ञानी)
8. 'तारतम्य' - तारतम से ही तारतम्य बना है। मूल शब्द तरतम।
    a. जैसे first degree, second degree (comparitive) और third degree (superlative) degree होती हैं - उच्च, उच्च**तर**और उच्च**तम**
    b. "तर" चीजों की तुलना में आता है, "तम" best के रूप में आता है
    c. तरतम -**तर**और**तम**प्रत्यय से मिलकर बना है
    d. चौथे गुणस्थान का उपयोग शुभ है ,पांचवें गुणस्थान का शुभतरऔर छटवेंगुणस्थान का शुभतम हो गया और सातवे गुण स्थान का उपयोग ओर अधिक शुभ होने से शुभतम हीकहलाएगा
    e. पहले स्थान का अशुभ योग अशुभतम कहलायेगा क्योंकि वह तीव्र है अर्थात अशुभ योग घटता हुआ होगा तो वह अशुभतम कह लाएगा फिर दूसरे गुणस्थान का थोड़ा कम हो गया तो अशुभतर और तीसरे गुणस्थान का केवल अशुभ उपयोग कहलायेगा
9. अशुभ उपयोगके गुणस्थान,शुभ उपयोग के गुणस्थान और शुद्ध उपयोग के गुणस्थान ये अलग अलग विभाजित हो जाते हैं
10. **भ्रान्ति:** 'तारतम्य' अर्थ मुख्यता और गौणता की विवक्षा से लगाकर यह तर्क आता है कि जहाँ शुभोपयोग है वहाँ शुद्धोपयोग भी है गौणता से। अतः चौथे गुणस्थान में भी शुद्धोपयोग होता है।

a. अगर गौणता और मुख्यता से देखें तो फिर अशुभपयोग में भी शुभोपयोग गौण रूप में होगा। इस तरह तो सारी व्यवस्था ही बिगड़ जाएगी।

11. धर्म के भेद - एक धर्म शुभोपयोग रूप और एक धर्म शुद्धोपयोग रूप
12. गुणस्थान के अनुसार धर्म से परिणत आत्मा
    a. चौथे गुणस्थान से सम्यग्दर्शन के साथ शुभोपयोग धर्म
    b. बारहवें गुणस्थान तक चरित्र रूप धर्म
13. सम्यग्दर्शन ग्रहण करनेवाला आत्मा भी धर्म से परिणत है और सम्यग्चारित्र ग्रहण करने वाला भी परन्तु उनकी गाढता में बहुत अंतर है। जिस तरह मथते मथते दूध से मक्खन और फिर घी निकल आता है और घी निकलने के बाद वह वापस अशुद्धावस्था में नहीं जाता उसी प्रकार एक बार आत्मा सिद्ध बन जाता है तो वापस कभी संसार में नहीं आता

पदार्थकास्वरुप (गाथा०१०-०११)

णत्थिविणापरिणामंअत्थोअत्थंविणेहपरिणामो॥
दव्वगुणपज्जयत्थोअत्थोअत्थित्तणिव्वत्तो ॥ १०॥

अन्वयार्थ-(**इह**) इस लोक में (**विणापरिणामं**) परिणाम के बिना (**अत्थोणत्थि**) पदार्थ नहीं है (**अत्थंविणेह**) पदार्थ के बिना (**परिणामो**) परिणाम नहीं है (**अत्थो**) पदार्थ (**दव्वगुणपज्जयत्थो**) द्रव्य-गुण पर्याय में रहने वाला और (**अत्थित्तणिव्वत्तो**) अस्तित्व से बना हुआ है।

1. जैसे परिणाम होंगे उस तरह से आत्मा परिणमन कर जाता है। अशुभ योग के साथ अशुभ परिणाम होता है, शुभ उपयोग के साथ शुभ परिणाम होता है और शुद्ध के साथ शुद्ध रूप परिणाम होता है।
2. परिणाम स्वभाव प्रत्येक द्रव्य का होता है; जो भी द्रव्य है वह इस परिणमन के बिना कभी भी अपना अस्तित्व नहीं रख सकता है। इसलिए आत्मा (आत्म द्रव्य) भी परिणाम स्वभाव वाला होता है
3. शुद्ध द्रव्य भी अपने आप में परिणमन करता है। अतः सिद्ध भगवान भी शुद्ध रूप होते हुए अपने शुद्ध गुणों और पर्यायों के साथ परिणमन करते हैं।
4. **पदार्थ का जो भी परिणाम या भाव हो रहा है वह उसकी पर्याय अथवा परिणाम है =>भाव = पर्याय**
5. पर्याय के बिना अर्थ (**SUBSTANCE**) का अस्तित्व नहीं और स्वयं के बिना यह पर्याय नहीं
    a. पदार्थ की पहचान पर्याय से होगी।
    b. पदार्थ के बिना पर्याय नहीं है।
6. संसार दशा में आत्मा की चार पर्याय होती हैं - मनुष्य पर्याय, देव पर्याय, नारकी पर्याय, पशु पर्याय।
7. दुनिया का कोई भी पदार्थ (**SUBSTANCE**)द्रव्य, गुण और पर्याय इन तीन चीजों में स्थित होता है
    a. अर्थ ही हमारे ज्ञान का विषय बनेगा
    b. तीनों में से भी कम होने पर सम्पूर्ण अर्थ नहीं रहेगा -गुण कम हो गया तो द्रव्य नहीं, पर्याय नहीं। पर्याय के बिना द्रव्य नहीं,गुण भी नहीं ओर द्रव्य के बिना गुण नहीं, पर्याय नहीं।
    c. द्रव्य गुण और पर्यायों का आधार होता है।
    d. जो द्रव्य होता है वो गुणों के माध्यम से बनता है। अनेक जो द्रव्य के अंदर गुण हैं वे गुणो का समूह ही वस्तुतः द्रव्य है
    e. उस गुण का जैसा परिणमन रहा होगा या द्रव्य का जैसा परिणाम होगा वही उसकी पर्याय कहलाती है।

8. पर्याय बदलेगी, उसके गुण बदल जाएंगे लेकिन द्रव्य तो वही रहेगा पुदगल द्रव्य था और वह भी आगे पुदगल ही रहेगा
9. पर्याय दो प्रकार की होती हैं - स्वभाव पर्याय (आत्मा की अपनी पर्याय होगी) और विभाव पर्याय (जो दूसरे के साथ बन रहीजैसे यह पुद्गल शरीर)
10. **भ्रान्ति:**आपकी आत्मा का जो द्रव्य है वो तो शुद्ध है मात्र पर्याय ही केवल अशुद्ध है।
    a. जैसा द्रव्य है वैसा ही गुण हैं और वैसी ही पर्याय है, यह संबंध है।
    b. अशुद्ध द्रव्य की पर्याय अशुद्ध होती है, अशुद्ध द्रव्य के गुण भी अशुद्ध रूप परिणमन करते हैं और शुद्ध द्रव्य की पर्याय शुद्ध होती है उसके गुण भी शुद्ध रूप परिणमन करते हैं।
    c. संसारी आत्मा अशुद्ध आत्मा है तो उस अशुद्ध आत्मा की पर्याय अशुद्ध होगी और गुण भी अशुद्ध होंगे
11. प्रत्येक पदार्थ अपने अपने अस्तित्व से है, कोई उसको बनाने वाला नहीं है
12. कोई भी द्रव्य के गुणों को हम नष्ट नहीं कर सकते हैं। उसकी पर्यायों को तो हम नष्ट कर सकते हैं लेकिन गुणों को नष्ट नहीं कर सकते।लेकिन एक पर्याय को नष्ट करने के बाद दूसरी पर्याय तो उसमें अवश्य रहेगी।
13. तीर्थंकर भगवान में और अन्य भगवान में अंतर - तीर्थंकर भगवान के अनुसार उन्होंने कुछ नहीं बनाया। प्रत्येक द्रव्य ऐसा ही बना हुआ है, प्रत्येक द्रव्य का परिणाम इसी रूप में चल रहा है।
    a. भगवान ने उस पदार्थ को बनाया नहीं, केवल जो पदार्थ जैसे संसार में है उसको उसी रूप में देखा और हमें बता दिया
    b. भगवान का काम केवल जानना ओर देखना। सही जानना, सही देखना। बनाना नहीं।
14. केवलज्ञान में द्रव्य, गुण और पर्याय सब कुछ दिखाई देते है। हमें केवल पर्याय दिखाई देगी
15. ज्ञान उस आत्मा से कभी भी अलग नहीं हो सकता है क्योंकि आत्मा का संवेदन ज्ञान के ही माध्यम से होता है।
16. सिद्ध भगवान क्या करते हैं?
    a. सिद्ध भगवान हर समय उनके अंदर नया नया आनंद है, नया नया ज्ञान है, नई नई पर्याय उत्पन्न होती है, तो वह अपने हर समय में, अपने आनंद में स्थित रहते हैं।
    b. सिद्ध आत्माओं के अपने ही अंदर अपने ही स्वानुभूत जो गुण होंगे, बस वही उनके गुण उसी सुव्यवस्था में परिणमन करते रहेंगे। उनके अंदर केवल बस प्रति समय एक समय वर्ती पर्याय (**अर्थ पर्याय**) निकलती रहेगी और उनका परिणमन ज्यों का त्यों, वैसा का वैसा ही बना रहेगा। द्रव्य उनका शुद्ध था बना रहेगा। गुण भी शुद्ध बने रहेंगे।
17. **अन्य मत**: सांख्य मतऔर बौद्ध मत वाले पदार्थ को मानते हैं लेकिन द्रव्य ओर पर्याय रूप नहीं मानते हैं।

a. सांख्य मतानुसारद्रव्य तो कूटस्थ होता है उसमेपरिणमन नहीं होता है।जितना भी परिणमन है वो सब ऊपर ऊपर का रहता है।
b. बौद्ध मतानुसार द्रव्य ही प्रतिक्षण समूचा नष्ट जाता है और नया उत्पन्न हो जाता है। क्षणिक बात को मानते हैं।

18. जो आत्मा अशुभोपयोग के साथ हैं, वहीं पुरुषार्थ करके शुभोपयोगी हो जाता है और वही पुरुषार्थ से शुद्धोपयोगी भी हो जाता है।

धम्मेणपरिणदप्पाअप्पाजदिसुद्धसंपजोगजुदो।
पावदिणिव्वाणसुहंसुहोवजुत्तो व सग्गसुहं॥ ११॥

अन्वयार्थ-(**धम्मेणपरिणदप्पा**) धर्म से परिणमित स्वरूप वाला (**अप्पा**) आत्मा (**जदि**)। यदि (**सुद्धसंपजोगजुदो**) शुद्ध उपयोग में युक्त हो तो (**णिव्वाणसुहं**) मोक्ष सुख को (**पावदि**) प्राप्त करता है (**सुहोवजुत्तो व**) और यदि शुभोपयोग वाला हो तो (**सग्गसुहं**) स्वर्ग के सुख को प्राप्त करता है।

1. आत्मा एक अदृश्य शक्ति की तरह रहती है तब तक जीवन रहता है और उसके निकलने के बाद यह जीवन समाप्त हो जाता है - यह मिथ्याश्रद्धान है
2. अप्पा शब्द का अर्थ एक बार आत्मा के लिए किया है और एक बार परिणत स्वरूप के लिए किया है। आत्मा का प्रयोग स्वरूप के साथ का उदाहरण दुखीआत्मा अर्थात दुखी आत्मा
3. जो शुभोपयोग से युक्त होता है, वह स्वर्ग सुख प्राप्त करता है। और जो शुद्धोपयोग से युक्त होता है तो वह निर्वाण सुख प्राप्त करता है और वह आत्मा धर्म से परिणत स्वरूप होता है।
4. **भ्रान्ति:**धर्म तो केवल शुद्धोपयोग ही है, शुभोपयोग कोई धर्म नहीं है
    a. धर्म से परिणत स्वरूप आत्मा**यदि -**यदि शब्द दिया है। आत्मा पहले किससे परिणमन कर रहा है? धर्म से। और उसी की स्थिति बताई जा रही है। वही धर्म से परिणत हुआ आत्मा यदि शुद्धोपयोग से युक्त होता है तो निर्वाण सुख की प्राप्ति करता है और यदि शुभोपयोग से युक्त होता है तो स्वर्ग की प्राप्त करता है।
5. वीतरागचारित्र कहो या शुद्धोपयोग कहो या निश्चय धर्म कहो या निश्चय रत्नत्रय कहो, ये सब एक ही बात है।इसी प्रकार से सरागचारित्र कहो, शुभोपयोग कहो, व्यवहार रत्नत्रय कहो या व्यवहार धर्म कहो, यह एक ही बात है।
6. यह ग्रन्थ मुख्य रूप से साधुओं के लिए है जिनकी भूमिका में शुद्धोपयोग और शुभोपयोग दोनों बातें रहती हैं।

a. जब वह कोई भी प्रवृत्ति करते हैं, कोई धर्म आराधना करते हैं, उपदेश दे रहे होते हैं, स्वाध्याय करते हैं या अन्य कुछ करते हैं, उस समय उनका शुभोपयोग रूप धर्म होता है।
b. जिस समय सब प्रवृत्तियां छोड़कर केवल निर्विकल्प आत्म ध्यान में लीन होते हैं तो वह उनका शुद्धोपयोग रूप धर्म होता है।

7. शुद्धोपयोग और शुभोपयोग ये दोनों बातें एक साथ चलती रहती हैं। मुख्य और गौण के माध्यम से इन दोनों में परिणमन होता रहता है।
8. गुणस्थान और उपयोग
    a. 4, 5, 6 - शुभोपयोग
    b. 7 - शुभोपयोग और शुद्धोपयोग दोनों
    c. 8, 9 , 10 , 11 , 12 - शुद्धोपयोग
        i. 10 में उपशम श्रेणी (नियम से नीचे के गुणस्थान में गिरता है) और क्षपक श्रेणी (निर्वाण का कारण) वाले दोनों होते हैं
        ii. 12 में पूर्णता
    d. 13, 14 - शुद्धोपयोग का फल
9. सातवें गुणस्थान में जो किंचित शुद्धोपयोग होगा, वह हमारे लिए मरण होते हीशुभोपयोग में बदल जायेगा
10. **भ्रान्ति:**शुभोपयोग के साथ चारित्र नहीं होता। चारित्र तो बस शुद्धोपयोग है
    a. यदि ऐसा नहीं होगा तब तो बहुत परेशानी हो जाएगी। क्योंकि मुनिराज जब तक ध्यान में बैठे हैं तब तक तो चारित्रवान हैं और जैसे ही ध्यान से बाहर आये अथवा बोलने लगे हैं या स्वाध्याय करने लगे अथवा विहार करने लगे है या फिर वंदना करने लगे है तब चारित्र ही छूट गया। अर्थात उपयोग में आ गए तो उनको चारित्र वाला ही नहीं कह सकते हैं
    b. आचार्य कहते हैं - ऐसा नहीं होता है। शुभोपयोग के साथ वह सरागचारित्र और शुद्धोपयोग के साथ वीतरागचारित्र कहलाता है।
11. आचार्य कुन्दकुन्द देव के भावों से सिद्ध होता है कि शुभ और शुद्ध परिणाम, दोनों ही धर्म रूप हैं। दोनों ही चारित्र की संज्ञा पाते हैं।
12. **विवक्षा**: यदि शुद्धोपयोग से निर्वाण की प्राप्ति होती है तो सातवें गुणस्थान से निर्वाण प्राप्त हो सकता है? नहीं। बारहवें गुणस्थान जिसमें शुद्धोपयोग की पूर्णता होती हैं वही निर्वाण का सुख देता है। अतः बारहवें गुणस्थान से पहले का शुद्धोपयोगशुभोपयोग जैसा है।
13. **भ्रान्ति –**शुद्धोपयोग चौथे गुण स्थान में होता है
    a. यदि ऐसा हो तो फिर घर में ही निर्वाण हो जाएगा
14. **भ्रान्ति –**आत्मा देखी

a. आत्मा अमूर्त पदार्थ है
b. केवलज्ञान के अलावा किसी ज्ञान में आत्मा नहीं दिखती है
c. उससे पहले तो बस आत्मा का केवल हमें अनुभव अपने स्वयं संवेदन से होता है। कषायों से जुड़कर जो हम अनुभव कर सकते हैं कि बस मैं आत्मा हूँ।इस अनुभव भी नहीं श्रद्धा और ज्ञान ही कहेंगे।

15. बारहवें क्षीणमोहगुणस्थान में जैसे ही वह जीव मोह नष्ट कर लेगा, तुरंत ही ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय, चारों कर्मों का नाश उसी गुणस्थान के अंदर होकर, वोकेवलज्ञान की प्राप्ति कर लेगा।
16. वर्तमान में शुभोपयोग भी बहुत बड़ा धर्म है। शुभोपयोग को यहां पर धर्म इसी गाथा के माध्यम से कहा गया है।

अशुभोपयोगकाफल,निर्वाणकास्वरुप (गाथा०१२-०१३)

असुहोदयेणआदाकुणरोतिरियोभवीयणेरइयो।
दुक्खसहस्सेहिं सदा अभिंधुदोभवदिअच्चंतं ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ-(**असुहोदयेण**) अशुभ उदय से (**आदा**) आत्मा (**कुणरो**) कुमनुष्य (**तिरियो**) तिर्यंच (**णेरइयो**) और नारकी (**भवीय**) होकर (**दुक्खसहस्सेहिं**) हजारों दु:खों से (**सदा अभिंधुदो**) सदा पीड़ित होता हुआ (**अच्चंतंभवदि**) अत्यन्त भ्रमण करता है।

1. **चिंतन:**आचार्य कुंदकुंद देव पहले फल बता रहे हैं और लक्षण बाद में बताएंगे क्योंकि फल देखकर के ही व्यक्ति प्रवृत्ति करता है
2. आचार्य कुन्दकुन्द देव ने पिछली गाथा में शुभोपयोग और शुद्धोपयोग के फल को बताते समय उन उपयोगों साथ धर्म शब्द का प्रयोग किया था।
3. अशुभोपयोग को धर्म कदापि नहीं कहा जाता।
4. अशुभोपयोग के साथ किसी भी रूप में चारित्र होता ही नहीं।
5. **चिंतन / भ्रान्ति:**आचार्य अमृतचंदमहाराज की टीका को लोग थोड़ा समझ नहीं पाते। वो इस प्रकार से बोलते हैं कि शुद्धोपयोग के फल से तो आत्मा को निर्वाण सुख मिलता है लेकिन शुभोपयोग के फल से आत्मा को निर्वाण सुख नहीं मिलता। अतः वो लिखते हैं कि कुछ विरुद्ध कार्यकारी, यह शुभोपयोग सिद्ध हो जाता है।
    a. मोक्ष सुख में और स्वर्ग सुख में अंतर है और दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं
    b. उन स्वर्ग सुखों में रहते हुए भी वह संसार दशा का ही अनुभव करेगा, मुक्त दशा का अनुभव नहीं हो जाएगा
    c. शुभोपयोग के फल से हमें कथंचित् कुछ विरुद्ध कार्य मिल गया। सर्वथा विरुद्ध नहीं है। वह स्वर्ग नियम से संसार का ही कारण हो जाए, ऐसा कोई जरूरी नहीं है। वहां पर रहने के बाद में वही जीव पुनः मनुष्य पर्याय को प्राप्त करता है तो वह नियम से मोक्ष पुरुषार्थ करता है।
    d. इसलिए वह स्वर्ग में जाना उसके लिए एक लंबा रास्ता हो गया। मंजिल पर पहुँच नहीं पाया है। पाना तो अतिन्द्रिय सुख था और मिला इंद्रिय सुख।
    e. जो सम्यक दृष्टि जीव होते हैं, धर्म की आराधना करते हैं, उन्हें अभी इस पंचम काल में मोक्ष नहीं मिलता तो वह स्वर्ग में जाते हैं।कथंचित् विरुद्ध कार्य हो गया।
6. शुभोपयोग धर्म - सम्यग्दर्शन के साथ में सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र की आराधना करना।
7. शुद्धोपयोगका मतलब है - निर्विकल्प शुद्ध वीतरागता

8. गृहस्थ की यात्रा केवल पांच गुणस्थान तक ही होती है। यदि सम्यग्दृष्टि बन जाएगा तो चौथे पर होगा। अगर वह व्रतों को धारण कर लेगा तो उसका गुणस्थान पांचवां हो जाएगा।
9. गृहस्थ को शुद्ध आत्मा का ध्यान नहीं होता अतः आचार्य कहते हैंबाहर आंख खोल कर के पंच परमेष्ठी की भक्ति कर। भगवान की प्रतिमा दिखेगी, अरिहंत और सिद्ध का ज्ञान होगा। आचार्य ,उपाध्याय ओर साधु के दर्शन कर, उनको आहार दान इत्यादि कर।
10. जितनी मन की स्थिरता होगी, जितनी अंदर अपने कषायों की कमी होगी, उतना ही तो पुण्य आएगा। ओर उतना ही तो उपयोग लगेगा
11. गृहस्थ कितनी भी निर्विकल्प शुद्ध आत्मा की चर्चा करें, उससे हमारा उपयोग शुद्धोपयोगनही हो जाएगा। उपयोग तो शुभोपयोग ही रहेगा।
12. स्यादवाद की शैली में जब हम कोई बात करते किसी अपेक्षा से करते हैं तो वहां पर हमें कथंचित् शब्द का उपयोग करना होता है।जब कोई चीज नितांत एकांत रूप से गलत होती है तब वहां पर सर्वथा शब्द का उपयोग होता है।
13. सम्यग्दर्शन के साथ जो उपयोग होगा, वह शुभोपयोग होगा।
14. सम्यग्दर्शन कैसे होगा - आप तत्व का श्रद्धा करें, देव शास्त्र गुरु का परमार्थ के साथ श्रद्धा करें, तत्व का निरंतर अभ्यास करें, जिनवाणीमे कही हर बात को ही अपने हृदय में लाएं। बाहरी चीजें।
15. सम्यग्दर्शन कब होगा - जब आपकी आत्मा से मिथ्यात्व का और अनंतानुबंधीकषायों का उदय नहीं हो, बिल्कुल उनका उदय से अभाव हो जाए तब वह आपकी आत्मा की जो परिणति होगी, वो कहलाएगी - शुभोपयोग की परिणति। भीतरी चीजें।
16. बाहरी चीजें हमेशा कारण बनती हैं हमारे भीतरी परिणामों को संभालने के लिए। बाहरी चीजों के माध्यम से हम अपने भीतर के परिणामों में अन्तर लाते हैं।
17. हमारे ही अंदर जो मिथ्यात्व कर्म का उदय और अन्नतानुबंधीकषायों का उदय चलता है, यही हमारे अंदर सम्यक्त्व परिणाम नहीं होने देता है
18. आप यदि बाहर की वस्तु को गलत कह रहे हैं तो कभी आप भीतर की वस्तु को प्राप्त नहीं कर पाओगे। क्योंकि जो वस्तु कारण है उस कारण से वो कार्य होगा।
19. बहुत बार ऐसा भी हो जाता है कि भगवान के पास direct जाने के लिए जो पुण्य चाहिए, वो नहीं होता है। उस समय यदि गुरु के माध्यम से व्यक्ति जुड़ जाए तो वह गुरु के माध्यम से जुड़ कर के कभी प्रभु के पास तक भी पहुंच जाता है। व्यक्ति गुरु से जुड़ सकता है
20. तीव्र कषाय में तो ये धर्म का उपदेश कोई भी काम नहीं करता। मन्दकषाय होने पर ही धर्म का उपदेश काम करता है।
21. जिन बिम्ब दर्शन सम्यग्दर्शन के लिए एक कारण है। अरिहंत भगवान का दर्शन नहीं कहा।
22. जिन बिम्ब दर्शन के समय ऐसे भाव करें

a. आज मैं धन्य हो गया जो आज आपके दर्शन हुए।
b. आज मेरा जीवन सफल हो गया जो आज इन आंखों से आपका दर्शन कर पाया

23. सम्यग्दर्शन के कारण
    a. जाति स्मरण
    b. जिन बिम्ब का दर्शन
    c. गुरु का उपदेश सुनना
24. जिन दर्शन और उपदेश श्रवण। ये दोनों ही मनुष्य पर्याय में सम्यग्दर्शन के लिए कारण हैं।
25. इतना समझा सकते हो कि दर्शन से अपनी कषाय मंद पड़ती हैं। हमारे अंदर बहुत अच्छी purity के भाव उत्पन्न होते हैं। भगवान को देख करके हमारा मन भी बिलकुल भगवान की तरह शांत और स्वस्थ होने लग जाता है।

अदिसयमादसमुत्थंविसयादीदंअणोवममणंतं।
अव्वुच्छिण्णं च सुहंसुद्धवजोगप्पसिद्धाणं ॥१३॥

अन्वयार्थ –(**सुद्धवजोगप्पसिद्धाणं**) शुद्धोपयोग से निष्पन्न हुए आत्माओं का (**सुहं**) सुख (**अदिसयं**) अतिशय (**आदसमुत्थं**) आत्मोत्पन्न (**विसयादीदं**) विषयातीत (**अणोवमं**) अनुपम (**अणंतं**) अनन्त (**अव्वुच्छिण्णं च**) और अविच्छिन्न है।।

1. अतिशय का अर्थ कोई चमत्कार करने वाला नही अपितु जो सबसे उत्कृष्ट हो।
2. निर्वाण सुख की बिशेषताएँ
    a. जो निर्वाण का सुख है, वह अतिशय स्वरूप है
    b. निर्वाण का सुख का source /स्रोत्र शरीर नहीं, मन नहीं, इन्द्रियां नहीं अपितु आत्मा है
    c. पांच इन्द्रिय के विषयों (वैषयिक सुख) से वह परे / रहित हैं
    d. निर्वाण का सुख अनुपम है - इसकी किसी सुख से तुलना नहीं कर सकते
    e. निर्वाण का सुख अनंत है - जिसका कभी अंत नहीं होता
    f. निर्वाण का सुख अविनाशी है - इसमें कभी कोई बाधा नहीं होती (एक बार मिलने के बाद निर्बाध रूप से चलता है)
3. संसारी जीवों के सुख मन से उत्पन्न होते हैं, मन की इच्छाओं से उत्पन्न होते हैं और इंद्रियो से उत्पन्न होते हैं।

4. **चिंतन**: आचार्य महाराज शुभोपयोग के फलों का वर्णन करने के बाद निर्वाण सुख इसलिए लिख रहे हैं कि इस सुख की जो भावना करेगा या इस सुख के ऊपर जिसका विश्वास होगा, वही जीव सम्यकदृष्टि होगा।
5. जब निर्वाण के सुख के ऊपर विश्वास होगा फिर आपका निर्वाण पर भी विश्वास हो जाएगा
6. **चिंतन**: जब निर्वाण के सुख के प्राप्ति के लिए कार्य करेंगे तो निर्जरा भी और संवरभी होगा। संसार के कारणभूत बंध और आश्रव रुक जायेंगे। अजीव तत्त्व (कर्मों) से यह आत्मा हल्का होगा और तभी निर्वाण की प्राप्ति होगी। इस तरह सातों तत्त्व इस में आ जायेंगे। चाहे जीव, अजीव से शुरू करो चाहे निर्वाण से सब एक सामान है
7. **उल्टा सीधा एक समान यहीं धर्म का विज्ञान।**

शुद्धोपयोगसेपरिणतआत्माकास्वरूप (गाथा०१४-०१५)

सुविदिदपत्थसुत्तोसंजमतवसंजदोविगदरागो।।
समणोसमसुहदुक्खोभणिदोसुद्धोवओगोत्ति॥ १४ ॥

अन्वयार्थ (**सुविदिदपत्थसुत्तो**) जिन्होंने पदार्थों को और सूत्रों को भली भाँति जान लिया है, (**संजमतवसंजदो**) जो संयम और तपयुक्त है, (**विगदरागो**) जो वीतराग अर्थात् राग रहित है। (**समसुहदुक्खो**) और जिन्हें सुख दुःख समान है (**समणो**) ऐसे श्रमण को (मुनिवर को) (**सुद्धोवओगोत्तिभणिदो**) शुद्धोपयोगी कहा गया हैं।

1. शुद्धोपयोगी श्रमण के गुण
    a. प्रमाण और नयों के माध्यम से, सभी प्रकार के हेतुओं के माध्यम से उन पदार्थों को अच्छे ढंग से जानने वाले हैं। जिन्होंने सूत्रों के निहित अर्थों को भी अच्छे ढंग से जान लिया है अर्थात द्वादशांगजिनवाणी के मर्म को जान लिया है। पूर्ण श्रुत को जानकर वे श्रुतज्ञानी हो गए हैं
    b. बारह संयम और बारह तप से संयुक्त होते हैं
    c. जिनका राग बीत चुका हो, नष्ट हो चुका हो
    d. सुख और दुख में समभाव रखने वाला हो
2. जो गणधरादिपरमेष्ठी के द्वारा कहे जाते हैं, वे सभी सूत्र कहलाते हैं
3. व्यवहार संयम बारह प्रकार का होता है
    a. छः प्रकार का इन्द्रिय संयम (पांच इन्द्रिय और एक मन)
    b. छः प्रकार का प्राणी संयम (पांच स्थावरकायिक और एक त्रसकायिक)
        i. पांच स्थावरकायिक- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु औरवनस्पति
        ii. त्रसकायिक - दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय के सभी जीव
4. सभी श्रमण शुद्धोपयोगी नहीं होते हैं। शुद्धोपयोग सिर्फ श्रमणों को होता है
5. आचार्य प्रभाचन्द्र महाराज के अनुसार श्रुत केवली ही शुद्धोपयोग के अधिकारी होते हैं
6. शुद्धोपयोग का मतलब उपयोग का पूर्णतः शुद्ध हो जाना होता है
7. आत्मा का ही अनन्य परिणाम उपयोग कहलाता है
8. उपयोग की शुद्धता होने का मतलब आत्मा की शुद्धता होना है और आत्मा की शुद्धता होने का मतलब उसमें रागादि भावों का अभाव हो जाना है।
9. राग सेरहित होना और राग का सर्वथा अभाव होना, ये दोनों एक बात हैं

10. राग का सर्वथा अभाव बारहवें गुणस्थान (क्षीण गुणस्थान) में होता है क्योंकि वहाँ न उदय है और न सत्व है
11. **चिंतन:**आचार्य कुन्दकुन्द देव का भाव यह है कि शुद्धोपयोगबारहवें गुणस्थानमें होता है
12. जो अतीन्द्रिय सुख का कारण बने, वहीशुद्धोपयोगहै। जब तक इन्द्रिय सुख है तब तक वहशुद्धोपयोगनहीं है।
13. समभाव भी कई तरह से घटित होता है
    a. सुख-दुःख में शांत हो कर के बैठ जाना - साधारण मान्यता है, साधना रूप है
    b. इतना सम होना है कि सुख दुःख का वेदन ही न हो, सम रूप ही परिणमन कर गया, साम्य ही आत्मा का चारित्र बन गया - यह उपलब्धि रूप है
    c. प्रभु से प्रार्थना करना कि वह सुख दुःख में समभाव रखे (जैसे सामायिक पाठ में) - यह साधना रूप है
14. हम जिस वस्तु को उपलब्ध करना चाहते हैं उसी की हम साधना करते हैं। जब हम साधना करेंगे तो हमें उसकी भावना करनी होगी। जैसे समभाव की उपलब्धि के लिए समभाव की साधना करना।
15. दुःख दूर करने का भाव करने को भी भी आचार्य श्री आर्त ध्यान कहते हैं।
16. सामायिक पाठ -**दुःखे-सुखेवैरिणि-बन्धुवर्गे, योगे-वियोगेभवने-वनेवा। निराकृताशेष-ममत्व बुद्धेः, समंमनोमेऽस्तुसदापि नाथ।।**
    a. दुःख में और सुख में समता रहे
    b. वैरियों में और बंधुओं में समता रहे - राग द्वेष ना रहे
    c. किसी के भी वियोग में और संयोग में समता रहे
    d. भवन में या वन में रहने में भी समता रहे
    e. हमारी ममत्व बुद्धि हर चीज से हट जाये
17. अगर ज्ञायक भाव की, ज्ञान स्वभाव की अनुभूति आपको होगी फिर उस समय सुख-दुःख का संवेदन नहीं होगा। शरीर इन्द्रिय मन का आभास भी हमें नहीं होगा।
18. ज्ञान स्वभाव एवं इन्द्रिय स्वभाव, ये दोनों विपरीत हैं।
19. स्व संवेदन, जिसे हम निर्विकल्प ज्ञान रूप आत्मा का संवेदन कहते हैं, वह संवेदन तभी होता है जब सभी इंद्रियां इस प्रकार से संयमित हो जाए कि उसमें अपने मन का उपयोग न जाए।
20. **शंका**: सुकौशल मुनि को जबसियार खा रहा था तो उनका शरीर से ममत्व भाव हैट चुका था तब क्या उन्हें शुद्धोपयोग नहीं हुआ?
    a. इसको शुद्धोपयोग इसलिए नहीं कह सकते क्योंकि उन्हें मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई। उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई थी। उन्हें शरीर से निस्पृहता भी हुई, सुख-दुःख में समभाव भी हो गया।

b. उनके अंदर उस सुख-दुःख में समता का भाव भी आ गया कि कोई बात नहीं जो हो रहा है, हम अपना ध्यान यहाँ से हटाते हैं और अपना ध्यान बिल्कुल अपनी आत्मा में लगाते हैं। वह ध्यान भी लगाया लेकिन वह ध्यान ऐसा नहीं लगा कि वह शुक्ल ध्यान बन जाता।

21. यहाँ जोशुद्धोपयोग बताया जा रहा है, वह तो केवलज्ञान को प्राप्त कराने वाला है।
22. सुकौशल मुनि (सियार द्वारा खाना) हों, सुकमाल मुनि हों या यशोधर मुनि (गले में मारा हुआ सर्प) हों, पाँच में से दो पांडव (जिन्हें विकल्प हो गया) सभी को समभाव था, शुद्धोपयोग नहीं था।
    a. मन दृढ़ है
    b. इंद्रियों का नियंत्रण है
    c. ममत्व बुद्धि हट रही है
    d. समभाव में स्थित हो रहे हैं लेकिन वह समभाव भी उनके लिए अभी धर्म ध्यान है
    e. सुख दुःख का संवेदन ही नहीं हो - ऐसा अभी नहीं था। अभी भी यह संवेदन था की उपसर्ग हो रहा है और यह दृढ़ता थी की हमें संभव से सहन करना है
23. समभाव वह होता है, जिसमें सुख दुःख का संवेदन ही न हो। मात्र ज्ञान ही उसके संवेदन में आए।
24. मोह और क्षोभ से रहित जो आत्मा का परिणाम साम्य रूप समभाव होता है, वह तो केवल बारहवें गुणस्थान में होता है।
25. उपसर्ग केवली तो उपसर्ग से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है और वे भी मोक्ष जाते हैं। केवलज्ञान प्राप्ति के बाद कोई उपसर्ग नहीं होता।
26. **चिंतन**: आचार्य कुन्दकुन्द देव के अनुसार तो शुद्धोपयोगपंचम काल के श्रमणों पर भी नहीं बैठता। ये सभी शुभोपयोगी हैं। जब यशोधरमुनिराज, सुकुमालमुनिराज आदि भी शुभोपयोगी थे तो शुभोपयोग भी कोई हल्का नहीं है।
27. **चिंतन:**बड़ी बड़ी चीजों के नाम सुनकर उसके title अपने ऊपर जोड़ लेने से कोई बडा नहीं बन जाता है। यहाँ मुनि महाराज को भी शुद्धोपयोग नहीं है और कुछ श्रावक गृहस्थावस्था में ही शुद्धोपयोग होने की हठ करते हैं।
28. यथार्थ को स्वीकार करना सम्यग्ज्ञानका लक्षण होता है।
29. जो शुभोपयोग समता भाव में ढल रहा हो, अपने शुद्ध परिणामों को स्पर्श कर रहा हो, वहीं धीरे-धीरे उस शुद्धोपयोग में ढलकर के शुद्धोपयोग की अंतिम स्थिति को प्राप्त होगा।
30. **भ्रान्ति**: सुविदिदपत्थसुत्तो - जो पदार्थ और सूत्रों का जानकार है वो भी आंशिक शुद्धोपयोगी हो ही जायेगा अतः जो गृहस्थ सूत्रों को पढ़ ले वोशुद्धोपयोगी है
    a. उक्त अभी विशेषणों के आगे श्रमण शब्द विशेष्य रूप में आता है अतः गृहस्थों के लिए घटित नहीं कर सकते

b. जैसे नीलकमल - नीला कमल का अर्थ ये नहीं हो सकता जो नीला है वह भी आंशिक कमल होगा क्या? कोई भी नीलपन इष्ट नहीं अपितु वही नीलापन जो कमल में है

31. जो पूर्ण श्रुत को जानने वाले होते हैं, उन्हें श्रुत केवली कहते हैं। वह मुनि महाराज ही होते हैं।
32. शुद्धोपयोगी कौन होते हैं? श्रमण होते हैं। यह अर्थ चौदहवीं गाथा से स्पष्ट हो जाता है।
33. सत्यव्रती वह होता है जो भले ही उतना तप त्याग नहीं भी कर पाए, उस योग्य नहीं भी हो पाए फिर भी वह झूठ न बोले। तभी वह सत्यव्रती कहलाता है।

उवओगविसुद्धो जो विगदावरणंतरायमोहरओ।।
भूदोसयमेवादाजादिपरंणेयभूदाणं ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ- (**जो**) जो (**उवओगविसुद्धो**) उपयोग विशुद्ध है (**आदा**) वह आत्मा (**विगदावरणंतरायमोहरओ**) ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोहरूप रज से रहित (**सयमेवभूदो**) स्वमेव होता हुआ (**णेयभूदाणं**) ज्ञेयभूत पदार्थों के (**परंजादि**) पार को प्राप्त होता है।

1. ज्ञानावरण, दर्शनावरण इनको आवरण कर्म कहा जाता है
2. ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय, मोहिनीय को घातिया कर्म कहा जाता है
3. ज्ञेय का अर्थ जानने योग्य। जो भी पदार्थ हैं, वे सभी ज्ञेय कहलाते हैं
4. जानने वाला आत्मा ज्ञाता कहलाता है
5. बारहवें गुणस्थान में जब उसका उपयोग विशुद्ध हुआ तो मोहनीय कर्म का क्षय हो जाता है। एक अंतर्मुहूर्त में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय, इन तीनों कर्मों का एक साथ नाश करके वह केवलज्ञान को प्राप्त हो जाता है।
6. वह सभी ज्ञेयों के पार को पा लेता है। जितने भी जीव, अजीव, ज्ञेय पदार्थ हैं, सभी उनके ज्ञान में आ जाते हैं और उन्हें स्पष्ट दिखाई देने लग जाते हैं।
7. इस गाथा में रज शब्द मोह के लिए आया है
8. **"सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि निजानन्दरसलीन सो जिनेन्द्रजयवंत नित अरि रज रहस विहीन"** यहाँ मोहिनीय कर्म को अरि कहा जाता है, रज अगर आता है तो ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म को रज लिया जाता है और अंतराय को रहस के रूप में कहा जाता हैं
9. टीका में सभी ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय और मोहनीय कर्म को (कर्म धूली) रज के रूप में कहा है
10. धूली को चिपकने का कारण वस्त्र नहीं बल्कि उसकी चिकनाहट होती है उसी तरह आत्मा में राग-द्वेष परिणाम रूप चिकनाहट से कर्म रूपीधूली का बंध होता है
11. उस धूली को हटाकर अपने उपयोग को शुद्ध बनाकर केवलज्ञान से सभी ज्ञेय भूत पदार्थों को जान लेता है। इसी का नाम पुरुषार्थ कहलाता है।

शुद्धोपयोगकाफल (गाथा०१६-०१७)

तध सो लद्धसहाओसव्वण्हूसव्वलोगपदिमहिदो।
भूदोसयमेवादाहवदिसयंभुत्तिणिदिट्ठो॥ १६ ॥

अन्वयार्थ- (**तध**) इस प्रकार (**सो आदा**) वह आत्मा (**लद्धसहाओ**) स्वभाव को प्राप्त (**सव्वण्हू**) सर्वज्ञ (**सव्वलोगपदिमहिदो**) और सर्व लोक के अधिपतियों से पूजित (**सयमेवभूदो**) स्वयमेव हुआ होने से (**सयंभुवदि**) स्वयंभू हैं, (**त्तिणिट्ठि**) ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

1. जिसने अपने स्वभाव को प्राप्त कर लिया है उन्हें हम सर्वज्ञ (प्राकृत - सव्वण्हू) कहते हैं। जिन्होंने अपने घाति कर्मों का नाश करके समस्त ज्ञेयों को जान लिया।
2. कर्मों का नाश होने पर वे (आत्मा के) स्वभाव को प्राप्त हो गये और समस्त लोगों अधिपतियों से पूजित हो गए।
3. केवलज्ञान की प्राप्ति होने पर देवता लोग आकर के उस केवलज्ञान की पूजा करने लग जाते हैं।
4. देव लोग सभी केवलीयों के (तीर्थंकर केवली, सामान्य केवली आदि) के केवलज्ञान होने पर उनकी पूजा करने के लिए पहुंचते हैं।
5. पदमपुराण के प्रसंग में, सीता की अग्नि परीक्षा के समय देव अनन्तवीर्य केवली की पूजा करने के लिए ही जा रहे थे।
6. **स्वंभवतीइत्तीस्वम्भू –**जो स्वयं ही हो रहे हैं और स्वयं ही हुए हैं। इसमें पर ने कुछ नहीं किया, स्वयं ने ही स्वयं में सबकुछ किया उन्हें स्वयंभू कहते हैं।
7. जो भी भव्य जीव सर्वज्ञ बनना चाहेंगे वह भी स्वयंभू बनकर, स्वयंभू कहलाएंगे और वह पुरुषार्थ भी स्वयं ही करेंगे। कोई अन्य आपको कोई स्वयंभू या सर्वज्ञ नहीं बना सकता है, आपको केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता।
8. कर्ता ने, कर्म को, करण से (के द्वारा), समप्रदान के लिए, आपादन से और अधिकरण में - इसी को षट्कार की क्रिया कहते हैं।
9. सम्बन्ध कारक हमेशा दूसरों से जुड़ता है अतः उसे छोड़ कर बाकि छह कारकों की क्रिया षट्कार की क्रिया होती है।
10. कर्ता अर्थात स्वयं उस आत्मा ने, स्वयं को कर्म बनाया, स्वयं के द्वारा बनाया, स्वयं के लिए बनाया, स्वयं से बनाया और स्वयं में बनाया - इसे निश्चय षट्कार की क्रियाकहते हैं।

11. ध्यान में जो पुरुषार्थ हम बाहर पर के साथ करते थे, अब वो सारा का सारा पुरुषार्थ स्वयं का, स्वयं में, स्वयं के लिए, स्वयं के साथ ही करते हैं।
12. मन जब बिल्कुल एकाग्र होकर उसी में टिक जाएगा और अन्तर्मुहूर्त के लिए स्थिर हो जाएगा तो समझ लेना केवलज्ञान हो गया।
13. निश्चय में पर हस्तक्षेप नहीं होता, स्व का आलम्बन होता है
14. व्यवहार में पर का आलम्बनहोता है, पर के बिना कुछ नहीं होता।कर्त्ता कौन? पर।किसको करेंगे? पर को। किसके द्वारा करेगा? पर के द्वारा। किसके लिए करेगा? पर के लिए। किससे करेगा? पर से। किस में करेगा? पर में।
15. निश्चय षट्कार की क्रिया से ही केवलज्ञान होता है, स्वयंभू बना जाता है।
16. **भ्रान्ति:**निश्चय और व्यवहार दूसरे के उलटे हैं, इसी कारण जब लोग निश्चय की क्रिया को समझते हैं तो व्यवहार को गलत कहने लगते हैं।
    a. आचार्यों के अनुसारजब आप व्यवहार नय से प्रवृति कर रहे हो, जब आप व्यवहार में हो, तब व्यवहार षट्कार की चलेगी। जब आप निश्चय से करेंगे तो निश्चय की षट्कार चलेगी।
    b. व्यवहार से आत्मा कर्म का कर्ता है, वह पुद्गल कर्म परमाणु (पर द्रव्य) जो उसके प्रदेशों पर बैठे हैं उन्हें अपने में बाँध लेता है परन्तु निश्चय से आत्मा स्वयं अपने भावों में परिणमन करता है।
    c. व्यवहार षट्कार की क्रिया को छोड़ कर निश्चय षट्कार की क्रिया में लीन होते-होते जब शुक्ल ध्यान की स्तिथि बन जाती है, विशुद्धि बढ़ जाती है तब वह केवलज्ञान प्राप्त होता है।
    d. व्यवहार की क्रिया अगर निश्चय का उद्देश्य रखकर की जाती है तो वो निश्चय के लिए कारण बनती है
17. निश्चय और व्यवहार के उदाहरण - करण और सम्प्रदान में 'से' का भाव अलग-अलग है

कारक	**चिन्ह**	**प्रश्न**	**जीव व्यवहार**	**कुम्हार व्यवहार**	**कुम्हार निश्चय**
कर्ता	ने	करने वाला कौन?	जीव	कुम्हार	मिट्टी
कर्म	को	किसको कर रहा है?	कर्म	मिट्टी	मिट्टी
करण	से (माध्यम से, के द्वारा)	किस से कर रहा है?	रागद्वेष परिणाम	डंडा, चाक, हाथ	मिट्टी
सम्प्रदान	के लिए	किसके लिए कर	रागद्वेष की	ग्राहक, पैसे	मिट्टी

		रहा है?	संतुष्टि		
अपादान	से (अलग होने का भाव)	किस से कर रहा है?	पहले के राग से	लौंदा	मिट्टी
अधिकरण	में	किस में कर रहा है?	जीव	कीली / चाक	मिट्टी

18. व्यवहार षट्कार से निश्चय षट्कार की क्रिया घटित करने के लिए, उसे उपादान कारण (जिसमें सारी क्रिया हो रही है) में घटित करनी होगी जैसे घड़े के लिए उपादान कारण मिट्टी है। जो चीज़ जिससे बनेगी, वो चीज़ उसके लिए अपनी उपादान शक्ति कहलाती हैं।
19. व्यवहार सब बहार छूट जाता है। जैसे आटे से आटे की रोटी बनने पर सारी सहायक चीजें (बेलन, हाथ आदि) सब बाहर रह जाते हैं।रोटी अपने आप में स्वतंत्र है।
20. निश्चय को प्राप्त करने के बाद व्यवहार को झूठा कहना सही नहीं है और यही निश्चय और व्यवहार की लड़ाई है।
21. समीचीननयों के जानकर के अनुसार इसमें झूठे सच्चे के बात नहीं है, अगर पर की बात करोगे तो व्यवहार है और अगर अपने की बात करोगे तो निश्चय है। व्यवहार ने से रोटी हमने बनाई और निश्चय से आटे ने।
22. रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा गया**अदर्शेष्टदोषकम**जिनवाणी में जो कुछ भी लिखा हुआ हैं, वह दृष्ट (प्रत्यक्ष प्रमाण से - जो हमें दिखाई दे रही है) और इष्ट (अनुमान से) से विरोध को प्राप्त नहीं होता हैं।
23. व्यवहार में भी निश्चय के ही सामान न्याय लगता है। जैनाचार्यों ने मोक्षमार्ग और संसार मार्ग मेंएक ही समान नयों का प्रयोग किया है।
24. व्यवहार और निश्चय दोनों दृष्टियों से वस्तु व्यवस्था समझने से ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान बनेगा। किसी एक का आग्रह करने से एकांतिकमिथ्यादृष्टि कहलाओगे। कोई भी चीज़ एकांत अभिप्राय से गलत हो जाती है।
25. जब तक निश्चय की प्राप्ति नहीं होती हैं, तब तक व्यवहार आवश्यक ही है
26. मोक्षमार्ग में पहले व्यवहार फिर निश्चय। जैसे घर छोड़कर, संयम ग्रहण करना, व्रतों की भावना करना आदि व्यवहार है और यह सब करते करते स्थिरता आ जाना और बिलकुल ध्यान में एकाग्र हो जाना निश्चय है।
27. व्यवहार में क्रिया करने से परिवर्तन तो स्व द्रव्य में भी आता है जैसे आप रोटी बनाते हो तो परिवर्तन तो आटे में ही आता है, आप में नहीं। उसी तरह व्यवहार क्रियायों से (व्रत संयम आदि) आत्मा के अंदर परिवर्तन आते हैं, कषाय मंद होते हैं, विशुद्धि बढ़ती है, गुणस्थान बढ़ते हैं।

28. **आत्मैवआत्मनः गुरु –**पर के माध्यम से आगे बढ़ते बढ़ते एक स्तिथि ऐसी आती है जब पर द्रव्य (शरीर, इन्द्रियां, गुरु आदि) सब बाहर रह जाते हैं और उस समय आत्मा ही आत्मा का गुरु हो जाता है।

29. जब तक आत्मा अपना गुरु स्वयं नहीं बना तब तक उसे बाहरी गुरु से निर्देश लेने पड़ते हैं, ध्यान कैसे करें, एकाग्रता कैसे लायें आदि। इन्हीं निर्देशों में अभ्यस्त होते हुए वो स्वयं ही सीखता चला जाता है और अपना गुरु स्वयं बन जाता है।

30. मोक्ष मार्ग दो प्रकार का होता है - पहले व्यवहार और फिर निश्चय। जब व्यवहार का आभास छूट जायेगा और अपने ध्यान में निमग्न होगा तो वह निश्चय मोक्ष मार्ग में लीन हो रहा होगा। अन्तर्मुहूर्त के बाद वह केवलज्ञान को प्राप्त कर लेगा।

31. स्वयंभूपना कभी अच्छा बुरा नहीं होता।उपशम श्रेणी (11 गुणस्थान से) से नीचे गिरने में बुरा घटित कर सकते हैं परन्तु वह भी कर्ता (अपने) पुरुषार्थ की कमी के कारण होता है।

32. व्यवहार से ही निश्चय मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होते है और उससे केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। केवलज्ञान का साक्षात /वास्तविक कारण निश्चय ही कहलाता है।

33. **शंभू**अर्थात जो शम / शांत रूप हो गया, साम्यभाव रूप हो गया है।

भंगविहूणो य भवोसंभवपरिवज्जिदोविणासोहि।
विज्जदितस्सेवपुणोठिदि-संभवणाससमवाओ॥ १७ ॥

अन्वयार्थ-(**भंगविहूणो य भवो**) उस (शद्धात्म स्वभाव को प्राप्त आत्मा के) विनाश रहित उत्पाद हैं, और (**संभवपरिवज्जिदोविणासोहि**) उत्पाद रहित विनाश हैं, (**तस्सेवपुणो**) उसके ही फिर (**ठिदि-संभवणाससमवाओविज्जदि**) ध्रौव्य, उत्पाद और विनाश का समभाव (एकत्रित समूह) विद्यमान हैं।

1. जो आत्मा स्वयंभू बन गया उसमें जो उत्पाद है वह विनाश से रहित है और जो नाश हुआ है वह उत्पाद से रहित है।

2. आत्मा अशुद्धात्मा से शुद्धात्मा (केवलज्ञानी) हो गया अर्थात उत्पाद हो गया परन्तु यह उत्पाद विनाश रहित है यानि वापस कभी अशुद्ध नहीं होगा। अनंत सुख का कभी नाश नहीं होगा।

3. क्षायोपशम ज्ञान अब क्षायक ज्ञान हो गया वह पुनः परिवर्तित होकर कभी क्षायोपशम ज्ञान नहीं होगा।

4. सिद्धावस्था में भी उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य हर समय चल रहा है।उनकी शुद्ध पर्याय में हर समय पर एक नई शुद्ध पर्याय उत्पन्न होती है और वह पुरानी पर्याय छूट जाती है। और वह शुद्ध आत्मा ज्यों का त्यों बना रहता है।

5. सिद्ध भगवन बन गए तो सिद्ध पर्याय कभी भी नष्ट नहीं होगी। जो एक पूरी समूची पर्याय है, वह कभी नष्ट नहीं होती।

6. पर्याय के दो भेद होते हैं - अर्थ पर्याय (प्रति समय उत्पन्नध्वंशी - हर समय उत्पन्न और नष्ट होती है) और व्यंजन पर्याय (अधिक समय वाली)।

7. सिद्ध भगवान के व्यंजन पर्याय के रूप में जो शुद्ध पर्याय है, वह जैसी की तैसी बनी रहेगी। लेकिन अर्थ पर्याय के रूप में उसमें उत्पाद व्यय चलता रहेगा।

8. शुद्ध द्रव्य में सदृश्य (यह ही जैसी) पर्याय होती हैं और अशुद्ध द्रव्य में विसदृश्य पर्याय होती हैं (बदल बदल कर जैसे बुढ़ापा, मृत्यु, मनुष्य आदि)।

9. शुद्धोपयोग के प्रसाद से जो शुद्धात्म तत्त्व की प्राप्ति हुई है इसमें भी उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य घटित होता है। वही आत्मा जो संसारी अवस्था में अशुद्ध था वही शुद्धात्मा हो गया, स्वयंभू हो गया।

पदार्थकीपर्यायकाउत्पादऔरव्यय (गाथा०१८)

उप्पादो य विणासोविज्जदिसव्वस्सअट्ठजादस्स।
पज्जायेणदुकेणविअट्ठोखलुहोदिसब्भूदो॥ १८ ॥

अन्वयार्थ-(**उप्पादो**) किसी पर्याय से उत्पाद (**विणासो य**) और किसी पर्याय से विनाश (**सव्वस्स**) सर्व (**अट्ठजादस्स**) पदार्थ मात्र के (**विज्जदि**) होता है, (**केणविपज्जायेणदु**) और किसी पर्याय से (**अट्ठो**) पदार्थ (**खलुहोदिसब्भूदो**) वास्तव में ध्रुव है।

1. उत्पाद और विनाश सभी पदार्थों में विद्यमान रहता है।
2. किसी पर्याय के द्वारा उत्पाद और किसी पर्याय के द्वारा विनाश होता है, यह सभी पदार्थों में निरंतर चलता रहता है। पर्याय को हम पदार्थ का form कह सकते हैं और उसका modification कर सकते हैं।
3. पदार्थ (substance) सदभूत होता है यानि अस्तित्व (existence) वाला होता है।
4. द्रव्य, गुण और पर्याय इन तीनों से सहित अर्थ को ही पदार्थ कहा जाता है।
5. जैनागम में पदार्थ का उत्पन्न होना या नष्ट होना नहीं बताया गया है, पदार्थ तो सदभूत है परन्तु इसकी पर्याय उत्पन्न और नष्ट होती हैं
    a. सांख्य मत में पदार्थ एकांत रूप से कूटस्थ नित्य होता है
    b. बौद्ध मत में पदार्थ एकांत रूप से हर समय क्षणिक होता है। हर समय पूरा पदार्थ ही नया बन जाता है और एक क्षण पुराना पदार्थ नष्ट हो जाता है
    c. जैनागम में पदार्थ कथंचिन्नित्य और कथंचित्अनित्य होता है - न एकांत रूप से क्षणिक होता हैऔर न एकांत रूप से कूटस्थ होता है
6. पर्याय के साथ में द्रव्य भी बदलता है। द्रव्य जब भी कहा जायेगा तो पर्याय के साथ कहा जायेगा।
    a. जैसे जब भगवान सर्वज्ञ बन गए तो वे अपनी अशुद्ध पर्याय तो छोड़ कर शुद्ध पर्याय को प्राप्त हुए। उनका द्रव्य भी अशुद्ध से शुद्ध हो गया।
7. पर्याय के साथ बदलते हुए द्रव्य के स्वभावभूत गुणों में परिवर्तन नहीं होते हैं। इन्हें द्रव्य के पारिणामिक भाव कहते हैं।
    a. जैसे सिद्ध अवस्था को प्राप्त करने पर भी जीव का जीवत्व भाव कभी नष्ट नहीं होता। पहले अशुद्ध दशा में जीवत्व भाव चलता था और अब शुद्ध जीवत्व का भाव चल रहा है। उसे

जीवत्व पारिणामिक भाव कहते हैं और यह जीव का आधार है जो भाव जीव से कभी भी छूटता नहीं है।

8. तीनों काल में संसारी अवस्था में यह जीव किसी भी पर्याय में जीता है तो चार प्राणों (इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छवास) के साथ जीता है। संसार में रहने के लिए चेतना को शरीर चाहिए और शरीर को संचालन के लिए चार प्राण चाहिए।
9. जैसे ही चार प्राण परिवर्तित हो जाते हैं तो कहने में आता है की जीव मर गया (बोलचाल में)।
10. निश्चय नय से चेतना ही जीव का प्राण है जिसे हम चैतन्य भाव या जीवत्व भाव भी कह सकते हैं।
11. जीव के पारिणामिक भाव के दो भेद हैं - अशुद्ध पारिणामिक भाव (जब तक जीव संसार में चार प्राणों के साथ जीता है तो उसे प्राण रहित चेतना की अनुभूति नहीं हो सकती) और शुद्ध पारिणामिक भाव
12. **भ्रान्ति**: द्रव्य तो हमेशा शुद्ध होता है, सिर्फ पर्याय अशुद्ध होती है
    a. आचार्य कहते हैं कि द्रव्य के बिना पर्याय अलग से कोई चीज नहीं होती।
    b. जिस तरह एक कपड़ा जिसमें मैल लग गया है, उसे साफ़ करने के लिए कपड़ा ही ले जाना पड़ेगा, उसके मैलेपन (उसी कपडे की एक पर्याय) को अलग निकाल कर नहीं ले जा सकते। और जब कपड़ा साफ़ हो जायेगा तो उसका द्रव्य और पर्याय दोनों ही शुद्ध हो जायेंगे
    c. शुद्ध द्रव्य की शुद्ध पर्याय होती हैं और अशुद्ध द्रव्य की अशुद्ध पर्याय हैं।
    d. द्रव्य की शुद्धता का मतलब यह है कि उसमें शुद्ध होने की शक्ति है। वह वर्तमान में अशुद्ध है।
    e. एकांत रूप से अगर जीव को अमूर्तिक (शुद्ध) मान लिया तो उसे संसार दशा में भी अमूर्तिक मानना पड़ेगा। फिर वह मूर्तिक सिद्ध नहीं हो सकता।
13. जीव सिद्ध/ शुद्ध दशा में अमूर्तिक होता है (इन्द्रिय का विषय नहीं बनता) किन्तु संसार / अशुद्ध दशा में यह कथंचित्मूर्तिक होता है (इन्द्रिय का विषय बनता है)। स्वाभाव की अपेक्षा उसमें अमूर्तिक बनने की शक्ति है। और शुद्ध दशा में परिणमन करते ही वह अमूर्तिक हो जायेगा।
14. **भ्रान्ति:**द्रव्य तो वैसा ही रहता है, द्रव्य में कोई परिवर्तन नहीं आता
    a. ऐसा कहना गलत है। द्रव्यत्व में परिवर्तन नहीं आता, ये कहना चाहिए।
    b. "त्व" लगने से वह उसका गुण / भाव हो जाता है जैसे जीव और जीवत्व, द्रव्य और द्रव्यत्व
    c. द्रव्य तो समूचा बदल गया परन्तु उसके द्रव्यत्व गुण वही हैं
    d. जैसे युवावस्था की आत्मा (द्रव्य) शिशु अवस्था की आत्मा से ज्ञान, दर्शन आदि गुणों में और आकार में विकसित होती है। उसकी बाह्य पर्याय युवावस्था के शरीर और शिशु के शरीर में तो अंतर होता ही है।

15. आठ वर्ष के बाद ही मनुष्य सम्यग्दर्शन के योग्य होता है
16. द्रव्यार्थिकनय से द्रव्य में ध्रोव्यपना कहा जाता है। अर्थात ध्रुविता उसकी बनी हुई है - मानो वह द्रव्य था, है और रहेगा।
17. द्रव्य में परिणमन समूचा होता है (एक एक अंश में)।
18. आत्मा के अंदर द्रव्य, गुण और पर्यायों के साथ परिणमन होता है। जैसे बाल्यावस्था से युवावस्था में आत्मद्रव्य, गुण और पर्याय तीनों ही परिणमित हुई परन्तु आत्मा वही रही। इसे ध्रौव्य कहते हैं। बाल्यावस्था का व्यय, युवावस्था का उत्पाद और आत्मा का ध्रौव्यपना।
19. दो प्रकार के नय होते हैं - द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय।द्रव्यार्थिकनय द्रव्य के द्रव्यत्व भावों को बताएगा और पर्यायार्थिकनय पर्याय को बतायेगा। और पर्यायार्थिकनय में तीनों चीजें (द्रव्य, गुण और पर्याय) आ सकती हैं।
20. कहीं कहीं आचार्यों ने ध्रौव्य को भी पर्यायथिकनय से स्वीकार किया है। उत्पाद में भी पर्याय है, व्यय में भी पर्याय है और ध्रुवपना भी उसकी एक पर्याय है।
    a. द्रव्यार्थिकनय बिल्कुल सामान्य को ग्रहण करने वाला है, उस द्रव्य के द्रव्यत्व को, सामान्य को।
    b. द्रव्य भी चूंकि पर्याय के साथ बदल रहा है, इसलिए द्रव्य को भी हम कहेंगे कि पर्याय के द्वारा पर्याय के वश किसी पर्याय से वह ध्रुव भी है और किसी पर्याय से उत्पाद है और किसी पर्याय से विनाश हैं।
    c. पर्याय में भी उत्पाद व्यय और ध्रुव तीनों होते हैं। यह एक नया विषय है।
21. यह द्रव्य, गुण पर्याय को समझने का प्रयोजन है - किसी भी पर्याय के नष्ट होने पर आपको दुःख नहीं होना है क्योंकि ये अपना आत्म द्रव्य, इस पर्याय के छूटते ही नई पर्याय पुन: प्राप्त करेगा।
22. पर्याय के उत्पाद और व्यय को रोका नहीं जा सकता फिर भी उसको पकड़ने को तैयार होना और उसके लिए दुखी होना ही पर्याय मूढ़ता, पर्याय दृष्टि कहलाती है।
23. पर्याय दो प्रकार की निकलती हैं - सदृश्य पर्याय (समान) और विसदृश्य (असमान)
24. **चिंतन**: मनुष्य पर्याय की अपेक्षा बाल, युवा और वृद्ध पर्याय सदृश्य पर्यायें हैं और मनुष्य जीवन की last पर्याय के बाद की पर्याय विसदृश्य (असमान) पर्याय है। तो जो दुःख लगता है वो उस पर्याय की विसदृश्यता और इतने समय से सदृश्य पर्यायों के मोह के कारण होता है।
25. पिछली पर्याय देखोगे तो दुख होगा, अगली देखोगे तो हर्ष होगा और अगला पिछला कुछ न देख कर के, केवल द्रव्य को देखोगे तो समभाव बना रहेगा।
26. द्रव्य गुण पर्यायों का यह परिणमन समझ कर के, जिस परिणमन को हम रोक नहीं सकते, जिस भाव को हम बदल नहीं सकते, उसमें हमें माध्यस्थ हो जाना चाहिए

27. माध्यस्त होने का मतलब है किहम अपने परिणामों को शांत बना लें कि ये पर्याय छूट रही है तोछूटेगी। लेकिन मेरा जीवतत्वतो कभी भी नष्ट होने वाला नहीं है।मेरा प्राण तो चेतना है।
28. छोड़ने का अभ्यास करो, तो सबकुछ छोड़ने के समय पर भी कोई दुःख नहीं होगा।
29. व्यवहार में मोही व्यक्ति हर काम उल्टा करता है, उल्टी बुद्धि से चलता है
    a. जिसके लिए मरना है, उसके लिए जो यह रोना होना चाहिए वो रोता नहीं, दूसरे रोते हैं
    b. जब मर जाता है, चला जाता है आदमी, उस समय जब कुछ सुनता नहीं है तब हम उसको सुनाते हैं - राम राम सत्य राम राम सत्य है
30. गुरु के मरण पर शिष्य को दुःख तो होता है परन्तु वह दुःख भी तात्कालिक होता है और सम्यकपना के साथ होता है, मोह के साथ नहीं। इसी तरह पुण्यतिथि मनाना भी उनके चारित्र को याद करने के लिए होता है, मोहवश नहीं।
    a. आदिपुराण के अनुसार आदिनाथ भगवान के मोक्ष होने पर भारत चक्रवर्ती भी रोए थे
    b. भगवान महावीर स्वामी के मोक्ष जाने पर गणधरपरमेष्ठी को भी हुआ था

अरिहंतभगवानकास्वरूप (गाथा०१९-०२१)

तंसव्वट्ठवरिट्ठंइट्ठंअमरासुरप्पहाणेहिं।
जेसद्दहंतिजीवातेसिंदुक्खाणिखीयंति ॥ १९ ॥

अन्वयार्थ- (सव्वट्ठवरिट्ठं)जो कि सभी धर्मों में वरिष्ठ हैं**(अमरासुरप्पहाणेहिं)**देव और असुर मुख्यजनों से**(इट्ठं)**जो स्वीकृत है**(तं)**उन जिनेन्द्रभगवान् की**(जेजीवा)**जो जीव**(सद्दहंति)**श्रद्धा करते हैं**(तेसिं)**उनके**(दुक्खाणि)**दुःख**(खीयंति)**नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

1. यह गाथा आचार्य अमरचंद्र जी महाराज जी की टीका में नहीं आती है, किन्तु जयसेन महाराज और प्रभाचंद जी महाराज की टीका में आती है।
2. स्वयंभू भगवान (जो शुद्धोपयोग कि फल से बने हैं; जो सभी धर्मों में, सभी प्रकार के अर्थों में वरिष्ठ हैं और अमर और असुरों के प्रधानों द्वारा इष्ट हैं) की जो श्रद्धा रखते हैं उनके दुखों का क्षय हो जाता है।
3. सभी कर्मजन्य दुःख (तात्कालिक और त्रैकालिक दोनों) स्वयंभू भगवान की श्रद्धा से नष्ट हो जाते हैं।
4. **भ्रान्ति**: आपके भगवान तो वीतराग हैं, तो उनके दर्शन, पूजा से हमारे दुःख क्या दूर होंगे?
    a. दर्शन पूजन तो बहुत बड़ी बात हो गयी, सिर्फ श्रद्धा मात्र से सभी दुःख नष्ट हो जाते हैं
    b. बिना आस्था के, बिना भगवान का स्वरूप समझे ऊपर ऊपर से पूजा करने से दुःख दूर हो जाएँ ऐसा जरूरी नहीं है।
    c. संशय के साथ दुःख दूर कैसे हो जायेंगे?
5. अरिहंत भगवान, सिद्ध भगवान के स्वरुप को जानकर, उनके द्वारा किये पुरुषार्थ और वे कैसे मोक्ष गए आदि की बारीकी समझकर; उन भगवान के ऊपर श्रद्धा करने से उनको नमस्कार करना, पूजन करना विशेष गुणकारी होगा।
6. अगर अपने कर्मों को जड़मूल से, आत्मा से विनष्ट करना चाहो तो ऐसे इष्ट भगवान की हमेशा श्रद्धा के साथ में पूजा, अर्चना और दर्शन करो और ऐसे भगवान को हमेशा अपने लिए श्रद्धा का विषय बनाये रखो।
7. यह विश्वास की बात है कि अपने सारे दुःख, सारे अनिष्ट उन्हीं के विश्वास से, उन्हीं की श्रद्धा करने से मिट रहे हैं, मिटते हैं और आगे भी मिटेंगे। इसी का नाम श्रद्धान है।

पक्खीणघादिकम्मोअणंतवरवीरिओअधिगतेजो।
जादोअदिंदिओ सो णाणंसोक्खं च परिणमदि॥ २०॥

अन्वयार्थ- (पक्खीणघादिकम्मो)जिसके घाति कर्म क्षय हो चुके हैं, **(अदिंदिओजादो)**जो अतिन्द्रिय हो गया है**(अणंतवरवीरिओ)**अनन्त जिसका उत्तम वीर्य है और**(अधिगतेजो)**अधिक जिसका (केवलज्ञान और केवलदर्शन रूप) तेज है**(सो)**वह स्वयंभू आत्मा**(णाणंसोक्खं च)**ज्ञान और सुख रूप**(परिणमदि)**परिणमन करता है।

1. स्वयंभू भगवान -
    a. के घाती कर्म, जो ज्ञान आदि गुणों का घात करते हैं या ढांकने में सहायक बनते हैं, वे नष्ट हो गए हैं।
    b. की आत्मा में अंतराय कर्म (मुख्यतः वीर्यन्तराय कर्म) के नाश होने के कारण, अनंत वीर्य (वीर्य अर्थात आत्मा की शक्ति) प्रकट हो गयी है।
    c. के अंदर ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्मों का नाश हो जाने से अनंत ज्ञान और अनंत दर्शन का एक अद्भुत तेज पैदा हो गया है।
        i. अनंत ज्ञान और दर्शन की शक्तियां जो प्रकट हो गई हैं, उससे वह इंद्रियों के बिना भी अनंत पदार्थों को जान सकते हैं और अनंत पदार्थों को देख सकते हैं।
    d. इन्द्रिय से नहीं जानते, देखते।वे तो अपने ज्ञान से पूरे जगत को एक साथ जानते हैं, देखते हैं। आत्मा से direct उनका देखना, जानना होने लग जाता है।वोअतिन्द्रिय हो जाते हैं।
    e. की आत्मा ज्ञान में परिणमन कर गई। वह आत्मा का ज्ञान स्वभाव पूर्णतया प्रकट हो गया, अपनी शक्ति के साथ। वह ज्ञान में और सुख में अतिन्द्रिय होकर के परिणमन कर जाते हैं। यानि इंद्रियों के बिना ज्ञान और सुख में वह लीन रहते हैं।
2. अतिन्द्रिय हो गए यानी इंद्रियों से परे हो गए, इंद्रियों के पार चले गए। इंद्रियों से उन्हें कोई भी प्रयोजन नहीं रहा।
3. इंद्रियों का ज्ञान क्षयोपशमिक ज्ञान है - कभी काम कभी ज्यादा होता रहता है जैसे बचपन में काम, युवावस्था में ज्यादा और वृद्धावस्था में वापस कम।
4. कर्मों का क्षयोपशम है तो ये इंद्रियां अपने लिए काम कर रही हैं।
5. मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान क्षयोपशमिक ज्ञान हैं। केवलज्ञानक्षायक ज्ञान होता है।
6. इन्द्रिय ज्ञान तो बहुत छोटा सा ज्ञान है और बहुत चीजों पर निर्भर करता है जैसे आँख का सही होना, वास्तु के बीच में अवरोध, सही प्रकाश होना आदि।
7. ज्ञान कभी भी औपशमिक नहीं होता है। ज्ञान में केवल दो ही भाव होते हैं - क्षयोपशमिक और क्षायिक।

8. जब तक संसार अवस्था रहेगी, इन्द्रिय ज्ञान रहेगा, शरीर से संबंध जुड़ा रहेगा तब तक वह क्षयोपशमिक ज्ञान हैं और जब इन्द्रिय ज्ञान छूट जाता है तो वह क्षायिक ज्ञान बन जाता है।
9. अतिन्द्रिय ज्ञान, क्षायिक ज्ञान, केवलज्ञान, अनंत ज्ञान - ये सब एकार्थवाची हैं।इन ज्ञान को धारण करने वाले को हम सर्वज्ञ कहते हैं।
10. हमें भगवान का निरपेक्ष भक्त बनना चाहिए, सापेक्ष नहीं। जब सही भगवान को समझने लगोगे तो भक्त भी सही बन जाएगा अपने आप।
11. भगवान हमारी अपेक्षा नहीं रखते कि हम भगवान को देखें तभी हम भगवान की भक्ति करने वाले होंगे। कहीं पर भी रह कर के भगवान की भक्ति करोगे, आपके लिए भक्ति फलदायी होगी।
12. भगवान दुनिया का दुख देख रहे हैं लेकिन उन के अंदर किंचित मात्र भी दुनिया के दुःख से कोई दुःख उत्पन्न नहीं होता है। और वह हमेशा अपने ही सुख में लीन रहते हैं।
13. भगवान किसी के ऊपर मोह के कारण से न कभी करुणा करते हैं और न कभी कोई दया दिखाते हैं। भगवान दया नहीं दिखाते और जो दया दिखाते हैं, वो भगवान नहीं होते।
14. भगवान को आपके दुख दूर नहीं करना। आप अपने दुःख भगवान के ऊपर यथार्थ श्रद्धा रखकर के खुद दूर कर लोगे, यह सिद्धांत है। और आप भी एक न एक दिन स्वयं भगवान बनकर के भगवान को देख सकोगे।
15. अतिन्द्रिय आत्मा जब ज्ञान और सुख में परिणमन करता है तो उस आनंद के लिए और किसी भी बाह्य साधन की कोई ज़रूरत नहीं पड़ती है।
16. सम्यकदृष्टि जीव में भी यही ज्ञान स्वभाव और सुख स्वभाव में परिणमन करने का भाव आता है कि मैं भी अपनी आत्मा को ऐसे ज्ञान स्वभाव और सुख स्वभाव से परिणमन कराऊँ। इन्द्रिय सुख में नहीं लुभाऊँ।
17. जब तक इन्द्रिय सुख का लोभ नहीं छोडोगे तब तक अतिन्द्रिय सुख की भी प्राप्ति नहीं हो सकती है। और उसका श्रद्धान ज्ञान होने के बावजूद भी उस अतिन्द्रिय सुख के लिए कोई भी पुरुषार्थ बन नहीं सकता है।
18. स्त्रहसनाम में भगवान का एक नाम महाभोगी भी होता है।वे सुख ही तो भोग रहे हैं।

सोक्खंवापुणदुक्खंकेवलणाणिस्सपत्थिदेहगदं।
जम्हा अदिंदियत्तंजादंतम्हादुतंणेयं ॥ २१ ॥

अन्वयार्थ- (केवलणाणिस्स)केवलज्ञानी के**(देहगदं)**शरीर सम्बन्धी **(सोक्खं)**सुख**(वापुणदुक्खं)**या दुःख**(णत्थि)**नहीं हैं**(जम्हा)**क्योंकि**(अदिंदियत्तंजातं)**अतीन्द्रियता उत्पन्न हुई है**(तम्हादुतंणेयं)**इसलिए ऐसा जानना चाहिए।

1. केवलज्ञानीके देहगत सुख और दुःख नहीं होता है क्योंकि वेअतिन्द्रिय हो गए हैं।
2. केवलज्ञानी के सब प्रकार के घाती कर्मों का नाश हो गया लेकिन अघाती कर्म तो अभी बचे हैं। शरीर भी बचा है और शरीर से वह विहार करते हैं।
3. विदेह क्षेत्र में ऐसे भगवान हुए हैं हो आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान को प्राप्त हो गए और उनकी आयु एक पूर्व कोटि की है।
4. **भ्रान्ति**: क्या विदेह क्षेत्र के वे भगवान कभी भी शरीरगत सुख और दुःख को नहीं महसूस करेंगे?
    a. एक पूर्व कोटि साल तक शरीर चलाने के लिए भूख तो लगाती होगी? शरीर साधने के लिए तो कुछ आहार लेते होंगे?
    b. अभी तो असातावेदनीय कर्म का भी उदय होता है तो सुख दुःख तो होता होगा? असातावेदनीय से ही भूख लगाती है।
5. **निवारण**:
    a. केवलज्ञान होती ही भगवान का शरीर परमौदारिक हो जाता है। औदारिक शरीर में जो भी खाया पिया जाएगा, उससे शरीर में वृद्धि होगी, हड्डी, मांस, खून सब बढ़ेगा। लेकिन जब परम औदारिक शरीर बन जाता है तो उसमें धातुओं का परिणमन नहीं होता हो। वह धातु से रहित हो जाता है। उसमें कभी कोई रोग नहीं होते।
    b. वेदनीय कर्म जब तक मोहिनीय के साथ रहता है तभी तक दुःख देता है और जितनी मोहिनीयकर्म का शक्ति होगी, अनुभाग होगा, वेदनीय कर्म उतना ही आपको दुःख देगा। भगवान का मोहनीय कर्म तो नष्ट हो गया है।
    c. अगर तुमने भगवान को भोजन करने वाला मान लिया तो तुम्हारा भगवान भी मोह से सहित हो गया।केवलज्ञानी नहीं रहा।
    d. भगवान के ईयापथआस्रव से जो सातावेदनीय कर्म का आस्रव होता है, वह तो इतना अधिक होता है कि उसके आगे ये जो असाता का उदय भीतर से चल रहा है, वो उसके आगे कोई भी काम नहीं कर पाता है।
    e. ये उनके अंदर का जो सातावेदनी का सुख है और उनका जो अनंत आत्मिक सुख है ये बहुत सशक्त होता है। इसलिए भगवान को कभी क्षुधा नहीं, पिपासा नहीं।
    f. "क्षुत्पिपासा - जरातङ्क - जन्मान्तक - भयस्मयाः।" -भगवान में क्षुधा नहीं, पिपासा नहीं ऐसा रत्नकरण्डकश्रावकाचार में बताया है।

g. सामान्य मुनि महाराज भोजन करते हैं तो वह भी अंतराय का पालन करते हैं। केवलज्ञानी कैसे कर लेंगे भोजन, जब सामने सब कुछ दिख रहा होगा केवलज्ञान में - अनंत गन्दगी देखकर भी अगर वे भोजन कर लेंगे तो उनकी कितनी आशक्ति होगी?

h. केवलज्ञानी को कभी कवलाहार की ज़रुरत नहीं पड़ती

i. उनके लिए हमेशा लाभ अंतराय कर्म का क्षय हो जाने से, अनन्त जो कर्म परमाणु अच्छे अच्छे वाले होते हैं, वो सब उनके शरीर में प्रति समय आते हैं और प्रति समय उनसे निकलते रहते हैं।इस कारण से भी अगर पूर्व कोटी वर्ष तक भी अपना जीवन निकालें तो बिना कवला आहार के, बिना ग्रास के, बिना आहार के उनका पूरा का पूरा जीवन निकल जाता है।

6. असातावेदनीय कर्म का उदय चौदहवें गुणस्थान तक हो सकता है।
7. ईयापथआस्त्रव में हर समय उनके अंदर सातावेदनीय कर्म का आना और जाना रहता है।
8. सामान्य से मुनि महाराज छह कारणों से भोजन करते हैं। अपनी क्षुधा का शमन करने के लिए, ज्ञान, ध्यान की सिद्धि के लिए, वैयावृत्ति करने के लिए और धर्म की चिंता से उनका भोजन होता है।

केवलज्ञानकास्वरूप (गाथा०२२-०२३)

परिणमदोखलुणाणंपच्चक्खासव्वदव्वपज्जाया।
सो णेवतेविजाणदिओग्गहपुव्वाहिकिरियाहिं ॥ २२ ॥

अन्वयार्थ-(**खलु**)वास्तव में (**णाणंपरिणमदो**) ज्ञान रूप से (केवलज्ञान रूप से) परिणमित होते हुए केवल भगवान् के (**सव्वदव्वपज्जाया**) सर्व द्रव्य-पर्यायें (**पच्चक्खा**) प्रत्यक्ष है, (**सो**) वे (**ते**) उन्हें (**ओग्गहपुव्वाहिंकिरियाहिं**) अवग्रहादि क्रियाओं से (**णेवविजाणदि**) नहीं जानते।

1. इन्द्रिय ज्ञान बहुत सारी चीजों पर depend होता है। जैसे देखने के लिए - आँखों का काम करना ज़रूरी है, प्रकाश भी सही होना चाहिए, जो वस्तु देखी जानी है वह भी सामने होनी चाहिए आदि
2. जब भगवान ज्ञान स्वरूप परिणमन कर गए, उनका ज्ञान पूरा का पूरा ज्ञान के रूप में ही परिणमन हो गया। परिणामित का मतलब - वो पहले कुछ और रूप में था, अब कुछ और रूप में हो गया।भगवान का ज्ञानपहले इन्द्रिय ज्ञान था, अब अतिन्द्रिय ज्ञान हो गया।माने जो ज्ञान था, वो पूरा का पूरा प्रकट हो गया।
3. अतिन्द्रिय ज्ञान के रूप में परिणमनकरते ही उन्हें सभी द्रव्य और सभी पर्याय प्रत्यक्ष हो गई।
4. पदार्थ प्रत्यक्ष होने से उन्हें इंद्रियों के बिना, मन के बिना, अपनी ही आत्मा में सब कुछ, अपनी ही आत्मा के ज्ञान से जानना और देखना होने लगा।
5. अगर यही श्रद्धान हो जाये कि इंद्रियों के बिना भी कुछ जाना जा सकता है, देखा जा सकता है तो उस अदृश्य शक्ति पर भी श्रद्धान अपने आप होने लगेगा जो बिना इन्द्रिय के जान रहा है, देख रहा है और जिसे आत्मा या चेतन कहते हैं।
6. आत्मा का प्रत्यक्ष हो जाने का अर्थ आत्मा में सब प्रत्यक्ष हो गया ना कि आत्मा सबको प्रत्यक्ष हो गयी।
7. इन्द्रिय के बिना जानना देखना, आत्मा का प्रत्यक्ष होना आदि हमें दिखाई नहीं देगा मगर हम उसे अपनी बुद्धि से, अनुभव से, अपने अनुमान से, तर्क के माध्यम से समझ सकते हैं।
8. अधिकतर लोग आत्मा को नहीं मानते और वे mind को ही सब कुछ समझते हैं और उसके अनेक भेद करते हैं जैसे conscious, unconscious, subconscious mind
9. mind अलग चीज है और आत्मा अलग चीज है।ज्ञान mind में नहीं रहता है। ज्ञान आत्मा में रहता है। आत्मा का खजाना, आत्मा का भंडार जो है, वो ज्ञान है।

10. केवलज्ञानी को सब कुछ प्रत्यक्ष हो जाता है। लेकिन संसारी जीव उन्हें नहीं देख सकता है। दूसरेकेवलज्ञानी उन्हें सकेंगे।
11. केवलज्ञानी के लिए सभी द्रव्य और उनकी सभी पर्यायें प्रत्यक्ष हो जाती हैं - जो अनन्तकाल में पहले हो चुका है और आगे जो भी होगा। **"सर्व - द्रव्य - पर्यायेषुकेवलस्य"** तत्वार्थ सूत्र प्रथम अध्याय।
12. केवलज्ञानी पदार्थों को अवग्रहपूर्वक नहीं जानते। उनका ज्ञान अक्रम और युगपत (simultaneous) होता है।
13. इन्द्रिय ज्ञान में किसी भी चीज का जानना क्रम क्रम से ही होता है। एक साथ पूरा जानना नहीं होता।
14. **अवग्रहेहावाय -धारणा।** अवग्रह, इहा, अवाय और धारणा मतिज्ञान के अवयव हैं और ये क्रम क्रम से लगते हैं।
    a. अवग्रह दर्शन के बाद होने वाला मतिज्ञान की पहली faculty है जिसमें मात्र आभास होता है - कि हाँ यह है, यह मनुष्य है या कोई पक्षी है
    b. इहा ज्ञान अवग्रह के बाद में आगे जानने की इच्छा करता है।ये क्या है या ये कौन है या यह कैसे है - ये सारे प्रश्न इहा से शुरू होते हैं
    c. अवाय ज्ञान decide करेगा की यह क्या है
    d. धारणा ज्ञान उस decision को अपने concept में ले आता है और अपने अंदर निश्चित कर लेता है कि यह यह है। उसको जितने समय तक नहीं भूलेगा, वह उसका धारणा ज्ञान होगा।
    e. उदाहरण - जैसे कोई नया व्यक्ति आया तो सबसे पहले अवग्रह होगा कि कोई है, फिर प्रश्न आएंगे दिल्ली का है या हिंदी भाषी है या दक्षिण भारत का है आदि ये सभी जानने की इच्छायेंइहा ज्ञान हो गयी। उसकी भाषा से यह निष्कर्ष निकलना कि यह दक्षिण का है ये अवाय ज्ञान हो गया। कुछ समय पश्चात भी जब वह व्यक्ति वापस आये तो वह दक्षिण का है ऐसा ज्ञान में आना धारणा हो गयी।
15. केवलज्ञान को यथार्थ रूप से समझना, केवलज्ञानी हुए बिना नहीं समझा जा सकता है।
16. केवलज्ञान के बारे में जानने का हमारा प्रयोजन है कि
    a. हम अपने अंदर दृढश्रद्धान बनायें कि ज्ञान ऐसा भी होता है और जो जो भगवान जान रहे हैं और जो हम जान रहे हैं उसमें क्या difference है?
        i. हम अवग्रहादि ज्ञान क्रम सेकरते है वे अक्रम से, युगपत एक साथ सभी पदार्थों को जानते हैं
        ii. हम पराधीन होकर पदार्थ जानते हैं वे प्रत्यक्ष जानते हैं

b. हम ज्ञान के विराट स्वरूप को समझ सकें कियथार्थ जगत उसमेंजैसा है वैसा आ जाता है परन्तु ज्ञानावरणी कर्मों ने उसकी विराटता को ढक रखा है। हमारा इन्द्रिय ज्ञान तो मोह उत्पन्न कराने वाला है।
c. अरिहंत सिद्ध भगवान स्वरूप उनकी आत्मा स्वरूप समझ सकें
d. ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान जिसमें सभी पदार्थ अक्रम से युगपत एक साथ दिखें, हमारी श्रद्धा का विषय बने

17. **भ्रांति**: विज्ञान के अनुसार हर चीज सिर्फ दिमाग तक ही सीमित है। भूत और भविष्य का जानना भी मुमकिन है अगर दिमाग का कोई हिस्सा active हो जाये तो
    a. दिमाग तो आत्मा का एक औजार (instrument)
    b. आत्मा के ऊपर से जब ज्ञानावरणी कर्म हटेंगे, ज्ञान उतना ही प्रकट होगा, कभी mind के माध्यम से कभी उसके बिना; परन्तु यह सभी ज्ञान incomplete होता है
    c. बिना senses और mind के जो आत्मा में उत्पन्न होता है वही complete ज्ञान होता है
18. आत्मा की बहुत बड़ी विराट स्थिति है जब वह सभी पदार्थों को प्रत्यक्ष जनता है और यह हर एक मनुष्य के अंदर छिपी हुई है और संसार के हर प्राणी के अंदर छिपी हुई है। जो इस पर श्रद्धान करेगा वही इसे प्राप्त करनेका उपाय करेगा

णत्थिपरोक्खंकिंचिविसमंतसव्वक्ख-गुणसमिद्धस्स।
अक्खातीदस्स सदा सयमेवहिणाणजादस्स ॥ २३॥

अन्वयार्थ-(**सदा अक्खातीदस्स**) जो सदा इन्द्रियातीत (**समंतसव्वक्ख-गुण-समिद्धस्स**) जो सर्व ओर से इन्द्रिय गुणों से समृद्ध हैं (**सयमेवहिणाणजादस्स**) और जो स्वयमेवज्ञानरूप हुए है, उन केवली भगवान् को (**किंचिवि**) कुछ भी (**परोक्खंणत्थि**) परोक्ष नहीं है।

1. केवलज्ञानी के ज्ञान में कुछ भी परोक्ष नहीं होता। उनका ज्ञान प्रत्यक्ष होता है।
2. केवलज्ञानी समस्त इन्द्रियों (अक्ष) के गुणोंसे समृद्ध होते हैं अर्थात इन्द्रिय ज्ञान से परिपूर्ण हैं।
    a. स्पर्शन - गर्म, ठंडा, हल्का, भारी आदि
    b. रसना - खट्टा, मीठा आदि
    c. घ्राण - सुगंध, दुर्गन्ध
    d. चक्षु- काला, नीला इत्यादि

e. कर्ण- क्या बोल रहा है, क्या कह रहा है

3. केवलज्ञानीअतीन्द्रिय हो गए, उनके पास इन्द्रिय ज्ञान तो नहीं है परन्तु उनके पास जो कुछ इन्द्रियों से जानने में आता है वो सब भी जानने की क्षमता होती है
    a. भगवान की उस आत्मा के एक एक प्रदेश में, ये इन्द्रियज्ञान का गुण, परिपूर्ण है
    b. भगवान सभी पदार्थोंको, उनकी पर्यायों को और उनके गुणों को यथार्थ में जानते हैं। वे रसना इन्द्रिय से taste तो नहीं लेंगे लेकिन जानेंगे जरूर कि इस पदार्थ में खट्टापन होता है, इस पदार्थ में मीठापन होता है, इसमें कड़वापन होता है।
    c. अगर भगवान इन्द्रियों से जानने वाली चीजों को नहीं जानते तो वे इन्द्रियों का व्यापार होता है या इंद्रियों की प्रवृत्तियां होती हैं, उनके बारे में कुछ जान ही नहीं सकते वो। फिर तो प्रथमानुयोग कुछ होगा ही नहीं क्योंकि फिर किसी भी कहानी में कुछ सच्चाई बचेगी ही नहीं।
    d. **उदाहरण**: सुभौम चक्रवर्ती जब खीर खा रहा था तो भगवान को खीर गर्म है ऐसा अहसास नहीं हो रहा था परन्तु ज्ञान में था कि वह खीर खा रहा है और खीर गरम है
4. **अक्ष**के अर्थ
    a. **अक्खातीदं**यहाँ अक्ष का अर्थ इन्द्रिय है, जो इन्द्रियों से अतीत हो गए हैं।
    b. प्रत्यक्ष और परोक्ष में अक्ष का अर्थ आत्मा होता है।**अक्षंअक्षंप्रतिवर्तते इति प्रत्यक्षं।**जो आत्मा के पास आत्मा में रहता है, वह कहलाता है प्रत्यक्ष।
5. अगर कोई भी पदार्थ है, किसी भी स्वभाव वाला हो तो वह पदार्थ ज्ञान का विषय जरूर बनता है। वह पदार्थ ज्ञान में जरूर आएगा।
6. संसार में जितने भी मूर्त पदार्थ हो या अमूर्त पदार्थ हो, कोई भी पदार्थ उनके ज्ञान से परोक्ष भूत नहीं होगा
7. ज्ञान की महिमा को जानना ही आत्मा की महिमा को जानना है
8. ये आत्मा के परिणमन की जो प्रक्रिया है, उस प्रक्रिया को पूरा जब हम जान लेते हैं तो हमें ये समझ में आ जाता है कि अशुभोपयोग हमारे लिए छोड़ देने योग्य है। शुभोपयोग हमारे लिए ग्रहण करने योग्य है और शुद्धोपयोग हमारे लिए उस शुभोपयोग से भी बढ़कर के ग्रहण करने योग्य वस्तु है।
9. शुभोपयोग से भी हम केवल दूसरे को अनुभव में ला सकते हैं, जान सकते हैं। लेकिन अपना अनुभव, अपना ज्ञान तो शुद्धोपयोग से ही होगा।
10. शुद्धोपयोग की बात भी सुनोगे, शुद्धोपयोग की चर्चा भी करोगे तो भी वह उपयोग शुभोपयोग ही होगा क्योंकि परिणमन तो पर में ही हो रहा है।
11. बोलना, सुनना इन्द्रिय के जितने भी काम होंगे, ये सब क्या होंगे? पर परिणमन कराने वाले होंगे।

12. सिद्धांत कभी भी, किसी के साथ में पक्षपात नहीं करता है। मुनि महाराज के प्रवचन करने में और श्रावक के सुनने में दोनों में ही शुभोपयोग होता है।
13. अशुभोपयोग विषय कषायों के और इन्द्रिय के विषयों की तुष्टि के लिए होता है।
14. समयसार जी, प्रवचनसार जी आदि ग्रंथों का स्वाध्याय भी शुभोपयोग होगा क्योंकि यह हमें अपने आत्म स्वभाव की प्राप्ति के लिए और सम्यक ज्ञान की वृद्धि के लिए है।
15. शुद्धोपयोग मेंमुंह बंद होगा, इंद्रियां काम करना बंद कर देंगे और स्वयं आत्मा का स्वयं में ही परिणमन प्रारंभ हो जायेगा।
16. संकल्पपूर्वक सब प्रकार के परिग्रह को छोड़कर के, पूर्ण संयम को अपना कर के, वह शुद्धोपयोगी बनता है।
17. केवलज्ञान में जो उस आत्मा ने किया, वो भी दिखेगा और जो पर की आत्माएं कर रही हैं, वो भी देखेगा।
18. केवलज्ञान का प्रयोजन
    a. केवलज्ञानी के लिए -केवल स्वयं को जानना और स्वयं को देखना। पर को जानना और पर को देखना नहीं।
    b. हमारे लिए -हम अपने ज्ञान को केवलज्ञान की तरह बनाने के लिए, उतना विराट बनाने के लिए निरंतर प्रयत्नशील हों

आत्मा,ज्ञान,ज्ञेयकासम्बंध (गाथा०२४-०२६)

आदाणाणपमाणंणाणंणेयप्पमाणमुद्दिट्ठं।
णेयंलोयालोयंतम्हाणाणंतुसव्वगयं ॥ २४ ॥

अन्वयार्थ- (**आदा**) आत्मा (**णाणपमाणं**) ज्ञान प्रमाण है, (**णाणं**) ज्ञान (**णेयप्पमाणं**) ज्ञेय प्रमाण (**उद्दिट्ठं**) कहा गया है, (**णेयंलोयालोयं**) ज्ञेय लोकालोक है, (**तम्हा**) इसलिए (**णाणंतु**) ज्ञान (**सव्वगयं**) सर्वगत-सर्वव्यापक है।

1. आत्मा ज्ञान प्रमाण है अर्थात जहाँ जहाँ ज्ञान है, वहीं वहीं पर आत्मा है।
2. आत्मा कभी ज्ञान को छोड़कर नहीं रहता और ज्ञान भी कभी आत्मा को छोड़कर नहीं रहता।
3. जहाँ जहाँ तक आपको अपने ज्ञान का संवेदन होगा, वहीं वहीं तक आप आत्मा समझ लेना।
4. चेतना का अनुभव ज्ञान के बिना नहीं होगा और ज्ञान का अनुभव जहाँ तक होगा, वहीं तक अपनी चेतना विद्यमान है, यह सिद्ध हो जाएगा।
5. तादात्मसम्बंध का अर्थ "तदएव आत्मा यस्य तत् तादात्म" - वह ही जिसकी आत्मा है। जिसका स्वरूप, वह ही उसके लिए है, वह ही उसका साथ में उसका तादात्म संबंध बताने वाला हो जाता है। तादात्म संबंध कभी भी नष्ट नहीं होता।
6. अग्नि का उष्णता के साथ में तादात्म संबंध होता है। जहां पर अग्नि है, वहीं पर उष्णता है। क्योंकि अग्नि उष्णता के बिना होगी तो ठंडी कहलाएगी और अग्नि कभी ठंडी होती नहीं।
7. आत्मा का ज्ञान के साथ में तादात्म संबंध है।
8. ज्ञान के बिना कभी आत्मा पकड़ने में नहीं आ सकता क्योंकि आत्मा और ज्ञान का तादात्म संबंध है।
9. जहां ज्ञानानुभूति है, वहीं आत्मानुभूति होती है।
10. आचार्य अमृतचंद जी महाराज ने समयसार कलश में लिखा है जो आत्मानुभूति हमें शुद्ध नय से हो रही है, वहीं हमारी ज्ञानानुभूति है और जो शुद्ध नय से हमें ज्ञानानुभूति हो रही है, वही हमारी आत्मानुभूति है।
    a. जिस ज्ञानानुभूति और आत्मानुभूति की बात आचार्य ने की है वह कब होगी? जब आत्मा मोह और राग से बिलकुल रहित होकर के, अपने शुद्ध स्वभाव में शुद्ध उपयोग के साथ में आ जाएगा।
11. अभी हमको जो सामान्य से आत्मानुभूति होती है कि मैं आत्मा हूँ, मैं अपनी आत्मा का अनुभव कर रहा हूँ; यह व्यवहार नय से या अशुद्ध नय से है। यह मोह के साथ है।
12. शुद्ध आत्मा ही शुद्ध नय का विषय बनता है।जब आत्मा का उपयोग शुद्ध होगा तब वह शुद्ध बनेगा।

13. उपयोग की शुद्धि अगर अंतरमुहर्त तक बनी रहती है तो वह सब ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय कर्मों का नाश कर डालती है।
14. सामान्य से होने वाली आत्मानुभूति भी प्रतिकूल परिस्थितियों में छूट जाती है क्योंकि अपना सम्बन्ध शरीर में जुड़ा हुआ है।
15. आत्मा ज्ञान प्रमाण है, आत्मा ज्ञान स्वभाव वाला है, ये तो हमारे लिए केवल अभी श्रद्धा का विषय बन रहा है और ज्ञान का विषय बन रहा है। आचरण का विषय नहीं बन रहा है।
16. पंचम काल में सर्वथा मोह और राग से हटकर शुद्धात्मा की अनुभूति किसी को नहीं होती है।
17. शुद्ध नय से जैसे आत्मा का स्वभाव बताया गया है, उस स्वभाव की भावना करने से ही राग मोह कुछ कम होगा। राग होने पर बार बार अपने उपयोग से उसे हटा कर ज्ञान में लगाना होगा। इस तरह होने वाली ज्ञानानुभूति ही आत्मानुभूति का एक साधन बन जाती है और वही आत्मानुभूति हमारे लिए आत्मा की शुद्धि कराने का भी एक माध्यम बन जाती है।
18. अपना स्व-संवेदन, जो कि ज्ञान मात्र है, के लिए पहले विश्वास किया जाता है; फिर ज्ञान के साथ में उस विश्वास को जमाया जाता है और फिर विश्वास जमाते जमाते ही उसकी भावना की जाती है।
19. आत्मा का मोह से तादात्म सम्बन्ध नहीं है। संयोग सम्बन्ध है।
20. ऐसी भावना करने से कि आत्मा के साथ में तादात्म संबंध, केवल ज्ञान का है और किसी का नहीं है; अपने अंदर निश्चिंतता आती है। जब ज्ञान के साथ में ऐसा जुड़ाव होगा तो अपने आप वह मोह को छोड़ने का भाव भी करेगा और मोह छूटेगा भी।
21. जैसे शुद्ध अग्नि को नहीं पीट सकते किन्तु उसी अग्नि को अगर किसी ठोस लोहे में प्रवेश करा कर उस लोहे की पिटाई की जा सकती है और कथंचित्अग्नि भी पिट जाती है उसी तरह कथंचित्शरीर के संपर्क में आकर आत्मा की पिटाई भी संभव है।
    a. जिस तरह एक ज्ञानी मनाता है की पिटाई अग्नि की नहीं वस्तुतः लोहे की होरही है उसी तरह पिटाई शरीर की हो रही है आत्मा की नहीं। यहीज्ञानी और अज्ञानी का फर्क है।
    b. गजकुमार मुनि के ऊपर गरम गरम सिगड़ी रखी हुई थी, सिर जल भी गया था और फिर भी वो सोच रहे थे कि कोई भी सिगड़ी की आग मेरे ज्ञान स्वभाव को छू नहीं सकती है।
    c. ज्ञानी को हमेशा ज्ञान स्वभाव में रहना होता है और अज्ञानी हमेशा अज्ञान स्वभाव में ही रहता है।
22. अनुभूति चारित्र के साथ होती है और जब अनुभूति होती है तो उस समय पर हमारे अंदर ज्ञानमय भाव आता है और जब तक अनुभूति नहीं होती है तब तक हम केवल विश्वास रखते हैं, श्रद्धा रखते हैं।
23. आत्मा का और ज्ञान का यह जो संबंध है, इस संबंध पर श्रद्धान होने से ही हम शरीरगत अनेक कष्टों को सहन कर सकते हैं।

24. व्यहवार से आत्मा देह प्रमाण है

a. शरीर के प्रमाण में नाक, कान, आँख आदि पोल भी शामिल होती हैं परन्तु वहां आत्मा के प्रदेश नहीं होते।
b. अगर हमें किसी भी आत्मा को बुलाना है या किसी भी आत्मा को कहीं से उठा कर के कहीं बिठाना है तो उसकी देह को बिठा दो, बिना देह के तो वो नहीं बैठेगी। उसकी देह जहां जाएगी, वही तो उसकी आत्मा जाएगी।
c. देह प्रमाण आत्मा तो दूसरे के काम में आ सकती है लेकिन ज्ञान प्रमाण आत्मा किसी के काम में नहीं आती। वो तो सिर्फ अपने ही काम में आएगी।
d. समुदघात के समय पर आत्मा के प्रदेश देह के बाहर भी चले जाते हैं।

25. निश्चय से आत्मा असंख्यात प्रदेश वाला है उसके परिमाण (जितनी जगह घेरता है, क्षेत्र) की अपेक्षा से और ज्ञान प्रमाण है उसके गुण की अपेक्षा से।

26. आत्मा संयोग संबन्ध से देह प्रमाण है और तादात्मसंबन्ध से ज्ञान प्रमाण है।

27. ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है अर्थात ज्ञान ज्ञेय के बराबर है शक्ति की अपेक्षा से।

a. जो जानने योग्य पदार्थ हैं उन्हें ज्ञेय कहते हैं
b. तीनों लोक और अनंत अलोकाकाश (लोकालोक) सभी ज्ञेय हैं। इसलिए ज्ञेय तो सर्वगत कहते हैं।
c. जिस तरह अग्नि का प्रमाण उष्णता है परन्तु उष्णता जिस जिस चीजपकड़ रही है वह उसके बराबर है।

28. क्योंकि ज्ञान ने सब कुछ अपने में व्याप्त कर लिया इसलिए ज्ञान को सर्वगत कहते हैं।

29. **भ्रान्ति:** भगवान कण कण में व्याप्त है

a. भगवान का ज्ञान सर्वत्र व्याप्त है - उस ज्ञान के अंदर इतनी शक्ति है कि वह सब द्रव्य, गुण, पर्यायों को जानने लग जाता है।
b. ज्ञान सर्वगत होता है। ज्ञानी सर्वगत नहीं होता है।
c. भगवान सर्वत्र व्याप्त नहीं है लेकिन भगवान का ज्ञान सर्वत्र व्याप्त है। चूँकि भगवान के ज्ञान में अब सब चीजें आ गयीं इसलिए यह कहने में आता है कि ज्ञान सर्वत्र व्याप्त है। वस्तुतः ज्ञान कहीं बाहर नहीं गया व्याप्त होने के लिए।

30. ज्ञान चलता है तो थकान आती है जैसे सुनना है तो भी चलाना है, बोलना है तो भी चलाना है। हम अपना ज्ञान चलाते हैं तो हम तो थक जाते हैं।

31. भगवान के ज्ञान में तो बिना इच्छा के सब कुछ उनके ज्ञान में आ रहा है। इसलिए भगवान कभी भी थकते नहीं हैं।

32. यह आत्मा, ज्ञान और ज्ञेय का संबंध आपस में हमेशा बना रहता है।

णाणपमाणंआदा ण हुवदिजस्सेहतस्स सो आदा।
हीणोवाअधिगोवाणाणादोहवदिधुवमेव ॥ २५ ॥
हीणोजदि सो आदातण्णाणमचेदणं ण जाणादिं।
अधिगोवाणाणादोणाणेणविणाकधंणादि ॥ २६॥ जुगलं

<u>अन्वयार्थ-</u>(**इह**) इस जगत में (**जस्स**) जिसके मत में (**आदा**) आत्मा (**णाणपमाणं**) ज्ञान प्रमाण (**ण हवदि**) नहीं है, (**तस्स**) उसके मत में (**सो आदा**) वह आत्मा (**धुवमेव**) अवश्य (**णाणादोहीणोवा**) ज्ञान से हीन (**अधिगोवाहवदि**) अथवा अधिक होना चाहिए।

(**जदि**) यदि (**सो आदा**) वह आत्मा (**हीणो**) ज्ञान से हीन हो (**तत्**) तो वह (**णाणं**) ज्ञान (**अचेदणं**) अचेतन होने से (**ण जाणादि**) नहीं जानेगा,(**णाणादोअधिगो**) और यदि ज्ञान से अधिक हो तो (**णाणेणविणा**) ज्ञान के बिना (**कधंणादि**) कैसे जानेगा?

1. अगर आत्मा ज्ञान के बराबर नहीं है तो आत्मा ज्ञान से या कम होगा या बड़ा होगा
    a. अगर आत्मा ज्ञान से कम होगा तो ज्ञान अचेतन हो जायेगा।यह दोष आ जायेगा।
    b. अगर आत्मा ज्ञान से अधिक होगा तो वह आत्मा किसी भी पदार्थ के बिना कैसे जानेगा? आत्मा ज्ञान से शून्य हो गया।
    c. उपरोक्त दोनों स्तिथियाँ होती नहीं हैं। यह प्रत्यक्ष प्रमाण से अनुभव विरुद्ध है।
2. गुण द्रव्य के आश्रय से रहने वाले होते हैं। द्रव्य प्रमाण ही गुण हमेशा रहते हैं।
3. आत्मा का चैतन्य स्वभाव और ज्ञान स्वभाव सभी उस आत्मा के साथ में मिले हुए हैं।
4. आत्मा का अगर कोई भी स्वभाव हम एक अलग कर देंगे तो वह निष्स्वभाव वस्तु हो जाएगी और निष्स्वभाव वस्तु किसी भी प्रमाण का विषय नहीं बनती है। इसलिए वह न हम प्रत्यक्ष प्रमाण से जान पाएंगे, न हम उसको अनुमान प्रमाण से सिद्ध कर पाएंगे और ऐसी वस्तु का कोई भी ज्ञान नहीं होता। वह वस्तु भी अवस्तु कहलाती है।यानि वह पदार्थ ऐसा होता ही नहीं है।

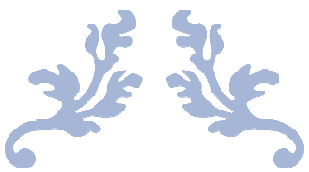

खंड 3—अभ्यास प्रश्न

Compiled by Team Arham

<u>निम्नलिखित प्रश्नों का सही विकल्प (1-4) चुनें</u>(सही उत्तर: https://go.arham.yoga/pvs_a1)

1. श्री प्रवचसार जी के रचियता कौन हैं?

1) आचार्य श्री विद्यासागर जी
2) आचार्य श्री समन्तभद्र जी
3) आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी
4) इनमे से कोई नहीं

2. आचार्य कुन्कुन्द देव वर्धमान महावीर स्वामी को किस रूप में नमस्कार कर रहे हैं?

1) अरिहंत रूप
2) सिद्ध रूप
3) दोनों रूप
4) इनमे से कोई भी नहीं

3. धर्म तीर्थ के कर्ता कौन हैं?

1) अरिहंत परमेष्ठी
2) सिद्ध परमेष्ठी
3) आचार्य परमेष्ठी
4) कोई नहीं

4. भगवान में कर्तापन किस नय की अपेक्षा से हैं?

1) निश्चय नय
2) व्यवहार नय
3) शुद्ध निश्चय नय
4) अशुद्ध निश्चय नय

5. प्रभु धर्म तीर्थ के कर्ता किस कारण से हैं?

1) समवसरण में विराजमान हैं
2) अष्ट प्रातिहार्य से सहित हैं
3) दिव्य ध्वनि खिर रही हैं
4) कर्मो को नाश कर दिया हैं

6. किनके पास कर्तापन और भोक्तापन होता है?

1) मिथ्यादृष्टि जीव
2) चतुर्थ गुण स्थान वाला सम्यग्दृष्टि जीव
3) साधु परमेष्ठी
4) इन सभी के पास होता हैं

7. चतुर्थ गुण स्थान वाले सम्यग्दृष्टि जीव के कौन सी कषाय का उदय नहीं रहता है?

1) अनंतानुबंधीकषाय
2) प्रत्याख्यानकषाय
3) अप्रत्याख्यानकषाय
4) संज्ज्वलनकषाय

8. मुनि महाराज के कौन सी कषाय का उदय रहता है?
1) अनंतानुबंधीकषाय
2) प्रत्याख्यानकषाय
3) अप्रत्याख्यानकषाय
4) संज्ज्वलनकषाय

9. पंचाचार का अर्थ क्या होता है?
1) पांच परमेष्ठियों पर श्रद्धा रखना
2) पांच पापो का नाश करना
3) पांच आचरण का पालन
4) इनमे से कोई नहीं

10. इनमें से क्या पंचाचार में शामिल नहीं है?
1) ज्ञानाचार
2) कुलाचार
3) तपाचार
4) वीर्याचार

11. श्रमण में कौन से जीव आते हैं?
1) पंचाचार का पालन करने वाले आचार्य परमेष्ठी
2) पंचाचार का पालन करने वाले उपाध्याय परमेष्ठी
3) पंचाचार का पालन करने वाले साधु परमेष्ठी
4) ये सभी ठीक हैं।

12. पंचाचार किस रूप होता है?
1) केवल व्यवहार रूप
2) केवल निश्चय रूप
3) दोनों रूप
4) दोनों में से कोई भी नहीं

13. पंचाचार का कौन सा रूप अनेक भेद रूप होता है?
1) व्यवहार रूप
2) निश्चय रूप
3) दोनों रूप
4) कोई नहीं

14. व्यवहार ज्ञानाचार क्या कहलाता है?

1) केवल आत्म ज्ञान में आचरण करना
2) ज्ञान के आठ अंगो का पालन करना
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई भी ठीक नहीं हैं

15. निश्चय ज्ञानाचार क्या कहलाता है?

1) सम्यग्दर्शन के आठ अंगो का पालन करना
2) केवल अपनी आत्मा में स्थित होने का भाव करना
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई भी ठीक नहीं हैं

16. व्यवहार नय की अपेक्षा कौन सा कथन सही है?

1) सम्यग्दर्शन के आठ अंगो का पालन करना दर्शनाचार कहलाता हैं
2) १३ प्रकार के चारित्र का पालन करना चारित्राचार कहलाता हैं
3) १२ प्रकार के तप का पालन करना तपाचार कहलाता हैं
4) सभी ठीक हैं

17. श्रावक का ज्ञानाचार क्या कहलाता है?

1) ग्रन्थ विनय और बहुमान करना
2) ग्रन्थ को शुद्धिपूर्वक पढ़ना
3) ग्रन्थ पढ़ने से पहले णमोकार मंत्र और मंगलाचरण पढ़ना
4) सभी ठीक हैं

18. जिनवाणी पर शंका ना करना सम्यग्दर्शन का कौन सा अंग है?

1) नि : कांक्षित अंग
2) नि :शंकित अंग
3) उपगूहन अंग
4) धर्म प्रभावना अंग

19. धर्म के फल से किसी भी प्रकार के संसार सुख की इच्छा ना करना सम्यग्दर्शन का कौन सा अंग है?

1) नि : कांक्षित अंग
2) नि :शंकित अंग
3) उपगूहन अंग
4) अमूढ़दर्ष्टि अंग

20. किसी भी प्रकार के चमत्कारों में मूड नहीं होना सम्यग्दर्शन का कौन सा अंग है?

1) नि : कांक्षित अंग
2) नि :शंकित अंग
3) उपगूहन अंग
4) अमूढ़दर्ष्टि अंग

21. क्या भरत चक्रवर्ती के कर्तापन और भोक्तापन था?

1) केवल कर्तापन
2) केवल भोक्तापन
3) कोई नहीं था
4) दोनों थे

22. आचार्य कुन्दकुन्द देव मंगलाचरण में किस क्रम से नमस्कार कर रहे हैं?

1) १. अरिहंत भगवान २. श्रमण ३. वर्धमान स्वामी ४. सिद्ध भगवान
2) १. वर्धमान स्वामी २. श्रमण ३. सिद्ध भगवान ४. अरिहंत भगवान
3) १. वर्धमान स्वामी २. अरिहंत भगवान ३. सिद्ध भगवान ४. श्रमण
4) १. सिद्ध भगवान २. अरिहंत भगवान ३.वर्धमान भगवान ४. श्रमण

23. ज्ञान के आठ अंगो का पालन करना क्या कहलाता है?

1) निश्चय ज्ञानाचार
2) व्यवहार ज्ञानाचार
3) दोनों
4) कोई ठीक नहीं

24. शाश्वत कर्म भूमि कहाँ पर स्थित हैं?

1) भरत क्षेत्र
2) ऐरावत क्षेत्र
3) विदेह क्षेत्र
4) सभी ठीक हैं

25. ढाई द्वीप कितने प्रमाण का होता है?

1) 54 लाख योजन
2) 45 लाख योजन
3) 44 लाख योजन
4) 55 लाख योजन

26. तीर्थंकर भगवान कौन सी भूमि में हमेशा विद्यमान रहते हैं?

1) सभी कर्म भूमियों में
2) भरत और ऐरावत क्षेत्र में
3) शाश्वत कर्म भूमि में
4) सभी ठीक हैं

27. कम से कम कितने तीर्थंकर हमेशा विद्यमान रहते हैं?

1) ६०
2) २०
3) ३०
4) ४०

28. अधिक से अधिक कितने तीर्थंकर विदेह क्षेत्र में हो सकते हैं?

1) १७०
2) १६०
3) १४०
4) १५०

29. श्रावक द्वारा मुनि महाराज को किस प्रकार नमस्कार करना चाहिए?

1) वंदना बोलकर
2) प्रणाम बोलकर
3) नमोस्तु बोलकर
4) तीनों से

30. आज के समय में तीर्थंकर भगवान कहाँ पर विद्यमान हैं?

1) भरत क्षेत्र में
2) ऐरावत क्षेत्र में
3) विदेह क्षेत्र में
4) सभी क्षेत्रो में

31. ढाई द्वीप में कौन सा द्वीप आता है?

1) जम्बू द्वीप
2) धात की खंड द्वीप
3) आधा पुष्करार्ध द्वीप
4) सभी ठीक हैं

32. श्रावक द्वारा आर्यिका माता जी को कैसे नमस्कार किया जाता है?

1) नमोस्तु बोलकर
2) वंदना बोलकर
3) वन्दामि बोलकर
4) तीनो ठीक हैं

33. भगवान की स्तुति करने से क्या फल मिलता है?

1) कषाय में मंदता आती हैं
2) पाप कर्मों का आस्रव रुकता हैं
3) पुण्य कर्मों का बंध होता हैं
4) सभी ठीक हैं

34. मुनि महाराज के द्वारा की जानी वाली वंदना की विधि को क्या कहते हैं?

1) आचार्य वंदना
2) कृति क्रम वंदना
3) सिद्ध वंदना
4) तीनो ठीक हैं

35. "अंचेमीपुजेमिवन्दामिनम्मसामि " में मुनि महाराज किस प्रकार भगवान की पूजा करते हैं?

1) अष्ट द्रव्य से
2) सुखी सामग्री से
3) भावों से
4) तीनो ठीक हैं

36. आत्मा का सबसे बड़ा चैतन्य भाव कौन सा है?

1) दर्शन गुण
2) ज्ञान गुण
3) चारित्र गुण
4) दर्शन गुण और ज्ञान गुण

37. अध्यात्म में साम्य भाव का क्या अर्थ है?

1) किसी को छोटा-बड़ा, अमीर-गरीब, ऊंच-नीच आदि न समझना। किसी भी धर्म की निंदा ना करना
2) कर्म जन्य भावों से किसी भी तरीके की कोई भी बाधा उत्पन्न नहीं होना
3) प्रतिकूल परिस्थितियों में भी दुर्भाव न लाना
4) तीनो ठीक हैं

38. ध्यान के बिना कौन सा नमस्कार नहीं हो सकता है?

1) भाव नमस्कार
2) अद्वैत नमस्कार
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं हैं

39. विशुद्ध दर्शन ज्ञान किनको प्राप्त हो चुका है?

1) अरिहंत परमेष्ठी
2) सिद्ध परमेष्ठी

3) साधु परमेष्ठी
4) अरिहंत और सिद्ध परमेष्ठी

40. जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में कौन सा देश आता है?

1) अमेरिका
2) चीन
3) भारत
4) सभी ठीक हैं

41. अशाश्वत कर्म भूमि में कौन से काल में तीर्थंकर होते हैं?

1) पहले
2) चौथे
3) पांचवे
4) सभी काल में होते हैं

42. सिद्धशिला पहुंचने वाला एकइंद्रिय जीव पुण्यशाली क्यों नहीं है?

1) क्योंकि उसको ये भान ही नहीं होता कि वो कहाँ हैं
2) क्योंकि वो सिद्ध भगवान का स्वरूप नहीं समझता हैं
3) सभी ठीक हैं

43. विशुद्ध दर्शन और ज्ञान प्राप्त करने की आराधना कौन करते हैं?

1) अरिहंत परमेष्ठी
2) सिद्ध परमेष्ठी
3) साधु परमेष्ठी
4) सभी ठीक हैं

44. मैं पंच परमेष्ठी को नमस्कार कर रहा हूँ। - ये कौन सा नमस्कार है?

1) द्वैत नमस्कार
2) अद्वैत नमस्कार
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं हैं

45. चारित्र कौन कौन से प्रकार का होता है?

1) सरागचारित्र
2) वीतरागचारित्र
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं हैं

46. पंचम काल में सरागचारित्र धारण करने से क्या फल मिलेगा?

1) परम्परा से निर्वाण की प्राप्ति (1)
2) स्वर्ग की प्राप्ति (2)
3) निर्वाण की प्राप्ति (2)
4) 1 और 2 ,दोनों ठीक हैं

47. वर्तमान में भरत क्षेत्र के मुनि महाराज को कौन सा चारित्र हो सकता है?

1) सरागचारित्र
2) वीतरागचारित्र
3) दोनों हो सकते हैं
4) कोई भी ठीक नहीं हैं

48. वीतरागचारित्र का क्या फल है?

1) निर्वाण की प्राप्ति
2) स्वर्ग की प्राप्ति
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई भी ठीक नहीं हैं

49. कौन से गुण स्थान में राग दशा नष्ट होती है?

1) १० वे
2) ११ वे
3) १२ वे
4) ४ वे

50. आचार्य कुन्दकुन्द देव की गाथा के भावानुसारवीतरागचारित्र की प्राप्ति कौन से गुण स्थान में होती है?

1) ४ वे
2) ६ वे
3) १२ वे
4) सभी ठीक हैं

51. सर्वार्थसिद्धि के देव काकाल कितना होता है?

1) ६६ सागर
2) ३३ सागर
3) २२ सागर
4) ११ सागर

52. सरागचारित्र के साथ आयु पूर्ण करके अगले भव में क्या फल मिलेगा?

1) निर्वाण
2) स्वर्ग
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं हैं

53. गृहस्थ के पास कौन सा चारित्र है?

1) सरागचारित्र
2) वीतरागचारित्र
3) दोनों हैं
4) कोई नहीं हैं

54. अध्यात्म ग्रंथ किनके मुख से पढ़ने चाहिए?

1) विद्वान् के मुख से
2) परिग्रह से रहित निग्रंथ गुरु के मुख से
3) पंडित के मुख से
4) सभी ठीक हैं

55. क्या सरागचारित्र को धारण किए बिना वीतरागचारित्र उपलब्ध होता है?

1) होता हैं
2) नहीं होता हैं
3) हो भी सकता हैं
4) नहीं भी हो सकता हैं

56. सरागचारित्र को कथंचितहेय और कथंचितउपादेय क्यों कहा?

1) हेय इसलिए क्योंकि संसार का कारण हैं
2) उपादेय इसलिए क्योंकि परम्परा से मोक्ष का कारण हैं
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं हैं

57. क्या तीर्थंकर भगवान सरागचारित्र को ग्रहण करते हैं?

1) करते हैं। लेकिन सरागचारित्र को छोड़कर वीतरागचारित्र धारण करते हैं और फिर मोक्ष प्राप्त हैं।
2) कोई भी चारित्र धारण नहीं करते हैं। गृहस्थ अवस्था से ही मोक्ष को जाते हैं
3) नहीं करते हैं। सीधा वीतरागचारित्र को धारण करके मोक्ष प्राप्त करते हैं।
4) सभी ठीक हैं

58. मोक्ष का वास्तविक कारण क्या है?

1) निश्चय मोक्ष मार्ग
2) व्यवहार मोक्ष मार्ग
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं हैं

59. सरागचारित्र मोक्ष के लिए कारण क्यों है?

1) क्योंकि इसके बिना वीतरागचारित्र की प्राप्ति नहीं होती
2) क्योंकि संसार बढ़ाने का कारण नहीं है
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं हैं

60. क्या व्रत, संयम धारण किये बिना वीतरागचारित्र प्रकट हो सकता है?

1) हो सकता हैं
2) नहीं हो सकता हैं
3) हो भी सकता हैं
4) नहीं भी हो सकता हैं

61. अनेकांतवाद किसे कहते हैं?

1) वस्तु को अनेक अभिप्राय से समझना
2) वस्तु को एक अभिप्राय से समझना
3) दोनों ठीक हैं

62. वर्तमान में सरागचारित्रहेय क्यों नहीं है?

1) क्योकि इसी सरागचारित्र के बल पर आगे वीतरागता प्राप्त होगी
2) क्योंकि इसी सरागचारित्र के बल पर अगले भव में देव गति के वैभव मिलेंगे
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं हैं

63. कौन से गुण स्थान में वीतरागचारित्र का सर्वप्रथम अनुभव होता है?

1) चौथे
2) पांचवे
3) छठे
4) सांतवे

64. वीतरागचारित्र की पूर्णता कौन से गुण स्थान में है?

1) चौथे
2) बाहरवें
3) छठे
4) सांतवे

65. सरागचारित्र वाला कौन से सुख का अभिलाषी होता है?

1) इन्द्रिय सुख का
2) अतीन्द्रिय सुख का

3) दोनों सुख का
4) कोई ठीक नहीं हैं

66. सम्यग्दर्शन के साथ सरागचारित्र धारण करने वाला जीव देव गति में जाकर क्या करता है?

1) देवो के सुखो में आसक्त नहीं होता हैं
2) धर्म ध्यान करता हैं
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

67. चौथे गुण स्थान में वीतरागता मानने वाला जीव कैसा होता है?

1) सम्यग्दृष्टि
2) मिथ्यादृष्टि
3) सम्यग्ज्ञानि
4) कोई ठीक नहीं हैं

68. उपशांतमोहगुणस्थान कौन सा है?

1) ७
2) १०
3) ११
4) १२

69. धर्म का मूल किसको बताया गया है?

1) सम्यक दर्शन
2) सम्यक ज्ञान
3) सम्यक चारित्र
4) तीनो ठीक हैं

70. धर्म का चूल किसको बताया गया है?

1) सम्यक दर्शन
2) सम्यक ज्ञान
3) सम्यक चारित्र
4) तीनो ठीक हैं

71. आत्मा का स्वभावभूत धर्म क्या बताया गया है?

1) दान, पूजा करना
2) व्रत और उपवास करना
3) केवल ज्ञाता दृष्टा बना रहना
4) मुनि बन जाना

72. आत्मा का वैभाविकपरिणमन क्या है?

1) ज्ञाता दृष्टा ही रहना
2) रागद्वेष करना
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं हैं

73. दंसणमूलोधम्मो - ऐसा कौन से ग्रन्थ में लिखा है?
1) प्रवचनसार जी
2) समयसार जी
3) दर्शनपाहुड़ जी
4) कोई ठीक नहीं

74. चारित्तंखलुधम्मो - ऐसा कौन से ग्रन्थ में लिखा है?
1) प्रवचनसार जी
2) समयसार जी
3) दर्शनपाहुड़ जी
4) कोई ठीक नहीं

75. जिनवाणी में सम्यग्दर्शन किसको बताया गया है?
1) सच्चे देव, शास्त्र, गुरु पर श्रद्धान
2) शुद्ध आत्मस्वरूप का श्रद्धान
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

76. पूर्व में किए गए दोषों का प्रायश्चित क्या कहलाता है?
1) प्रतिक्रमण
2) प्रत्याख्यान
3) दोनों
4) कोई ठीक नहीं

77. भविष्य में पाप नहीं करने का संकल्प क्या कहलाता है?
1) प्रतिक्रमण
2) प्रत्याख्यान
3) दोनों
4) कोई ठीक नहीं

78. मोह से क्या तात्पर्य है?
1) पर को अपना मानना
2) पर में अपनेपन को देखना
3) अपने स्वभाव के अलावा अन्य वस्तु से मोहित होना
4) सभी ठीक हैं

79. क्षोभ का प्रारम्भ कहाँ से होता है?

1) द्वेष से
2) राग से
3) दोनों से
4) कोई ठीक नहीं

80. मोहिनीय कर्म कौन से प्रकार का है?

1) दर्शन मोहनीय
2) चारित्रमोहनीय
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

81. दर्शन मोहनीय का क्या कार्य है?

1) पर में आत्म बुद्धि लगाए रखना
2) कुदेव को भगवान मानना
3) कुगुरु को गुरु मानना
4) सभी ठीक हैं

82. आत्मा में साम्य भाव कब आएगा?

1) जब मोह और क्षोभ का अभाव हो जायेगा
2) आत्मा अपने सिवाय, पर को अपना मानने का भाव नहीं करेगा
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

83. कौन से काल में आत्मा का साम्य भाव हो सकता है?

1) चौथे काल में
2) पंचम काल में
3) सभी काल में
4) कोई ठीक नहीं

84. पंचम काल में कौन सा ध्यान हो सकता है?

1) शुक्ल ध्यान
2) धर्म ध्यान
3) दोनों हो सकते हैं
4) कोई भी नहीं हो सकता

85. मोक्ष मार्ग के कौन से घटक के बिना मोक्ष मार्ग की शुरुआत नहीं हो सकती?

1) सम्यग्दर्शन
2) सम्यग्ज्ञान

3) सम्यग्चारित्र
4) सभी ठीक हैं

86. साम्य भाव की प्राप्ति किससे होती है?

1) सम्यग्दर्शन
2) सम्यग्ज्ञान
3) सम्यग्चारित्र
4) तीनो की अखंडता

87. अग्नि एक वस्तु है तो इसका स्वभावभूत धर्म क्या है?

1) शीतलता
2) कठोरता
3) उष्णता
4) कोई ठीक नहीं

88. संसारी आत्मा का वैभाविकपरिणमन किस कारण से है?

1) मोह के कारण से
2) राग और द्वेष के कारण से
3) कषाय के कारण से
4) सभी ठीक हैं

89. मिथ्या बुद्धि पैदा करना - ये किसका कार्य है?

1) दर्शन मोहनीय का
2) चारित्रमोहनीय का
3) दोनों का
4) कोई ठीक नहीं

90. मनुष्यपना आत्मा की कौन से पर्याय है?

1) स्वभाविक पर्याय
2) वैभाविक पर्याय
3) दोनों का
4) कोई ठीक नहीं

91. जब आत्मा वीतरागचारित्र में परिणमन कर गया तब आत्मा कौन से धर्म वाला कहलाया?

1) व्यवहार धर्म वाला
2) निश्चय धर्म वाला
3) दोनों धर्म वाला
4) कोई ठीक नहीं

92. चौथा गुणस्थान का अविरत सम्यग्दृष्टि कौन से भाव वाला आत्मा है?

1) शुभ भावों वाला
2) अशुभ भावों वाला
3) शुद्ध भावों वाला
4) कोई ठीक नहीं

93. पहले, दूसरे, तीसरे गुणस्थान के जीवो का अशुभोपयोग कैसा है?
1) बिलकुल एक समान हैं
2) ऊपर -ऊपर घटता हुआ हैं
3) ऊपर ऊपर बढ़ता हुआ हैं
4) कोई ठीक नहीं

94. जब जीव सम्यग्दृष्टि हो गया तो उसका उपयोग कैसा हो गया?
1) शुद्धोपयोग
2) शुभोपयोग
3) अशुभोपयोग
4) कोई ठीक नहीं

95. आत्म द्रव्य जिस समय ---------- परिणमन करता है, वह द्रव्य उस समय पर ---------- हो जाता है।
1) जिस भाव से, उसमय
2) जिस पर्याय से, उसमय
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

96. निश्चय चारित्र रूप परिणमन किसका होगा?
1) जिसके पास सरागचारित्र होगा
2) जिसके पास केवल सम्यग्दर्शन होगा
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

97. चौथे गुण स्थान वाले की आत्मा किस धर्म रूप परिणमन कर रही है?
1) व्यवहार धर्म रूप
2) निश्चय धर्म रूप
3) दोनों धर्म रूप
4) कोई ठीक नहीं

98. परिणमन किस द्रव्य में होता है?
1) अशुद्ध द्रव्य में
2) शुद्ध द्रव्य में
3) प्रत्येक द्रव्य में
4) कोई ठीक नहीं

99. संसार का प्रत्येक पदार्थ किस से बना हुआ है?

1) द्रव्य
2) गुण
3) पर्याय
4) तीनो का समूह हैं

100. सोना एक पदार्थ है तो उसकी बनी चूड़ी क्या है?

1) द्रव्य
2) गुण
3) पर्याय
4) कोई ठीक नहीं

101. अगर पर्याय अशुद्ध है तो आत्मा कैसी होगी?

1) शुद्ध
2) अशुद्ध
3) शुद्ध भी हो सकती हैं और अशुद्ध भी
4) सभी ठीक हैं

102. संसार के प्रत्येक द्रव्य को किसने बनाया है?

1) तीर्थंकर भगवान ने
2) ब्रह्मा ने
3) किसी एक परम शक्ति ने
4) किसी ने नहीं बनाया

103. पदार्थ के द्रव्य, गुण और पर्याय किस ज्ञान में दिखाई देते है?

1) मतिज्ञान
2) अवधिज्ञान
3) केवलज्ञान
4) सभी ठीक हैं

104. किनके आत्म पदार्थ में परिणमन नहीं होता है?

1) सिद्ध भगवान की
2) अरिहंत भगवान की
3) संसारी जीव की
4) ऐसा कोई भी जीव नहीं

105. कौन सा वाक्य सही है?

1) आत्मा का द्रव्य शुद्ध है, मात्र पर्याय ही केवल अशुद्ध है।
2) पर्याय अशुद्ध है तो आत्मा का द्रव्य भी

अशुद्ध है

3) आत्मा का द्रव्य शुद्ध है, मात्र गुण ही केवल अशुद्ध है

4) सभी वाक्य सही हैं

106. शुद्धोपयोग से युक्त आत्मा कौन सा सुख प्राप्त करता है?

1) निर्वाण सुख

2) स्वर्ग सुख

3) दोनों ठीक हैं

4) कोई ठीक नहीं

107. केवलज्ञान का फल कौन से गुण स्थान के शुद्धोपयोग से मिलेगा?

1) ७

2) ८

3) १०

4) १२

108. चौथे गुण स्थान में कौन सा धर्म होता है?

1) शुद्धोपयोगरूपी धर्म

2) शुभोपयोगरूपी धर्म

3) दोनों धर्म होते हैं

4) कोई ठीक नहीं

109. अशुभोपयोग का फल क्या है?

1) कुमनुष्य

2) तिर्यंच

3) नारकी

4) तीनो ठीक हैं

110. कौन सा वाक्य ठीक नहीं है?

1) पंच परमेष्ठी की भक्ति रूप उपयोग शुभोपयोग हैं

2) दान पूजा आदि कार्यों में लगा हुआ उपयोग शुभोपयोग हैं

3) समयसार जी ग्रन्थ में निर्विकल्प शुद्ध आत्मा का स्वाध्याय करना शुद्धोपयोग हैं

4) कोई ठीक नहीं

111. निर्वाण सुख कहाँ से उत्पन होता है?

1) इन्द्रियों से

2) मन से

3) आत्मा से
4) कोई ठीक नहीं

112. निर्वाण सुख को अनंत सुख क्यों कहते है?

1) क्योंकि आत्मिक सुख का कभी भी अंत नहीं होता
2) क्योंकि आत्मिक सुख अविनाशी होता हैं
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

113. संयम कितने प्रकार का होता है?

1) ४
2) ६
3) १०
4) १२

114. शुद्धोपयोग में समभाव होना क्या कहलाता है?

1) सुख दुःख में समता रखना
2) सुख दुःख का वेदन नहीं होना
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

115. उपलब्धि रूप समभाव किनका होता है?

1) शुभोपयोगी
2) शुद्धोपयोगी
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

116. पंचम काल में मुनि महाराज कौन से समभाव का पालन करते हैं?

1) शुभोपयोगी
2) शुद्धोपयोगी
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

117. कौन से गुण स्थान में घातियाकर्मो का नाश होता है?

1) ४
2) ६
3) १०
4) १२

118. ज्ञेय किसको कहते हैं?

1) जानने योग्य पदार्थ
2) पदार्थ को जानने वाला
3) कोई ठीक नहीं

119. पांच पांडवो में से कितने पांडवो को मोक्ष की प्राप्ति हुई?
1) २
2) ३
3) ४
4) ५

120. स्वयंभू कौन बनते हैं?
1) जो पर में पुरुषार्थ करते हैं
2) जो स्वयं में पुरुषार्थ करते हैं
3) दोनों ठीक हैं

121. आत्मा किस नय से पर का कर्ता है?
1) व्यवहार नय
2) निश्चय नय
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

122. आत्मा निश्चय नय से किसका कर्ता है?
1) पर का
2) स्वयं का
3) दोनों का

123. जीव राग द्वेष परिणामो द्वारा अपने रागद्वेष की संतुष्टि के लिए कर्म को कर रहा हैं। इसमें कर्ता कौन है?
1) कर्म
2) रागद्वेष परिणाम
3) रागद्वेष की संतुष्टि
4) जीव

124. जीव राग द्वेष परिणामो द्वारा अपने रागद्वेष की संतुष्टि के लिए कर्म को कर रहा हैं। इसमें करण क्या है?
1) कर्म
2) रागद्वेष परिणाम

3) रागद्वेष की संतुष्टि 4) जीव

125. जीव राग द्वेष परिणामो द्वारा अपने रागद्वेष की संतुष्टि के लिए कर्म को कर रहा हैं। इसमें सम्प्रदान क्या है?

1) कर्म 2) रागद्वेष परिणाम

3) रागद्वेष की संतुष्टि 4) जीव

126. जीव राग द्वेष परिणामो द्वारा अपने रागद्वेष की संतुष्टि के लिए कर्म को कर रहा हैं। इसमें अधिकरण क्या है?

1) कर्म 2) रागद्वेष परिणाम

3) रागद्वेष की संतुष्टि 4) जीव

127. कुम्हार चाक के द्वारा मिट्टी से घड़ा बना रहा हैं। इसमें व्यवहार नय से कर्ता कौन है?

1) कुम्हार 2) चाक

3) मिट्टी 4) घड़ा

128. कुम्हार चाक के द्वारा मिट्टी से घड़ा बना रहा हैं। इसमें निश्चय नय से कर्ता कौन है?

1) कुम्हार 2) चाक

3) मिट्टी 4) घड़ा

129. कुम्हार चाक के द्वारा मिट्टी से घड़ा बना रहा हैं। इसमें व्यवहार नय से करण कौन है?

1) कुम्हार 2) चाक

3) मिट्टी 4) घड़ा

130. कुम्हार चाक के द्वारा मिट्टी से घड़ा बना रहा हैं। इसमें निश्चय नय से करण क्या है?

1) कुम्हार 2) चाक

3) मिट्टी 4) घड़ा

131. हमने नहीं बल्कि आटे ने रोटी बनाई। समीचीननयो को जानने वाला ऐसा किस नय से कहेगा?

1) व्यवहार नय
2) निश्चय नय
3) कोई ठीक नहीं

132. हमने रोटी बनाई। समीचीननयो को जानने वाला ऐसा किस नय से कहेगा?

1) व्यवहार नय
2) निश्चय नय
3) कोई ठीक नहीं

133. व्यवहार नय से क्रिया, कर्ता और कर्म कहाँ घटित होते हैं?

1) स्व द्रव्य में
2) पर द्रव्य में
3) दोनों में

134. निश्चय नय से क्रिया, कर्ता और कर्म कहाँ घटित होते हैं?

1) स्व द्रव्य में
2) पर द्रव्य में
3) दोनों में

135. जब तक निश्चय की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक व्यवहार नय क्या है?

1) हेय
2) उपादेय
3) कोई ठीक नहीं
4) दोनों ठीक हैं

136. केवलज्ञान कैसा ज्ञान होता है?

1) क्षायिक ज्ञान
2) क्षयोपशमिक ज्ञान
3) कोई ठीक नहीं
4) दोनों ठीक हैं

137. उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य किनमें नहीं होता?

1) अरिहंत परमेष्ठी में
2) सिद्ध परमेष्ठी में

3) संसारी जीवो में
4) सभी में होता हैं

138. कौन सी पर्याय अधिक समय वाली होती है?

1) अर्थ पर्याय
2) व्यंजन पर्याय
3) कोई ठीक नहीं

139. चार घातियाकर्मो का नाश करके जीव को क्या प्राप्त होता है?

1) स्वभाव की प्राप्ति
2) सर्वज्ञ बनना
3) स्वयंभू बनना
4) सभी ठीक हैं

140. आत्मा ने कर्म वर्गणाओ को अपने आत्म प्रदेश में बांध लिया। ऐसा किस नय से कहा जायेगा?

1) व्यवहार नय
2) निश्चय नय
3) व्यवहार और निश्चय नय, दोनों से
4) कोई ठीक नहीं

141. शुक्ल ध्यान की स्थिति में कौन से षट्कार की क्रिया चलती है?

1) निश्चय षट्कार
2) व्यवहार षट्कार
3) कोई ठीक नहीं
4) दोनों ठीक हैं

142. समीचीननयों को जानने वाला जीव क्या कहता है?

1) व्यवहार झूठा होता हैं केवल निश्चय सच्चा होता हैं
2) निश्चय झूठा होता हैं केवल व्यवहार सच्चा होता हैं
3) अगर व्यवहार की बात करोगे तो व्यवहार सच्चा हैं और अगर निश्चय की बात करोगे तो निश्चय सच्चा हैं
4) कोई ठीक नहीं

143. स्वर्ग और नरक होते हैं। ऐसा किस प्रमाण से सिद्ध होता है?

1) प्रत्यक्ष प्रमाण
2) अनुमान प्रमाण
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

144. मुनि दीक्षा लेने से किस द्रव्य में परिवर्तन आता है?

1) पर द्रव्य में
2) स्व द्रव्य में
3) स्व और पर दोनों द्रव्य में
4) कोई ठीक नहीं

145. कौन सी पर्याय प्रति समय उत्पन और नष्ट होती है?

1) अर्थ पर्याय
2) व्यंजन पर्याय
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

146. पदार्थ में क्या विद्यमान रहता है?

1) द्रव्य
2) गुण
3) पर्याय
4) तीनो रहते हैं

147. उत्पाद और विनाश किन पदार्थों में होता है?

1) जीव पदार्थ में
2) अजीव पदार्थ में
3) सभी पदार्थ में
4) कोई ठीक नहीं

148. पदार्थ में उत्पाद और विनाश किसका होता है?

1) द्रव्य
2) गुण
3) पर्याय
4) तीनो का

149. व्यवहार नय से जीव कैसे जी रहा है?

1) चार प्राणो से
2) जीवत्व भाव से
3) दोनों से
4) कोई ठीक नहीं

150. निश्चय नय से जीव कैसे जी रहा है?

1) चार प्राणो से
2) जीवत्व भाव से

3) दोनों से 4) कोई ठीक नहीं

151. संसार दशा में जीव को जीने के लिए किसकी जरूरत है?

1) चार प्राणो से 2) जीवत्व भाव से

3) दोनों की 4) कोई ठीक नहीं

152. मुक्त अवस्था में जीव को जीने के लिए किसकी जरूरत है?

1) चार प्राणो से 2) जीवत्व भाव से

3) दोनों की 4) कोई ठीक नहीं

153. गंदगी से सफेद कपड़े के रंग में कालापन आ गया। इसमें द्रव्य क्या है?

1) कपड़ा 2) रंग

3) कालापन

154. गंदगी से सफेद कपड़े के रंग में कालापन आ गया। इसमें गुण क्या है?

1) कपड़ा 2) रंग

3) कालापन

155. गंदगी से सफेद कपड़े के रंग में कालापन आ गया। इसमें पर्याय क्या है?

1) कपड़ा 2) रंग

3) कालापन

156. गंदगी से सफेद कपड़े के रंग में कालापन आ गया। यह किसमेपरिणमन हुआ?

1) द्रव्य 2) गुण

3) पर्याय 4) तीनो में

157. गंदगी निकल जाने से सफेद कपड़े के रंग में उजलापन आ गया। यह किसमें परिणमन हुआ?

1) द्रव्य
2) गुण
3) पर्याय
4) तीनो में

158. गंदगी निकल जाने से सफेद कपड़े के रंग में उजलापन आ गया। इसमें ध्रौव्यपना किसकी अपेक्षा से है?

1) कपड़ा
2) रंग
3) उजलापन

159. अमूर्तिक जीव किसका विषय बनता है?

1) इन्द्रिय ज्ञान का
2) अतीन्द्रिय ज्ञान का
3) दोनों ज्ञान का
4) कोई ठीक नहीं

160. मूर्तिक जीव किसका विषय बनता है?

1) इन्द्रिय ज्ञान का
2) अतीन्द्रिय ज्ञान का
3) दोनों ज्ञान का
4) कोई ठीक नहीं

161. संसार अवस्था में जीव कैसा है?

1) मूर्तिक और अशुद्ध
2) मूर्तिक और शुद्ध
3) अमूर्तिक और अशुद्ध
4) अमूर्तिक और शुद्ध

162. मुक्त अवस्था में जीव कैसा है?

1) मूर्तिक और अशुद्ध
2) मूर्तिक और शुद्ध
3) अमूर्तिक और अशुद्ध
4) अमूर्तिक और शुद्ध

163. जीव का कौन सा भाव हमेशा रहता है?

1) जीवत्व
2) द्रव्यत्व
3) चैतन्यतत्व
4) सभी ठीक है

164. उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य किस नय के विषय बनेगे?

1) द्रव्यार्थिकनय
2) पर्यायार्थिकनय
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

165. द्रव्यार्थिकनय किसको विषय बनाता है?

1) उत्पाद
2) व्यय
3) ध्रौव्य
4) तीनो ठीक हैं

166. पर्याय मूढ़ता क्या होती है?

1) पर्याय के उत्पाद में हर्ष
2) पर्याय के नाश में दुःख
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

167. अंतराय कर्म के नाश हो जाने से कौन सा गुण प्रकट हो जाता है?

1) अनंत ज्ञान
2) अनंत दर्शन
3) अनंत वीर्य
4) कोई ठीक नहीं

168. इन्द्रियों के द्वारा जानने वाले ज्ञान को क्या कहते हैं?

1) क्षायिक ज्ञान
2) क्षयोपशमिक ज्ञान
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

169. किस ज्ञान में कमती और बढ़ती होती रहती है?

1) क्षायिक ज्ञान
2) क्षयोपशमिक ज्ञान
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

170. अतीन्द्रिय ज्ञान कैसा होता है?

1) क्षायिक ज्ञान
2) क्षयोपशमिक ज्ञान

3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

171. भगवान की कैसी भक्ति दुःख का मूल से नाश करने वाली होती है?

1) अपेक्षा सहित भक्ति
2) अपेक्षा रहित भक्ति
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

172. चार घातिकर्मों में कौन सा कर्म नहीं आता है?

1) मोहनीय
2) अंतराय
3) वेदनीय
4) ज्ञानावरणीय

173. भगवान के कौन सा वेदनीय कर्म का उदय रहता है?

1) साता
2) असाता
3) दोनों का उदय रहता हैं

174. असातावेदनीय के उदय में भगवान को भूख क्यों नहीं लगती है?

1) क्योंकि भगवान के मोहनीय कर्म का नाश हो गया हैं
2) क्योंकि मोहनीय कर्म के अभाव में वेदनीय कर्म दुःख नहीं देता हैं
3) क्योंकि अतिन्द्रिय सुख की प्राप्ति हो गई हैं इसलिए अब इन्द्रिय सुख की इच्छा नहीं होती
4) तीनो ठीक हैं

175. भगवान में ईयापथआस्त्रव किसका होता रहता है?

1) सातावेदनीय कर्म
2) असातावेदनीय कर्म
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

176. कौन से भगवान में श्रद्धा करने से त्रैकालिक दुःख दूर होते हैं?

1) जो अपने साथ स्त्री या अस्त्र शस्त्र रखते हैं
2) जिनका ह्दयदुसरो के दुःख देखकर करुणा से भर जाता हैं

3) जो किसी की भक्ति से प्रसन्न हो जाते हैं
4) जो वीतरागी होते हैं

177. वीतरागी भगवान के दर्शन, पूजा करने से किनके दुःख दूर होते हैं?

1) जो संसार के सुख की अपेक्षा से रहित होकर करते हैं
2) जिनको जिनवाणी पर किंचित मात्र भी संशय नहीं होता हैं
3) जो कर्म जन्य दुखो को मिटाकर स्वयंभू बनना चाहते हैं
4) तीनो ठीक हैं

178. ज्ञान के बारे में अज्ञानी जीव में क्या भ्रान्ति होती है?

1) ज्ञान जीव के दिमाग में रहता हैं
2) ज्ञान जीव की आत्मा में रहता हैं
3) कोई ठीक नहीं

179. जीव में प्रत्यक्ष ज्ञान कहाँ से प्रकट होता है?

1) इन्द्रियों से
2) आत्मा से
3) दोनों से
4) कोई ठीक नहीं

180. प्रत्यक्ष ज्ञान पदार्थ को किस तरह से जानता है?

1) अक्रम से
2) क्रम क्रम से
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

181. अवग्रह पूर्वक पदार्थ को जानना किसमे नहीं होता है?

1) इन्द्रिय ज्ञान में
2) अतीन्द्रिय ज्ञान में
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

182. किसी भी वस्तु के आभास होने को क्या कहते है?

1) अवग्रह
2) इहा
3) अवाय
4) धारणा

183. किसी भी वस्तु को जानने का प्रयास करना क्या कहलाता है?

1) अवग्रह
2) इहा
3) अवाय
4) धारणा

184. किसी भी वस्तु का निश्चित ज्ञान होना क्या कहलाता है?

1) अवग्रह
2) इहा
3) अवाय
4) धारणा

185. किसी भी वस्तु का निश्चित ज्ञान नहीं भूलना क्या कहलाता है?

1) अवग्रह
2) इहा
3) अवाय
4) धारणा

186. संसारी जीव का ज्ञान किस रूप होता है?

1) परोक्ष रूप
2) प्रत्यक्ष रूप
3) दोनों रूप
4) कोई ठीक नहीं

187. समयसार जी का स्वाध्याय करना कैसा उपयोग है?

1) शुभोपयोग
2) शुद्धोपयोग
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

188. कौन सा पदार्थ आत्मा के ज्ञान का विषय बनता है?

1) सूक्ष्म रूप पदार्थ
2) स्थूल रूप पदार्थ
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

189. कौन सा पदार्थ इन्द्रिय ज्ञान का विषय बनता है?

1) सूक्ष्म रूप पदार्थ
2) स्थूल रूप पदार्थ
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

190. भगवान के ज्ञान में कौन से पदार्थ का ज्ञान प्रत्यक्ष रूप होता है?

1) मूर्त रूप पदार्थ
2) अमूर्त रूप पदार्थ
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

191. केवल ज्ञान का क्या प्रयोजन है?

1) स्व आत्म द्रव्य को जानना और देखना
2) पर आत्म द्रव्य को जानना और देखना
3) स्व और पर आत्म द्रव्य को जानना और देखना
4) कोई ठीक नहीं

192. मुनिश्री द्वारा श्री प्रवचनसार जी का स्वाध्याय कराना क्या है?

1) शुभोपयोग
2) शुद्धोपयोग
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

193. गर्म लोहे में अग्नि का उष्णता के साथ कैसा सम्बन्ध है?

1) संयोग सम्बन्ध
2) तादात्म सम्बन्ध
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

194. गर्म लोहे में अग्नि का लोहे के साथ कैसा सम्बन्ध है?

1) संयोग सम्बन्ध
2) तादात्म सम्बन्ध
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

195. व्यवहार नय से गर्म लोहे को पीटने में किसकी पिटाई हो रही है?

1) लोहे की
2) अग्नि की
3) दोनों की
4) कोई ठीक नहीं

196. निश्चय नय से गर्म लोहे को पीटने में किसकी पिटाई हो रही है?

1) लोहे की
2) अग्नि की

3) दोनों की
4) कोई ठीक नहीं

197. अग्नि की उष्णता से लोहा गर्म हो गया। इसमें लोहा किसके लिये उदाहरण है?

1) शरीर
2) आत्मा
3) ज्ञान
4) तीनो के लिए

198. अग्नि की उष्णता से लोहा गर्म हो गया। इसमें अग्नि किसके लिये उदाहरण है?

1) शरीर
2) आत्मा
3) ज्ञान
4) तीनो के लिए

199. अग्नि की उष्णता से लोहा गर्म हो गया। इसमें उष्णता किसके लिये उदाहरण है?

1) शरीर
2) आत्मा
3) ज्ञान
4) तीनो के लिए

200. अग्नि की पिटाई किसके कारण हो रही है?

1) हथोड़े के कारण
2) पिटाई करने वाले के कारण
3) लोहे के कारण
4) कोई ठीक नहीं

201. संसारी जीव की दुखों से पिटाई किसके कारण हो रही है?

1) आत्मा
2) ज्ञान
3) शरीर
4) तीनो ठीक हैं

202. आत्मा का ज्ञान के साथ कैसा सम्बन्ध है?

1) संयोग सम्बन्ध
2) तादात्म सम्बन्ध
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

203. व्यवहार नय से आत्मा कितने प्रमाण का है?

1) देह प्रमाण
2) ज्ञान प्रमाण
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

204. निश्चय नय से आत्मा कितने प्रमाण का है?

1) देह प्रमाण
2) ज्ञान प्रमाण
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं

205. आत्मा में कितने प्रदेश होते हैं?

1) संख्यात
2) असंख्यात
3) अनंत
4) कोई ठीक नहीं

206. आत्मा के एक प्रदेश में कितना ज्ञान हो सकता है?

1) संख्यात
2) असंख्यात
3) अनंत
4) कोई ठीक नहीं

207. क्षेत्र की अपेक्षा आत्मा कितने प्रमाण का है?

1) शरीर प्रमाण
2) लोक प्रमाण
3) अलोकाकाश प्रमाण
4) संसारी जीव की अपेक्षा शरीर प्रमाण और शक्ति की अपेक्षा लोक प्रमाण

208. गुण की अपेक्षा आत्मा कितने प्रमाण का है?

1) असंख्यात प्रमाण
2) ज्ञान प्रमाण
3) दोनों ठीक हैं
4) कोई ठीक नहीं